इकाई 1 हैरोड–डोमर प्रतिमान*

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 विषय–प्रवेश

1.2 आधुनिक आर्थिक संवृद्धि के अभिलक्षण

1.3 अंतर्निहित अवधारणाएँ

1.4 प्रतिमान की अवकल्पनाएँ

1.5 हैरोड–डोमर समीकरण

1.6 ''खांडे की धार'' की समस्या

1.7 हैरोड–डोमर प्रतिमान की कमियाँ

1.8 सार–संक्षेप

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर और संकेत

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे की:

- धारणीय आर्थिक संवृद्धि की आवश्यकता बता सकें;
- हैरोड–डोमर प्रतिमान में की गई अवकल्पनाओं के निहितार्थ समझा सकें;
- यह तय कर सकें कि नियत बचत दर एवं पूँजी–उत्पादन वाली किसी अर्थव्यवस्था में स्थिरावस्था संवृद्धि कैसे लाई जाए;
- वे दशाएँ निर्धारित कर सकें जिनके अनुसार स्थिरावस्था संवृद्धि क़ायम रखी जा सकती हो;
- वांछित वृद्धि दर और वास्तविक वृद्धि दर के बीच अंतर स्पष्ट कर सकें;
- हैरोड–डोमर प्रतिमान की अस्थिरता समस्या पर चर्चा कर सकें; तथा
- हैरोड–डोमर प्रतिमान की कमियाँ पहचान सकें।

1.1 विषय–प्रवेश

विकास अर्थशास्त्रियों के समक्ष खड़े तमाम मुद्दों में इतना बाध्यकारी कोई नहीं जितना कि आर्थिक संवृद्धि का प्रश्न। अपनी जनता के लिए जीवन–यापन के उन्नत मानक उपलब्ध कराने की किसी देश की क्षमता निर्णायक रूप से आर्थिक संवृद्धि की उसकी दीर्घावधि दर पर निर्भर करती है। एक लम्बी समयावधि में, आर्थिक संवृद्धि की दर में कोई आभासी [छोटा–सा] अंतर भी औसत व्यक्ति की आय में किसी बड़े अंतर के रूप में सामने आ सकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति काल से ही, आर्थिक संवृद्धि की समस्याओं में रूचि लेने की वजह से अनेक अर्थशास्त्री विभिन्न प्रकार के संवृद्धि प्रतिमान निरूपित करने की ओर प्रवत्त होते रहे हैं। इन सब प्रतिमानों का एक सामान्य अभिलक्षण यह है कि ये सभी केन्जीय बचत–निवेश विश्लेषण पर आधारित हैं। हैरोड–डोमर प्रतिमान आर्थिक संवृद्धि का सर्वप्रथम और सरलतम प्रतिमान है। आपको याद ही होगा कि केन्जीय

* डॉ० आर्ची भाटिया, सह–आचार्य, हिमाचल प्रदेश केन्द्रिय विश्वविद्यालय, धर्मशाला।

विश्लेषण अल्पावधि के लिए होता है। यदि हम इसे दीर्घ अवधि तक बढ़ा देते हैं तो पाते हैं कि किसी भी देश का पूँजी भंडार बढ़ता है क्योंकि पूँजी निवेश प्रतिस्थापन निवेश अथवा मूल्यह्रास स्तर से कहीं अधिक होता है। पूँजी भंडार में वृद्धि किसी भी अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि की ओर ले जाती है। जब उत्पादन क्षमता बढ़ती है तो देश में आर्थिक संवृद्धि नज़र आने लगती है। इस प्रकार, हैरोड–डोमर प्रतिमान उल्पावधि केन्जीय विश्लेषण के दीर्घ अवधि में प्रक्षेपण का एक प्रत्यक्ष परिणाम ही है।

1.2 आधुनिक आर्थिक संवृद्धि के अभिलक्षण

मानव इतिहास के अधिकांश भाग में, प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में पर्याप्त वृद्धि नियम नहीं अपवाद स्वरूप ही नज़र आती है। आइए, पिछले चार शताब्दियों में विश्व की अग्रणी अर्थव्यवस्थाओं की वृद्धि दरों पर विचार करें। वर्ष 1580–1820 की अवधि में, नीदरलैंड्स एक अग्रणी औद्योगिक देश था; उसने लगभग 0.2 प्रतिशत की प्रति श्रमिक घंटा वास्तविक जीडीपी में औसत वार्षिक संवृद्धि हासिल की। वर्ष 1890–1889 की अवधि में संयुक्त राज्य अमेरिका की औसत वार्षिक संवृद्धि दर तुलनात्मक रूप से नाटकीय, 2.2 प्रतिशत प्रति वर्ष रही। यद्यपि आज प्रति व्यक्ति जीडीपी में 2 प्रतिशत की कोई वार्षिक वृद्धि दर बहुत आकर्षक नहीं लगती, क्षणभर का चिंतन (और आकलन) ऐसी वृद्धि दर लगातार रहने पर इसकी विपुल संभावना को दर्शा देता है। साधारण–सी गणना दर्शाती है कि 2 प्रतिशत दर से किसी भी देश की प्रति व्यक्ति जीडीपी 35 वर्ष में दुगुनी हो जाती है– एक ऐसी कालावधि जो किसी भी व्यक्ति के जीवन काल से काफ़ी छोटी होती है।

वर्ष 1984–85 में (भारत की आर्थिक वृद्धि दर में तेज़ी आने से पहले, जब प्रति व्यक्ति आय 1.5 प्रतिशत प्रति वर्ष से भी कम गति से आगे बढ़ रही थी), कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में आयोजित अपनी व्याख्यान माला 'मार्शल लैक्चर्स' में रॉबर्ट लूकस ने कहा –''वास्तविक प्रति–व्यक्ति आय की वृद्धि दरें..... विविध हैं, यहाँ तक कि सतत कालावधियों में भी... भारतीय आय राशियाँ हर 50 वर्ष में दुगुनी होंगी; कोरियाई प्रत्येक 10 वर्ष में। कोई भी भारतीय अपने दादा से, औसतन, दुगुना अमीर होगा; जबकि कोरियाई 32 गुना...।

पिछली शताब्दी में निरंतर आर्थिक संवृद्धि विश्व भर में महसूस नहीं की गई। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में, आर्थिक इतिहासकार डब्ल्यू. डब्ल्यू. रोस्तोव द्वारा गढ़ी गई एक प्रसिद्ध शब्दावली प्रयोग करें तो कुछ मुट्ठी भर देश ही, जिनमें अधिकांश पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका में स्थित हैं, ''धारणीय संवृद्धि में पदार्पण कर सके।''

तृतीय जगत के नाम से लोकप्रिय विश्व के अधिकतर, देशों में, संवृद्धि का अनुभव बीसवीं सदी में ही होना शुरू हो पाया; उनमें से भी अनेक में शायद द्वितीय विश्वयुद्धोपरांत काल के बाद ही, जब उपनिवेशवाद का अंत हुआ।

अब के विकसित देश (जैसे अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, इत्यादि) बहुत बड़ी आर्थिक शक्तिसंपन्न देशों द्वारा अ–बाधित किए गए परिवेश में ही पनपे। आज, स्थिति एकदम भिन्न है। विकासशील देशों को न सिर्फ संवृद्धि करने की आवश्यकता है, उन्हें संवृद्धि इस दर से करनी होगी कि जो ऐतिहासिक अनुभव से कहीं अधिक हो।

विकसित देश पहले ही विद्यमान हैं, और आर्थिक संसाधनों तक उनकी पहुँच विकासशील देशों की पहुँच से कहीं अधिक है। दो प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से दुगुनी–चौगुनी वृद्धि के

महत्वपूर्ण दीर्घावधि प्रभाव हो सकते हैं, परन्तु ये प्रभाव मानव अपेक्षाओं की समानांतर वृद्धि और वैश्विक असमानताओं के बढ़े अवबोधन का मुक़ाबला नहीं कर सकते।

1.3 अंतर्निहित अवधारणाएँ

हैरोड–डोमर प्रतिमान वर्ष 1939 में रॉय एफ. हैरोड और वर्ष 1946 में इव्सी डोमर द्वारा स्वतंत्र रूप से विकसित किया गया। यद्यपि हैरोड और डोमर प्रतिमान अपने–अपने विस्तृत विवरण में भिन्नता दर्शाते हैं, दृष्टिकोण संबंधी अपनी समरूपता के कारण इन्हें एक साथ ही रखा जाता है। ये दोनों ही प्रतिमान स्थिर वृद्धि हासिल करने व उसे क़ायम रखने की अनिवार्य शर्तों पर ज़ोर देते हैं (यथा, किसी निर्बाध, क्रमिक एवं नियमित रीति से)। हैरोड और डोमर संवृद्धि की प्रक्रिया में पूँजी संचयन की भूमिका निर्णायक मानते हैं। वस्तुतः, वे निवेश की दोहरी भूमिका पर ज़ोर देते हैं, यथा...(i) यह अपने गुणक प्रभाव से आय सृजित करता है, और (ii) यह पूँजी संचयन एवं उत्पादन क्षमता में वृद्धि की ओर प्रवृत्त करता है।

आर्थिक संवृद्धि वर्तमान उपभोग में संयम बरतने के परिणामस्वरूप साकार होती है। कोई भी अर्थव्यवस्था नानाविध पण्य वस्तुओं का उत्पादन करती है। उत्पादन का यह कार्य आय सृजित करता है। यही आय उक्त वस्तुओं को ख़रीदने में प्रयोग की जाती है। पण्य वस्तु उत्पादन आय का सृजित करता है, जो उन्हीं पण्य वस्तुओं या जिंसों के लिए माँग पैदा करती है। जिंसों को मुख्यतः दो श्रेणियों में रखा जा सकता है यथा (i) उपभोग वस्तुएँ, जो कि मानवीय आवश्कताओं एवं अधिमानों को संतुष्ट करने के उद्देश्य से उत्पादित की जाती हैं, और (ii) पूँजीगत वस्तुएँ, जो अन्य जिंसें उत्पादित करने के उद्देश्य से उत्पादित की जाती हैं। आम, फ़ाउंटेन पेन, वस्त्र आदि उपभोग वस्तुओं के उदाहरण हैं, जबकि वात भट्टी, वाहक पट्टा, उपस्कर आदि पूँजीगत वस्तुओं की श्रेणी में आते हैं।

जैसा कि आय और व्यय के वर्तुल प्रवाहों से ज्ञात होता है, सभी वस्तुओं के उत्पादन से सृजित आय उपभोग वस्तुओं के साथ–साथ पूँजीगत वस्तुओं पर भी ख़र्च की जाती है। प्रतिनिधिक रूप से, गृहस्थ जन उपभोग वस्तुएँ ख़रीदते हैं, जबकि व्यापार प्रतिष्ठान अपना उत्पादन बढ़ाने अथवा टूटे–फूटे या घिसे–पुराने यंत्र–समूह को बदल डालने के लिए पूँजीगत वस्तुएँ ख़रीदते हैं। सारी की सारी आय वर्तमान उपभोग पर ख़र्च नहीं की जाती है। उपभोग परहेज़ कर गृहस्थ जन एक धनराशि पुंज उपलब्ध कराते हैं जो कि व्यापार प्रतिष्ठान पूँजीगत वस्तुएँ ख़रीदने के लिए प्रयोग करते हैं। यही है... निवेश कार्य। बहरहाल, आप देखेंगे कि बचत की प्रारंभिक उपलब्धता के बिना निवेश करना संभव नहीं होता और उसका विस्तार भी नहीं होता। यही है... आर्थिक संवृद्धि सिद्धांत का सरल आरंभ बिंदु।

इस वृत्तांत में समष्टि–अर्थशास्त्रीय संतुलन की अवधारणा अव्यक्त हैं यदि आप एक ऐसे परिपथ रेखाचित्र की कल्पना करें जो उत्पादन करते समय फर्मों की आय का बहिर्वाह और बिक्री करते समय उनकी आय का पुनः अंतर्वाह दर्शाता हो तो आप बचत को व्यवस्था से रिसाव के रूप में पाएँगे। उपभोग वस्तुओं हेतु माँग को ही वह आय कम पड़ जाती है जिसने उस माँग को जन्म दिया। निवेशकगण पूँजीगत वस्तुओं हेतु अपनी माँग के साथ आगे आकर इस ख़ाई को पाटते हैं। समष्टि–अर्थशास्त्रीय संतुलन तब दिखाई देता है जब यह निवेश माँग एक ऐसे स्तर पर हो जो बचत रिसाव को सही–सही प्रति–संतुलित कर देता हो। यह संकल्पना चित्र 1.1 में निबद्ध है, जो कि परिपथ रेखाचित्र दर्शाता है।

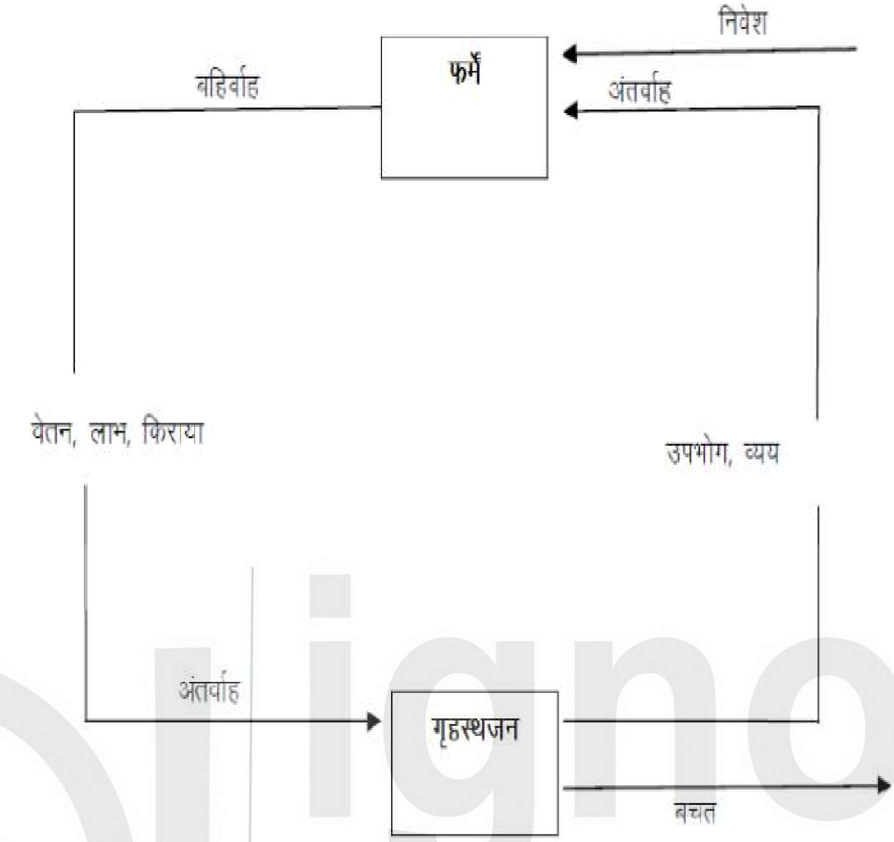

चित्र 1.1 परिपथ रेखाचित्रः उत्पादन, उपभोग, बचत और निवेश

चित्रः 1.1 उत्पादन करते समय फर्मों की आय का बहिर्वाह और बिक्री करते समय उनकी आय का पुनः अंतर्वाह दर्शाता हैं बचत को आप यहाँ रिसाव के रूप में पाएँगे। संतुलन तब दिखाई दिखाई देता है जब यह निवेश माँग एक ऐसे स्तर पर हो जो बचत रिसाव को सही–सही प्रति–संतुलित कर देता हो।

बोध प्रश्न 1

1) धारणीय आर्थिक संवृद्धि का महत्व समझाएँ।

....

....

....

....

....

2) परिपथ रेखाचित्र स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

1.4 प्रतिमान की अवकल्पनाएँ

हैरोड–डोमर प्रतिमान की मुख्य अवकल्पनाएँ निम्नवत् हैं–

1. अर्थव्यवस्था पूर्ण नियोजन में रहकर काम कर रही है। इसका अर्थ है कि अप्रयुक्त उत्पादन क्षमा की विद्यमानता शून्य हैं।
2. अर्थव्यवस्था की प्रकार्यात्मकता में कोई सरकारी हस्तक्षेप नहीं है।
3. प्रतिमान ''संवृत अर्थव्यवस्था'' की अवकल्पना पर आधारित है। दूसरे शब्दों, में, व्यापार पर राजकीय प्रतिबंधों एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार–जनित जटिलताओं को हटा दिया गया है।
4. चरों के समंजन में कोई विलम्ब नहीं होता, यथा बचत, निवेश, आय, व्यय आदि आर्थिक चर उसी अवधि में स्वयं ही पूर्णतः समंजित हो जाते हैं।
5. औसत बचत प्रवृत्ति (APS) और सीमांत बचत प्रवृत्ति (MPS) एक दूसरे के बराबर होते हैं, यथा (APS = MPS) संकेत रूप में, $S/Y = \Delta S/\Delta Y = s$. गृहस्थजन प्रति वर्ष अपनी आय का एक नियत भाग बचाते हैं।
6. पूँजी उत्पादन अनुपात, θ, जिसे एक इकाई उत्पादन बढ़ाने हेतु वांछित पूँजी की इकाइयों के रूप में परिभाषित किया जाता है, नियत रहता है। तदनुसार, $K/Y = \Delta K/\Delta Y = \theta$. यह अवकल्पना ये मान लेने जैसी है कि अर्थव्यवस्था में नियत अनुमापी प्रतिफल सिद्धांत पूँजी–उत्पादन अनुपात की स्थिरता की वजह से ही काम करता है।
7. आय, निवेश, बचत आदि सब अपने विशुद्ध अर्थ में ही परिभाषित किए जाते हैं, यथा, उन्हें मूल्यह्रास से इतर माना जाता है। तदनुसार, मूल्यह्रास दरें इन चरों में शामिल नहीं होतीं।
8. सामान्य कीमत स्तर को स्थिर माना जाता है, यथा, मौद्रिक आय और वास्तविक आय एक ही होती हैं।
9. ब्याज दर में कोई परिवर्तन नहीं होता।
10. उत्पादन प्रक्रिया में पूँजी (K) और श्रम (L) का नियत अनुपात होता है।

उपर्युक्त अवकल्पनाओं का उपयोग संवृद्धि विश्लेषण के काम को सरल बनाने हेतु ही किया जाता है; तदनंतर इनमें ढील दी जा सकती है।

1.5 हैरोड–डोमर समीकरण

जब निवेश अवक्रमित पूँजी की पुनर्स्थापना हेतु आवश्यक राशि से अधिक हो तो आर्थिक संवृद्धि सकारात्मक होती है, जिससे अगली अवधि का चक्र और बड़े स्तर पर चलने का अवसर मिलता है।

हम निम्नलिखित चिह्नांकन अपनाते हैं– Y कुल उत्पादन इंगित करता है, C कुल उपभोग दर्शाता है, और S कुल बचत इंगित करता है। याद रखें कि ये चर सकल जनसंख्या स्तर के पूर्ण योग होते हैं। तदनुसार, निम्नलिखित समीकरण लेखाकर्म की दृष्टि से सही सिद्ध होगा–

$Y_t = C_t + S_t$, सभी समयावधियों के लिए ...(1.1)

दूसरे शब्दों में, राष्ट्रीय आय उपभोग और बचत के बीच विभाजित की जाती है। सिक्के का दूसरा पहलू यह है कि प्रस्तुत उत्पादन का मान (जो Y के बराबर भी हो) उपभोग वस्तुओं और पूँजीगत वस्तुओं की कुल राशि के बराबर हो। तदनुसार,

$$Y_t = C_t + I_t \qquad ...(1.2)$$

जहाँ, निवेश इंगित करता है। यदि हम समीकरण (1.1) व (1.2) को समीकृत करते हैं तो हमें प्रसिद्ध समष्टि–शास्त्रीय संतुलन समीरकण प्राप्त होता है, यथा, बचत निवेश के बराबर होती है।

चिह्नांकन के अनुसार,

$$S_t = I_t \qquad ... (1.3)$$

जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया, निवेश राष्ट्रीय पूँजी भंडार, K, में वृद्धि कर देता है। तदनुसार

$$K_t = K_{t-1} + I_t \qquad ... (1.4)$$

समीकरण (1.4) का अर्थ है कि अवधि t में पूँजी भंडार पिछली अवधि (t-1) के पूँजी भंडार और अवधि t में किए गए निवेश के योग के बराबर होता है। समीकरण (1.4) को हम निम्नवत् लिख सकते हैं–

$$I_t = K_t - K_{t-1} \qquad ... (1.4a)$$

समीकरण (1.3) व (1.4a) को संयुक्त कर हमें प्राप्त होता है–

$$S_t = K_t - K_{t-1} \qquad ... (1.5)$$

जैसा कि ऊपर परिभाषित किया गया, बचत दर $s_t = S_t/Y_t$ अतएव, $S_t = s_t Y_t$ अथवा केवल sY_t, यदि हम बचत अनुपात को कालांतर में स्थिर मानते हों। इसी प्रकार, $K_t = \theta Y_t$ और $K_{t-1} = \theta Y_{t-1}$ जहाँ θ पूँजी–उत्पादन अनुपात के रूप में है।

इस समीकरण (1.5) में प्रयोग करने पर, हमें प्राप्त होता है–

$$sY_t = \theta Y_t - \theta Y_{t-1} = \theta(Y_t - Y_{t-1}) \qquad ... (1.6)$$

पदों को समीकरण (1.6) में पुनर्व्यस्थित करने पर, हमें प्राप्त होता है–

$$\frac{s}{\theta} = \frac{Y_t - Y_{t-1}}{Y_t} \qquad ... (1.7)$$

अथवा

$$g_w = \frac{s}{\theta} = \frac{Y_t - Y_{t-1}}{Y_t} \qquad ...(1.8)$$

जहाँ g_w राष्ट्रीय आय में वांछित अथवा संवृद्धि दर हैं समीकरण (1.8) ही प्रसिद्ध हैरोड–डोमर समीरकरण है। इस समीरकण के अनुसार, अर्थव्यवस्था में संतुलन क़ायम रखने के लिए 's' (बचत–आय अनुपात) और 'θ' (पूँजी–उत्पादन अनुपात) का अनुपात अर्थव्यवस्था की आय अथवा उत्पादन में वृद्धि दर ($g_w = \frac{Y_t - Y_{t-1}}{Y_t}$) के बराबर होना चाहिए।

'वांछित दर' (g_w)अर्थव्यवस्था की उस वृद्धि दर की ओर संकेत करती है जब वह अपनी पूर्ण क्षमता से काम कर रही हो। इसकी व्याख्या इन शब्दों में की जा सकती है– किसी वर्धमान पूँजी भंडार के पूर्ण उपयोग हेतु वांछित संवृद्धि दर, ताकि उद्यमी जन वास्तव में किए गए निवेश की राशि से संतुष्ट हो सकें।

समीकरण (1.8) के रूप में दर्शाया गया हैरोड–डोमर समीकरण अर्थव्यवस्था की संवृद्धि दर को दो आधारभूत चरों से जोड़ता है– अर्थव्यवस्था की बचत क्षमता, और पूँजी–उत्पादन अनुपात। बचत दर बढ़ाकर संवृद्धि दर को बढ़ाया जा सकता है। इसी प्रकार, उस दर को बढ़ाकर जिस पर पूँजी उत्पादन देती हो (का कोई निम्नतर मान), संवृद्धि को तीव्र किया जा सकता है। आप देखेंगें कि पूर्व–उदारीकरण काल में, भारत और तत्कालीन सोवियत संघ जैसे देशों में केंद्रीय आयोजना पर हैरोड–डोमर समीकरण का गहरा प्रभाव पड़ा। यदि किसी अर्थव्यवस्था को निर्बाध स्थिर संवृद्धि करनी हो तो कालांतर में उक्त दोनों अनुपातों (यथा, बचत दर और पूँजी–उत्पादन अनुपात) को नियत रखना होगा यथा

$$\frac{S_t}{Y_t} = \frac{S_{t-1}}{Y_{t-1}} = \frac{S_{t+1}}{Y_{t+1}} = \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots.. = s,$$

और

$$\frac{K_t}{Y_t} = \frac{K_{t-1}}{Y_{t-1}} = \frac{K_{t+1}}{Y_{t+1}} = \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots.. = \theta.$$

यदि यह नियमितता क़ायम रहती है तो अर्थव्यवस्था वांछित वृदि दर पर निरंतर रूप से संवृद्धि करती रहेगी, जो कि $\frac{s}{\theta}$ के बराबर होगा।

हैरोड–डोमर प्रतिमान में एक छोटे–से संशोधन से अब हम इसमें जनसंख्या वृद्धि के प्रभावों का समावेश कर सकते हैं। समीकरण (1.8) अब जिस रूप में है उससे स्पष्ट ही होगा कि यह सकल राष्ट्रीय उत्पाद(GNP) की वृद्धि दर के संबंध में वक्तव्य है, न कि प्रति व्यक्ति जीएनपी के संबंध में। प्रति व्यक्ति वृद्धि ज्ञात करने के लिए, हमें जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव अलग करने होंगे। ऐसा करना काफ़ी सरल है। यदि जनसंख्या (P) वृद्धि दर हो n तो हमें प्राप्त होता है–

$$n = \frac{P_t - P_{t-1}}{P_t} = 1 - \frac{P_{t-1}}{P_t} \qquad \ldots(1.9)$$

समीकरण (1.9) से ज्ञात होता है कि

$$\frac{P_{t-1}}{P_t} = (1 - n) \qquad \ldots(1.10)$$

माना $y_t = Y_t/P_t$ प्रति व्यक्ति आय इंगित करता है। समीकरण (1.6) से हमें प्राप्त होता है– $\theta Y_t = \theta Y_{t-1} + sY_t$ चलिए, इसके दोनों पक्ष P_t से विभाजित करते हैं।

इस प्रकार, हमें प्राप्त होता है–

$$\theta Y_t/P_t = \theta Y_{t-1}/P_t + sY_t/P_t \qquad \ldots(1.11)$$

$$\theta\, y_t = \frac{\theta Y_{t-1}}{P_t} * \frac{P_{t-1}}{P_{t-1}} + sy_t \qquad \ldots(1.12)$$

स्मरण करें कि हम y_t से प्रति व्यक्ति आय दर्शाते हैं जबकि Y_t से देश की कुल आय।

$$\theta\, y_t = \theta\, y_{t-1} * \frac{P_{t-1}}{P_t} + sy_t \qquad \ldots(1.13)$$

$$\theta\, y_t - \left(\theta\, y_{t-1} * \frac{P_{t-1}}{P_t}\right) = sy_t \qquad \ldots(1.14)$$

$$\theta\left[y_t - y_{t-1} * \frac{P_{t-1}}{P_t}\right] = sy_t \qquad \ldots(1.15)$$

अब हम समीकरण (1.15) के दोनों पक्षों को y_t से भाग देंगे–

$$1 - \frac{y_{t-1}}{y_t} * \frac{P_{t-1}}{P_t} = \frac{s}{\theta} \qquad \ldots(1.16)$$

$$\frac{y_{t-1}}{y_t} * \frac{P_{t-1}}{P_t} = 1 - \frac{s}{\theta} \qquad \ldots(1.17)$$

आइए, अब $\frac{y_t - y_{t-1}}{y_t} = g^*$ को परिभाषित करते हैं, जहाँ g^* प्रति व्यक्ति वृद्धि दर है। इसे यह दर्शाने के लिए पुनर्व्यवस्थित किया जा सकता है कि $1 - \frac{y_{t-1}}{y_t} = g^*$ अथवा $\frac{y_{t-1}}{y_t} = (1 - g^*)$. स्मीकरण (1.10) में, हम दर्शा चुके हैं कि $\frac{P_{t-1}}{P_t} = (1 - n)$, जहाँ n जनसंख्या वृद्धि दर है। यदि हम ये दोनों पद ($\frac{y_t - y_{t-1}}{y_t}$ अथवा $\frac{P_{t-1}}{P_t}$) समीकरण (1.17) में प्रतिस्थापित करें तो हमें प्राप्त होता है–

$$(1 - g^*)(1 - n) = 1 - \frac{s}{\theta} \qquad \ldots(1.18)$$

समीकरण (1.18) का विस्तार कर हम पाते हैं कि

$$1 - g^* - n + g^*n = 1 - \frac{s}{\theta}$$

$$g^* + n - g^*n = \frac{s}{\theta}$$

चूँकि g^* और n दोनों छोटी संख्याएँ है, जैसे 0.05 अथवा 0.02, उनका गुणनफल अन्य पदों की अपेक्षा बहुत छोटा ही होगा और सन्निकटता स्वरूप में उसकी उपेक्षा की जा सकती है। इससे हमें यह सन्निकट समीकरण प्राप्त होगा–

$$\frac{s}{\theta} = g^* + n \qquad \ldots(1.19)$$

यह एक ऐसा पद हैजो संवृद्धि में अंतर्निहित कुछ आधारभूत अभिलक्षणों को संनिहित करता है, यथा बचत एवं निवेश करने की क्षमता (s से प्रग्रहीत), पूँजी को उत्पादन में बदलने की क्षमता (जो θ पर प्रतिलोमतः निर्भर करती है), और जनसंख्या वृद्धि की दर (n).

बोध प्रश्न 2

1) वांछित संवृद्धि दर के लिए समीकरण लिखिए।

....

....

....

....

2) किन दशाओं में कोई अर्थव्यवस्था बिना किसी बाधा के स्थिर रूप से संवृद्धि कर सकती है?

....

....

....

....

3) जनसंख्या वृद्धि दर के प्रभाव शामिल कर लिए जाने पर हैरोड–डोमर समीकरण किस प्रकार बदलता है?

....

....

....

....

1.6 ''खांडे की धार'' समस्या

आइए, अब इस विषय पर चर्चा करें कि स्थिर संवृद्धि कैसे हासिल की जाए? हैरोड के अनुसार, कोई अर्थव्यवस्था स्थिर संवृद्धि हासिल कर सकती है यदि और केवल यदि प्रत्याशित संवृद्धि दर (इसे हम g_t^e से इंगित करेंगें) वांछित वृद्धि दर, g_w, के बराबर हो। उस स्थिति में क्या होगा जब प्रत्याशा g_w के अलावा किसी अन्य वृद्धि दर के लिए की जाती हो?

जैसा कि आपको समीकरण (1.8) से ज्ञात है, $g_w = \frac{s}{\theta}$. हम यह मान कर चलते हैं कि पूँजी–उत्पादन अनुपात नियत है और प्रत्येक अवधि के लिए θ के बराबर है।

$$\frac{K_t}{Y_t} = \frac{K_{t-1}}{Y_{t-1}} = \frac{K_{t+1}}{Y_{t+1}} = \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots.. = \theta$$

अथवा

$$K_t = \theta Y_t \text{ या } K_{t+1} = \theta Y_{t+1} \quad \ldots(1.20)$$

हमें ज्ञात है कि

$$I_t = K_t - K_{t-1}$$

समीकरण (1.20) से K_t का मान लेकर उपर्युक्त में प्रतिस्थापित करने पर हमें प्राप्त होता है–

$$I_t = \theta(Y_t - Y_{t-1}) \quad \ldots(1.21)$$

चूँकि Y_t (चालू समयावधि में उत्पादन उस अवधि के बीत जाने पर ही ज्ञात होता है; उससे पहले यह कोई अनुमान अथवा प्रत्याशित मान मात्र ही होता है) ज्ञात नहीं है, आर्थिक अभिकर्ता इसके विषय में प्रत्याशा ही करते हैं। Y_t^e. अवधि t में निवेश इसीलिए Y_t^e पर निर्भर करेगा (देखें BECC–106 की इकाइयाँ 4 व 5)।

$$I_t = \theta(Y_t^e - Y_{t-1}) \quad \ldots(1.22)$$

अवधि t में निवेश अवधि t में प्रत्याशित माँग और अवधि $(t-1)$ में वास्तविक माँग के बीच अंतर पर निर्भर करता है।

यदि

$Y_t^e > Y_{t-1}$ तो $I_t > 0$ और $Y_t^e < Y_{t-1}$ तो $I_t < 0$

केन्जीय प्रतिमान से हमें ज्ञात है कि

$$Y_t = C_t + I_t \quad \ldots(1.23)$$

समीकरण (1.23) में, सकल माँग उपभोग और निवेश का कुल योग है क्योंकि हमारी अवकल्पना के अनुसार यहाँ कोई सरकारी क्षेत्र और विदेश व्यापार नहीं है। आय का एक

नियत भाग ही उपभोग किया जाता है (क्योंकि हम s को इस प्रतिमान में स्थिरांक मानते हैं)।

$$C_t = cY_t \quad ...(1.24)$$

समीकरण (1.24) से लेकर C_t को समीकरण (1.23) में प्रतिस्थापित करने पर हमें प्राप्त होता है–

$$Y_t = cY_t + I_t \quad ...(1.25)$$

$$Y_t = \frac{1}{1-c} I_t \quad ...(1.26)$$

$$Y_t = \frac{1}{s} I_t \quad ...(1.27)$$

जहाँ $\frac{1}{s}$ निवेश गुणक है जिससे निवेश माँग I, के एक इकाई बढ़ने पर आय Y बढ़ जाएगी। यदि हम समीकरण (1.27) के दोनों पक्षों को $\mathrm{Y_t^e}$ से भाग दें तो हमें प्राप्त होता है–

$$\frac{Y_t}{\mathrm{Y_t^e}} = \frac{1}{s}\frac{I_t}{\mathrm{Y_t^e}} \quad ...(1.28)$$

समीकरण (1.22) से लेकर I_t को समीकरण (1.28) में प्रतिस्थापित करने पर हमें प्राप्त होता है:

$$\frac{Y_t}{\mathrm{Y_t^e}} = \frac{\theta}{s}\frac{[\mathrm{Y_t^e} - Y_{t-1}]}{\mathrm{Y_t^e}} \quad ...(1.29)$$

चूँकि $\frac{\mathrm{Y_t^e} - Y_{t-1}}{\mathrm{Y_t^e}} = g_t^e$, प्रत्याशित वृद्धि दर, हमें प्राप्त होता है–

$$\frac{Y_t}{\mathrm{Y_t^e}} = \frac{\theta}{s} g_t^e \quad ...(1.30)$$

चूँकि $\frac{s}{\theta}$ वांछित संवृद्धि दर, g_w हमें प्राप्त होता है–

$$\frac{Y_t}{\mathrm{Y_t^e}} = \frac{g_t^e}{g_w} \quad ...(1.31)$$

समीकरण (1.31) का निहितार्थ यह है कि प्रत्याशित संवृद्धि दर वांछित संवृद्धि दर के बराबर होगी, यदि और केवल यदि प्रत्याशित उत्पादन $\mathrm{Y_t^e}$ वास्तविक उत्पादन Y_t के बराबर हो। इसका अर्थ यह है कि स्थिर संवृद्धि तभी संभव होगी जब प्रत्याशित उत्पादन $\mathrm{Y_t^e}$ वास्तविक उत्पादन के बराबर हो। चिह्नांकन के अनुसार, $g_t^e = g_w = \frac{s}{\theta}$ यदि और केवल यदि $\mathrm{Y_t^e} = Y_t$. चूँकि प्रत्याशाओं का सही साबित होना संयोग मात्र होता है, हैरोड–डोमर प्रतिमान के अनुसार, स्थिर संवृद्धि की परिणति अनिश्चित ही होती है।

आइए, वास्तविक संवृद्धि दर, g_t^a, का पुनरावलोकन करें–

$$g_t^a = \frac{Y_t - Y_{t-1}}{Y_t} = 1 - \frac{Y_{t-1}}{Y_t} \quad ...(1.32)$$

हमारा उद्देश्य g_t^a और g_t^e के बीच कोई संबंध ज्ञात करना है ताकि दोनों दरों की तुलना की जा सके।

$$g_t^e = \frac{\mathrm{Y_t^e} - Y_{t-1}}{\mathrm{Y_t^e}} = 1 - \frac{Y_{t-1}}{\mathrm{Y_t^e}}$$

अथवा,

$$\frac{Y_{t-1}}{\mathrm{Y_t^e}} = (1 - g_t^e) \quad ...(1.33)$$

समीकरण (1.33) में पदों को पुनर्व्यवस्थित कर हम पाते हैं कि

$$Y_{t-1} = (1 - g_t^e)\mathrm{Y_t^e} \quad ...(1.34)$$

आइए, समीकरण (1.31) की ओर वापस लौटें।

हमें प्राप्त है $\frac{Y_t}{Y_t^e} = \frac{g_t^e}{g_w}$, जिसे हम निम्नवत् पुनर्व्यवस्थित कर सकते हैं–

$Y_t = \frac{g_t^e}{g_w} Y_t^e$ अथवा $Y_t = \frac{g_t^e}{s/\theta} Y_t^e$.

इससे प्राप्त होता है–

$$Y_t = \frac{\theta}{s} g_t^e Y_t^e \qquad ...(1.35)$$

अब हमारे पास समीकरण (1.34) से प्राप्त Y_{t-1} के मान और समीकरण (1.35) से प्राप्त Y_t का मान हैं। आइए, इन मानों को समीकरण (1.32) में प्रतिस्थापित करें। हम पाते हैं कि

$$g_t^a = 1 - \frac{(1-g_t^e)Y_t^e}{\frac{\theta}{s} g_t^e Y_t^e} \qquad ...(1.36)$$

तदनुसार,

$$g_t^a = 1 - \frac{(1-g_t^e)}{g_t^e} * \frac{s}{\theta} \qquad ...(1.37)$$

जब वास्तविक संवृद्धि दर प्रत्याशित संवृद्धि दर के बराबर होती है (यथा, $g_t^e = g_t^a$) तो हमें समीकरण (1.37) से प्राप्त होता है–

$$g_t^a = 1 - \frac{(1-g_t^a)}{g_t^a} * \frac{s}{\theta}$$

अथवा, $(1 - g_t^a) = \frac{(1-g_t^a)}{g_t^a} * \frac{s}{\theta}$

अथवा, $(1 - g_t^a) g_t^a = (1 - g_t^a) * \frac{s}{\theta}$

अतः, $g_t^a = \frac{s}{\theta}$ ...(1.38)

यह स्पष्ट है कि g_t^a (वास्तविक संवृद्धि दर) $\frac{s}{\theta}$, वांछित संवृद्धि दर (अर्थव्यवस्था की स्थिर संवृद्धि हेतु वांछित) के बराबर होती है यदि और केवल यदि वास्तविक संवृद्धि दर प्रत्याशित संवृद्धि दर, g_t^e, के बराबर हो; यथा–

$$g_t^a = g_t^e = g_w = \frac{s}{\theta}$$

वास्तविक संवृद्धि दर = प्रत्याशित संवृद्धि दर = वांछित संवृद्धि दर = $\frac{s}{\theta}$

अपनी पर्व चर्चा से हमें पहले ही ज्ञात है कि प्रत्याशित वृद्धि दर $\frac{s}{\theta}$ के बराबर होगी केवल और केवल यदि प्रत्याशाएँ सही हों, यथा $Y_t^e = Y_t$.

हैरोड–डोमर प्रतिमान के अनुसार, किसी भी अर्थव्यवस्था में अस्थिरता ही दृष्टिगत होगी यदि वास्तविक संवृद्धि दर और प्रत्याशित संवृद्धि दर में व्यतिक्रम हो। यदि $g_t^e > \frac{s}{\theta}$ तो वास्तविक संवृद्धि दर और प्रत्याशित संवृद्धि दर से अधिक होगी। दूसरी ओर, यदि $g_t^e < \frac{s}{\theta}$ तो वास्तविक संवृद्धि दर प्रत्याशित संवृद्धि दर से कम होगी। यही दरअसल हैरोड की अस्थिरता समस्या की शुरूआत होती हैं किसी भी अर्थव्यवस्था की स्थिरावस्था वृद्धि $g_t^a = g_t^e = g_w = \frac{s}{\theta}$ के बीच समानता की अपेक्षा करती है। किसी भी मुक्त–उद्यम अर्थव्यवस्था में संतुलन की शर्तें यदि बिलकुल नहीं तो विरले ही पूरी होती हैं।

अतएव, हैरोड ने ऐसी स्थितियों का विश्लेषण किया जब ये शर्तें पूरी नहीं होतीं। यदि निवेशकगण वांछित संवृद्धि दर, $\frac{s}{\theta}$, से अधिक की अपेक्षा करते हों तो वास्तविक संवृद्धि दर उच्च प्रत्याशित संवृद्धि दर से भी ऊँची चली जाएगी।

दूसरे शब्दों मे, यदि g_t^e का मान $g_w = \frac{s}{\theta}$ से अधिक हुआ तो वास्तविक संवृद्धि दर पहले से ही उच्च प्रत्याशित संवृद्धि दर से भी ऊँची चली जाएगी। इससे निवेशकों को ग़लत संकेत ही मिलेगा। यह एहसास करने के कि उन्होंने बहुत अधिक की उम्मीद की थी, और अपना निवेश घटा देने कि बजाय, निवेशक यह सोचेंगे कि उन्होंने बहुत कम की उम्मीद की थी क्योंकि $g_t^a > g_t^e$. इसलिए अगली अवधि में, वे अधिक निवेश करेंगे। तदनुसार, प्रत्येक अवधि में वास्तविक संवृद्धि दर और वांछित संवृद्धि दर के बीच अंतर बढ़ता ही रहेगा। (देखें चित्र 1.2)।

इससे अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति बढ़ेगी। उत्पादन के मार्ग में अपर्याप्त सामग्री उपस्कर बाधक हो जाएँगे। इस प्रकार की स्थिति चिरन्तन महँगाई की ओर ले जाएगी क्योंकि वास्तविक उाय उसआय की अपेक्षा तेजी से बढ़ती है जो अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में होती है। दूसरे शब्दों में, निम्नलिखित असमानता सिद्ध होती है।

$g_t^a > g_t^e > g_w = \frac{s}{\theta}$.

दूसरी ओर, यदि निवेशक वांछित संवृद्धि दर से कम संवृद्धि दर की अपेक्षा करते हों (यथा, $g_t^e < g_w$) तो वास्तविक वृद्धि दर प्रत्याशित वृद्धि दर से भी नीचे दिखाई देगी। दूसरे शब्दों में, $g_t^a < g_t^e < g_w$. निवेशक अब सोचेंगे कि उन्होंने बहुत अधिक की उम्मीद की थी क्योंकि वास्तविक संवृद्धि दर प्रत्याशित संवृद्धि दर से नीचे दिखाई पड़ती है। अतः, अगली अवधि में वे और भी कम निवेश करेंगे जिससे वास्तविक और वांछित संवृद्धि दरों के बीच खाई और चौड़ी होगी (देखें चित्र 1.3)। इस प्रकार की स्थिति चिरन्तन मंदी की ओर ले जाएगी क्योंकि वास्तविक आय अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता के पूर्ण उपयोग हेतु वांछित आय के मुकाबले काफ़ी धीमे बढ़ती है।

यही है हैरोड की समस्या का मर्म। वास्तविक संवृद्धि दर का वांछित संवृद्धि दर से किंचित् भी व्यतिक्रमण अर्थव्यवस्था को स्थिरावस्था वृद्धि पथ से विचलित हो जाने की ओर अग्रसर करता हैं। इसीलिए इसे ''खांडे की धार'' कहा जाता है। चित्र 1.2 व चित्र 1.3 वास्तविक, प्रत्याशित एवं वांछित संवृद्धि दरों के बीच अंतर्क्रिया दर्शाते हैं।

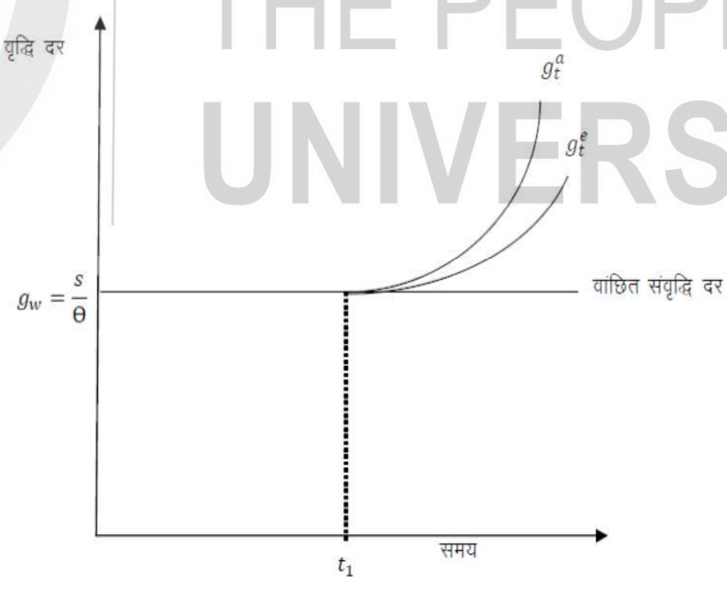

चित्र 1.2: वास्तविक, प्रत्याशित एवं वांछित संवृद्धि दरों के बीच अंतर्क्रिया

चित्र 1.2 दर्शाता है कि जब g_t^e का मान $g_w = \frac{s}{\theta}$ से अधिक होता है तो वास्तविक संवृद्धि दर पहले से ही उच्च प्रत्याशित संवृद्धि दर से भी ऊँची चली जाती हैं इस प्रकार की स्थिति चिरन्तन महँगाई की ओर ले जाएगी क्योंकि वास्तविक आय उस आय की

अपेक्षा तेजी से बढ़ती है जो अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि से होती है। अतः, निम्नलिखित असमानता सिद्ध होती है– $g_t^a > g_t^e > g_w = \frac{s}{\theta}$.

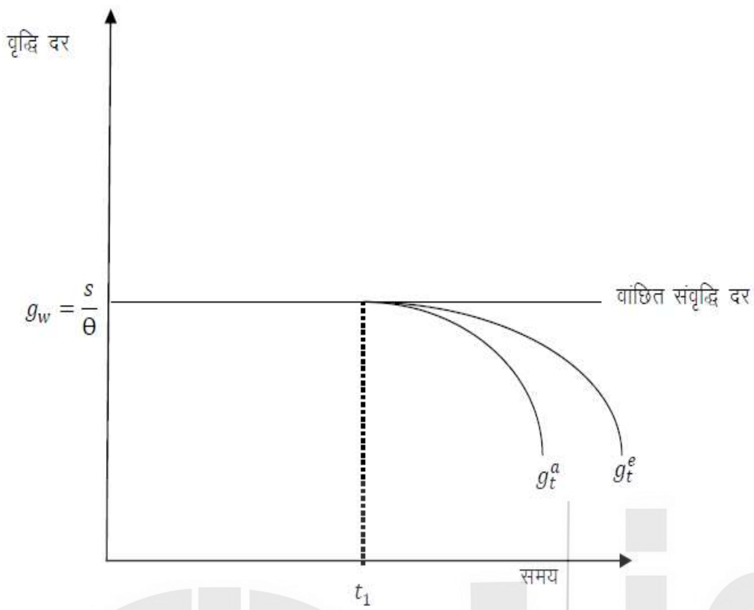

चित्र 1.3: वास्तविक, प्रत्याशित एवं वांछित संवृद्धि दरों के बीच अंतर्क्रिया

चित्र 1.3 दर्शाता है कि जब $g_t^e < g_w$, तो वास्तविक संवृद्धि दर प्रत्याशित संवृद्धि दर से भी नीचे चली जाती हैं दूसरे शब्दों में, $g_t^a < g_t^e < g_w$. इस प्रकार की स्थिति चिरन्तन मंदी की ओर ले जाएगी क्योंकि वास्तविक आय उस आय की अपेक्षा धीमी गति से बढ़ती है जो अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता के पूर्ण उपयोग हेतु वांछित होती है।

उदाहरण:

आइए, हैरोड की अस्थिरता समस्या को एक उदाहरण के माध्यम से समझें। किसी अर्थव्यवस्था के लिए, माना बचत दर 20 प्रतिशत है (s = 0.2) और पूँजी–उत्पादन अनुपात

$\theta = \frac{\Delta K}{\Delta Y} = 2$.

अतः, औचित्य प्रमाणित वृद्धि दर होगी–

$$g_w = \frac{s}{\theta} = 10\% = 0.1$$

मन लीजिए कि पूर्व अवधि का उत्पादन $Y_{t-1} = 90$ के रूप में दर्शाया जाता हैं यह अर्थव्यवस्था तब स्थिरावस्था संतुलन हासिल कर सकती है जब वास्तविक संवृद्धि दर प्रत्याशित संवृद्धि दर के बराबर हो जो 10 प्रतिशत की वांछित संवृद्धि दर के बराबर हो जाती है। तदनुसार, स्थिरावस्था संवृद्धि के लिए, प्रत्याशित उत्पादन 100 इकाइयों के वास्तविक उत्पादन के बराबर होना चाहिए, यथा, $Y_t^e = Y_t = 100$.

यदि उपर्युक्त सही सिद्ध होता हो

$g_t^a = \frac{Y_t - Y_{t-1}}{Y_t} = \frac{100-}{100} = 10\%$.

इस स्थिति में, $g_t^a = g_w = 10\%$.

यहाँ निवेश होगा:

$I = \theta\Delta Y = 2 * 10 = 20$ इकाइयाँ

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

अब यह निवेश गुणक प्रभाव के माध्यम से कुल माँग सृजित करेगा, जो कि $Y = \frac{1}{s}I$ के बराबर होगा।

$Y = \frac{1}{0.2} * 20$

$Y_t = 100$

तदनुसार, यदि निवेशक 100 इकाइयों के उत्पादन की प्रत्याशा करते हों तो वे माँग की 10 अतिरिक्त इकाइयों के लिए क्षमता पैदा करने के प्रयास में 20 इकाइयाँ निवेश करेंगे, $(Y_t - Y_{t-1})$. कुल 20 इकाइयों का यह निवेश 100 इकाइयों की एक औसत माँग उत्पन्न करते 5 के गुणक से सामने आएगा। इस प्रकार, प्रत्याशाएँ कार्य में परिणत होती हैं, यथा

$g_t^e = g_t^a = g_w = \frac{s}{\theta} = 10\%$.

बहरहाल, यदि निवेशक कुछ ज्यादा की ही अपेक्षा करते हों, यथा $Y_t^e = 101$ तो उत्पादनार्थ प्रत्याशित अतिरिक्त इकाइयाँ होंगी–

$Y_t^e - Y_{t-1} = 101 - 90 = 11$ इकाइयाँ

ये निवेशक तब निवेश करेंगे–

$I = \Theta\Delta Y = 2 * 11 = 22$ इकाइयाँ

अब, निवेश की ये 22 इकाइयाँ निम्नवत् औसत माँग पैदा करेंगी–

$Y = \frac{1}{0.2} * 22$

$Y_t = 110$

जैसा कि उपर्युक्त से स्पष्ट है, $Y_t > Y_t^e$, यथा , 110 >101.

आइए, अब वास्तविक और प्रत्याशित संवृद्धि दरें आकलित

$g_t^a = \frac{Y_t - Y_{t-1}}{Y_t} = \frac{110-90}{110} = 18.18\%$

$g_t^e = \frac{Y_t^e - Y_{t-1}}{Y_t^e} = \frac{101-90}{101} = 10.8\%$

जैसा कि अब स्पष्ट हैं,

$g_t^a > g_t^e > g_w$

$18.18\% > 10.8\% > 10\%$

अगली अवधि में निवेशकों को लगेगा कि उन्होंने बहुत कम पैसा लगाया और अपनी निवेश राशियाँ बढ़ा देंगे, जिससे उक्त खाई और चौड़ी हो जाएगी।

आइए, अब विपरीत स्थिति पर विचार करें। मान लीजिए कि निवेशक बहुत कम की उम्मीद करते हैं, यथा, $Y_t^e = 99$. उत्पादनार्थ प्रत्याशित अतिरिक्त इकाइयाँ हैं–

$Y_t^e - Y_{t-1} = 9$ इकाइयाँ

तब निवेशक निवेश करेंगे–

$I = \Theta\Delta Y = 2 * 9 = 18$ इकाइयाँ

अब, निवेश की ये 18 इकाइयाँ निम्न औसत माँग पैदा करेंगीः

$Y = \frac{1}{0.2} * 18$

$Y_t = 90$

जैसा कि उपर्युक्त से स्पष्ट हैं,

$Y_t < Y_t^e$, यथा, 90 < 99.

आइए, अब वास्तविक और प्रत्याशित संवृद्धि दरें आकलित करते हैं।

$$g_t^a = \frac{Y_t - Y_{t-1}}{Y_t} = \frac{90-90}{90} = 0\%$$

$$g_t^e = \frac{Y_t^e - Y_{t-1}}{Y_t^e} = \frac{99-90}{99} = 9\%$$

जैसा कि अब स्पष्ट हैं,

$$g_t^a < g_t^e < g_w$$

$$0\% < 9\% < 10\%$$

इस प्रकार, निवेशक सोचेंगे कि उन्होंने बहुत अधिक की उम्मीद की और इसलिए वे अगली अवधि में निवेश और घटा देंगे, जिससे वास्तविक एवं वांछित संवृद्धि के बीच खाई और चौड़ी हो जाएगी।

बोध प्रश्न 3

1) हैरोड–डोमर प्रतिमान में संतुलन को 'खांडे की धार पर संतुलन' में क्यों कहा जाता है?

....

....

....

....

....

2) किसी अर्थव्यवस्था में प्रत्याशित संवृद्धि दर वांछित संवृद्धि दर से अधिक होने पर क्या होता है?

....

....

....

....

....

3) किसी प्रत्याशित संवृद्धि दर के वांछित संवृद्धि दर से कम होने का क्या प्रभाव होता है? स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

1.7 हैरोड–डोमर प्रतिमान की कमियाँ

हैरोड–डोमर प्रतिमान के कुछ निष्कर्ष हैरोड और डोमर द्वारा की गई निर्णायक अवकल्पनाओं पर आधारित हैं जो इस प्रतिमान को यथार्थ से परे बना देती हैं। ये अवकल्पनाएँ निम्नवत् हैं–

1) बचत प्रवृत्ति (s) और पूँजी–उत्पादन अनुपात (θ) नियतांक माने जाते हैं। वास्तव में, ये दीर्घावधि में बदल जाने वाले होते हैं और इस प्रकार स्थिर संवृद्धि हेतु वांछनीयताओं को किंचित परिवर्तित कर देते हैं।
2) यह अवकल्पना कि श्रम और पूँजी नियत अनुपात में प्रयोग किए जाते हैं (नियत अनुमापी प्रतिफल संबंधी अवकल्पना के कारण) तर्कसंगत नहीं है। आमतौर पर, श्रम को पूँजी से प्रतिस्थापित कर अर्थव्यवस्था को स्थिर संवृद्धि के पथ पर निर्बाध आगे ले जाया जा सकता है।

   दरअसल, हैरोड प्रतिमान से भिन्न, यह पथ इतना अस्थिर नहीं है कि अर्थव्यवस्था को कैसे संपाती न होने पर अर्थव्यवस्था को दीर्घकालिक मुद्रास्फीति अथवा बेकारी का सामना करना पड़े।
3) हैरोड–डोमर प्रतिमान सामान्य कीमत स्तर में बदलावों पर विचार नहीं कर पाता। कालान्तर में कीमत परिवर्तन होते ही रहते हैं और ये अस्थिर दशाओं में स्थिरताकारी हो सकते हैं। दरअसल, यदि उत्पादन में कीमत परिवर्तनों और परिवर्ती अनुपातों का प्रावधान रखा जाए तो व्यवस्था में हैरोड के प्रतिमान में सुझाई गई स्थिरता से कहीं बेहतर मज़बूती लाई जा सकती है।
4) यह अवकल्पना कि ब्याज दरों में कोई परिवर्तन नहीं होते हैं, विश्लेषण के लिए अप्रासंगिक है। वस्तुतः, ब्याज दरें बदलती हैं और निवेश को प्रभावित भी करती हैं। अत्युत्पादन की अवधियों में ब्याज दरों में कोई भी कमी पूँजी के लिए माँग बढ़ाकर पूँजी–गहन प्रक्रियाओं को और अधिक लाभदायक बना सकती है, जिससे माल की आपूर्ति में उछाल आएगा।
5) हैरोड–डोमर प्रतिमान आर्थिक संवृद्धि पर सरकारी कार्यक्रमों के प्रभाव को अनदेखा करता है। उदाहरण के लिए, यदि सरकार विकास कार्यक्रमों को हाथ में लेती है तो हैरोड–डोमर विश्लेषण हमें कोई कारणात्मक (प्रकार्यात्मक) संबंध नहीं बतलाता।

1.8 सार–संक्षेप

इस इकाई में, हमने हैरोड–डोमर मॉडल पर चर्चा की, जो कि दीर्घावधि में अल्पकालिक केन्जीयन विश्लेषण के प्रक्षेपण का प्रत्यक्ष परिणाम है। हैरोड–डोमर मॉडल अर्थव्यवस्था में बचत और निवेश के महत्व को दर्शाता है। मॉडल को स्वतंत्र रूप से रॉय एफ. हैरोड और एवसी डोमर द्वारा विकसित किया गया था। इस मॉडल के अनुसार, किसी अर्थव्यवस्था की वृद्धि सकारात्मक रूप से उसके बचत अनुपात से संबंधित होती है और नकारात्मक रूप से उसके पूंजी–उत्पादन उनुपात से संबंधित होती है। मॉडल का तात्पर्य है कि उच्च्य बचत दर भौतिक पूंजी में अधिक निवेश की अनुमति देती है। यह निवेश किसी देश में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन को बढ़ा सकता है, जिससे विकास में वृद्धि हो सकती है। पूंजी–उत्पादन अनुपात दर्शाता है कि डॉलर के मूल्य के उत्पादन के लिए कितनी पूंजी की आवश्यकता है। यह मशीनों के उपयोग की दक्षता को दर्शाता है। इस दक्षता का अर्थ है कि कम पूंजी–उत्पादन अनुपात उच्च आर्थिक विकास की ओर ले जाता है क्योंकि कम इनपुट उच्च्य आउटपुट उत्पन्न करते हैं। मॉडल ने विकासशील दुनिया के लिए एक बड़ी अपील की। यह तर्क दिया जाता है कि विकासशील देशों में आर्थिक विकास और विकास

की निम्न दर कम बचत दरों से जुड़ी हैं। यह कम निवेश, कम उत्पादन और कम बचत का एक दुष्चक्र पैदा करता है। आर्थिक विकास दर को बढ़ावा देने के लिए घरेलू या विदेश से बचत बढ़ाना आवश्यक है। उच्च बचत आत्मनिर्भर आर्थिक विकास का एक अच्छा चक्र बनाती है। मॉडल बताता है कि अर्थव्यवस्था के संतुलित आर्थिक विकास का कोई स्वाभाविक कारण नहीं है। सतत आर्थिक विकास के लिए अपेक्षित विकास दर, वास्तविक विकास दर और वांछित विकास दर के बीच समानता की आवश्यकता होती है। हालांकि यह महज एक संयोग ही हो सकता है। वांछित विकास दर से वास्तविक विकास दर का थोड़ा सा विचलन अर्थव्यवस्था को स्थिर राज्य विकास पथ से दूर ले जाएगा। हैरोड–डोमर मॉडल में अस्थिरता इसकी कठोर मान्यताओं के कारण है जैसे कि एक निश्चित उत्पादन फलन की धारणा, एक निश्चित बचत दर और एक निश्चित पूंजी–उत्पादन अनुपात। इन सीमाओं के बावजूद, हैरोड–डोमर मॉडल महत्वपूर्ण है क्योंकि यह केन्ज़ की स्थिर अल्पकालिक बचत और निवेश सिद्धांत को गतिशील बनाता है।

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) धारणीय संवृद्धि में विपुल संभावना होती हैं मात्र 2% की निरंतर संवृद्धि भी 35 वर्ष में प्रति व्यक्ति जीडीपी दुगुनी कर देती है।
2) यदि उत्पादन करते समय फर्मों से आय का बहिर्वाह और बिक्री करते समय फर्मों में आय का अंतर्वाह दर्शाते किसी परिपथ रेखाचित्र की कल्पना करें तो आप व्यवस्था से रिसाव के स्वरूप में बचत को स्पष्ट देख पाएँगे।

बोध प्रश्न 2

1) इसे s व θ के अनुपात से दर्शाया जाता है। देखें पाठांश 1.5
2) यदि अर्थव्यवस्था को निर्बाध स्थिर रूप से आगे बढ़ना हो तो कालांतर में दो अनुपात एक समान होने चाहिए, यथा – बचत दर और पूँजी–उत्पादन अनुपात। यदि यह बात सही सिद्ध होती है तो अर्थव्यवस्था किसी ज्ञात संवृद्धि दर, $\frac{s}{\theta}$, पर स्थिर रूप से आगे बढ़ेगी, जो कि बचत दर और पूँजी–उत्पादन अनुपात का अनुपात होता है।
3) समीकरण बदलकर हो जाता है: $\frac{s}{\theta} = g^* + n.$

बोध प्रश्न 3

1) वांछित संवृद्धि दर से वास्तविक संवृद्धि दर का किंचित् भी व्यतिक्रमण अर्थव्यवस्था को स्थिरावस्था संवृद्धि पथ से भटका कर दूर ले जाता है।
2) यदि g_t^e का मान $g_w = \frac{s}{\theta}$ से अधिक हो तो वास्तविक संवृद्धि दर पहले से ही उच्च प्रत्याशित संवृद्धि दर से भी ऊँची हो जाएगी। निवेशकों को तब गलत संकेत मिलेगा। इस प्रकार की स्थिति चिरन्तन मुद्रास्फीति की ओर ले जाएगी क्योंकि वास्तविक आय अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता संवृद्धि द्वारा अपेक्षित दर से भी तेज़ गति से बढ़ती है। इससे निम्नलिखित असमानता सिद्ध होती है: $g_t^a > g_t^e > g_w = \frac{s}{\theta}$
3) यदि $g_t^e < g_w$ तो वास्तविक संवृद्धि दर प्रत्याशित वृद्धि दर से भी कम होगी। दूसरे शब्दों में, $g_t^a < g_t^e < g_w$. इस प्रकार की स्थिति चिरन्तन मंदी की ओर ले जाएगी क्योंकि वास्तविक आय अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता के पूर्ण उपयोग हेतु वांछित दर से भी धीमी गति से बढ़ती है।

इकाई 2 सोलो संवृद्धि मॉडल*

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 आर्थिक संवृद्धि के सिद्धांत

2.3 सोलो मॉडल की अभिधारणाएँ

2.4 स्थिरावस्था विकास पथ

2.4.1 मॉडल की गतिशीलता

2.4.2 पूँजी का स्थिरावस्था स्तर

2.4.3 संतुलित विकास पथ

2.5 पूँजी संचय के स्तर का स्वर्ण सिद्धांत

2.6 दीर्घावधि जीवन स्तर के निर्धारक तत्व

2.6.1 बचत अनुपात में वृद्धि का प्रभाव

2.6.2 जनसंख्या वृद्धि दर का प्रभाव

2.7 सोलो मॉडल में प्रौद्योगिकीय प्रगति

2.7.1 संतुलित विकास पथ

2.7.2 पूँजी का स्वर्ण–सिद्धांत स्तर

2.8 सार–संक्षेप

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि –

- नवशास्त्रीय विकास मॉडल की मदद से आर्थिक संवृद्धि की व्याख्या कर सकें;
- सोलो मॉडल में सम्मिलित अभिधारणाओं के निहितार्थ दर्शा सकें;
- तय कर सकें कि किसी बहिर्जात जनसंख्या वृद्धि दर एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति के साथ स्थिरावस्था संवृद्धि कैसे लाई जाए;
- संतुलित विकास पथ पर उत्पादन प्रति श्रमिक अर्थात् श्रमिक की प्रति इकाई एवं पूँजी प्रति श्रमिक जैसे मुख्य चरों की वृद्धि निर्धारित कर सकें;
- दीर्घावधि जीवन स्तर पर बचत दर व जनसंख्या वृद्धि दर का प्रभाव समझ सकें; तथा
- पूँजी के स्वर्ण–सिद्धांत स्तर की समीक्षा कर सकें।

2.1 प्रस्तावना

हैरोड–डोमर मॉडल की कमियों ने अनेक अर्थशास्त्रियों को कुछ हटकर सोचने को प्रेरित किया। पिछली इकाई से आपको याद ही होगा कि इस मॉडल में अनुबद्ध वृद्धि दर बचत दर चर ‘s’ और पूँजी–उत्पादन अनुपात चर ‘v’ के संबंध से दर्शाई जाती है। एक विकट समस्या इसलिए सामने आई कि ये दोनों ही चर नियतांक होते हैं, जिससे उनका अनुपात कोई स्थिरांक ही प्राप्त होता है, और इस अनुपात में फेरबदल की कोई गुंजाइश नहीं

* डॉ० आर्ची भाटिया, सह–आचार्य, हिमाचल प्रदेश केन्द्रिय विश्वविद्यालय, धर्मशाला।

होती। वास्तविक जीवन में, बहरहाल, अर्थव्यवस्थाओं के समक्ष ऐसी विकट समस्याएँ नहीं आतीं और नीति–निर्माताओं के पास कुछ उपयोग क्षमता होती ही है।

उक्त मॉडल को अधिक यथार्थपरक बनाने के लिए अर्थशास्त्रियों ने दो तरीके अपनाए। वर्ष 1957 में आर्थिक विकास सिद्धांत में एक बड़ा योगदान करते हुए राबर्ट. एम. सोलो ने आर्थिक विकास का नवशास्त्रीय मॉडल विकसित किया, जिसके लिए उन्हें वर्ष 1987 में अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार दिया गया। सोलो ने उन कारकों की व्याख्या करने में भारी योगदान दिया है जो विभिन्न देशों के लिए आर्थिक वृद्धि दर निर्धारित करते हैं।

हैरोड–डोमर मॉडल का विस्तार सोलो ने एक उत्पादन कारक स्वरूप श्रम को जोड़कर और यह मानकर किया कि पूँजी–उत्पादन अनुपात नियत नहीं होता है। सोलो विकास मॉडल ही यह दर्शाता है कि किस प्रकार बचत, जनसंख्या वृद्धि एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति किसी अर्थव्यवस्था का उत्पादन और कालांतर में उसकी संवृद्धि को प्रभावित करते हैं। यह इस बात की भी व्याख्या करता है कि क्यों राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है और क्यों कुछ अर्थव्यवस्थाएँ दूसरों की तुलना में तेजी से तरक्की करती हैं।

इस इकाई में हम उक्त मॉडल की अवकल्पनाओं से ही शुरुआत करेंगे। तदंतर, स्थिरावस्था विकास पथ का अवकलन करेंगे। हम यह भी समझेंगे कि स्थिर अवस्था में बचत दर में परिवर्तन, जनसंख्या और प्रौद्योगिकीय प्रगति प्रति व्यक्ति उत्पादन और प्रति व्यक्ति पूँजी को कैसे प्रभावित करते हैं। इकाई का समापन हम विश्व की अर्थव्यवस्थाओं के लिए सोलो माडल के निहितार्थों पर चर्चा से करेंगे।

2.2 आर्थिक संवृद्धि के सिद्धांत

सोलो ने एक कुल उत्पादन फलन पर विचार किया जो कि उत्पादन (Y) और दो आदानों, यथा पूँजी (K) और श्रम (L) के बीच संबंध को परिभाषित करता है। संकेत प्रयोग कर इसे निम्नवत् दर्शाया जाता है –

$$Y = EF(K, L) \qquad \text{... (2.1)}$$

जहाँ E प्रौद्योगिकी का स्तर दर्शाता है।

समीकरण (2.1) में, यदि आदानों (K और L) के स्तर नियत हों और प्रौद्योगिकी का स्तर समान हो तो उत्पादन भी नियत ही रहेगा – ऐसे में कोई आर्थिक वृद्धि नहीं होगी। उत्पादन स्तर की वृद्धि हेतु या तो आगत स्तर बढ़े या फिर प्रौद्योगिकी का स्तर सुधरे (अर्थात् 'प्रौद्योगिकीय प्रगति' हो अथवा 'उत्पादकता वृद्धि'), या फिर दोनों। तदनुसार, उत्पादन वृद्धि के दो स्रोत दिखाई पड़ते हैं, यथा (i) आगत वृद्धि, और (ii) उत्पादकता वृद्धि। सोलो के अनुसार, उत्पादन वृद्धि दर, आगत वृद्धि दरों और उत्पादकता वृद्धि के बीच संबंध निम्नवत् होता है –

$$\frac{\Delta Y}{Y} = \frac{\Delta E}{E} + a_K \frac{\Delta K}{K} + a_L \frac{\Delta L}{L} \qquad \text{... (2.2)}$$

जहाँ

$\frac{\Delta Y}{Y}$ = उत्पादन वृद्धि दर,

$\frac{\Delta E}{E}$ = उत्पादकता वृद्धि दर

$\frac{\Delta K}{K}$ = पूँजी आगत वृद्धि दर

$\frac{\Delta L}{L}$ = श्रम आगत वृद्धि दर

a_K = पूँजी के सन्दर्भ में उत्पादन की लोचता

a_L = श्रम के सन्दर्भ में उत्पादन की लोचता

समीकरण (2.2) को 'संवृद्धि लेखा समीकरण' कहा जाता है। यह लेखांकन संवृद्धि के स्रोतों के विषय में उपयोगी जानकारी उपलब्ध कराता है। यह, बहरहाल, किसी देश के संवृद्धि निष्पादन को पूर्णतः स्पष्ट नहीं करता। चूँकि संवृद्धि लेखांकन किसी भी अर्थव्यवस्था की ज्ञात आगत वृद्धि दरों को ही ध्यान में रखता है, वह यह स्पष्ट नहीं कर सकता कि क्यों पूँजी व श्रम उन दरों पर बढ़ते हैं। शेयर पूँजी की वृद्धि परिवारों व फर्मों द्वारा लिए गये बचत एवं निवेश निर्णयों का परिणाम दर्शाती है, जबकि श्रम की वृद्धि जनसंख्या वृद्धि पर निर्भर करती है। ज्ञात शेयर पूँजी व श्रम को लेकर संवृद्धि लेखांकन एक स्थिर चित्र प्रस्तुत करता है। अगले पाठांश में हम आर्थिक संवृद्धि के गतिविज्ञान का सूक्ष्म अवलोकन करेंगे अर्थात् यह देखेंगे कि संवृद्धि प्रक्रिया कालांतर में कैसे आगे बढ़ती है।

2.3 सोलो मॉडल की अभिधारणाएँ

सोलो मॉडल की मुख्य अभिधारणाएँ निम्नलिखित हैं –

i) अर्थव्यवस्था आदानों के पूर्ण नियोजन के अनुसार काम करती है।

ii) अर्थव्यवस्था के काम में कोई सरकारी हस्तक्षेप नहीं होता (यह एक मुक्त–बाजार अर्थव्यवस्था होती है)।

iii) यहाँ कोई बाह्य व्यापार नहीं होता, जिससे यह एक "बंद अर्थव्यवस्था" कहलाती है।

iv) यह अर्थव्यवस्था एक नवशास्त्रीय उत्पादन फलन के अनुसार काम करती है। यह नियत अनुमापी प्रतिफल दर्शाती है। उदाहरण के लिए, यदि सभी उत्पादन कारक (यहाँ K और L) दुगने कर दिए जाएँ तो उत्पादन ठीक दो गुना होगा। संकेत रूप में, किसी भी धनात्मक संख्या z के लिए

$$zY = F(zK, zL) \quad \text{... (2.3)}$$

पूँजी व श्रम दोनों ही उत्पादन हेतु अनिवार्य होते हैं। यह उत्पादन फलन श्रम बल के सापेक्ष अर्थव्यवस्था में सभी मात्राओं का विश्लेषण करने में सहायक सिद्ध होता है। यदि हम $z = \frac{1}{L}$ को समीकरण (2.3) में रखें तो परिणाम निम्नवत् प्राप्त होगा –

$$\frac{Y}{L} = F\left(\frac{K}{L}, 1\right) \quad \text{... (2.4)}$$

उत्पादन प्रति श्रमिक $\frac{Y}{L}$ पूँजी प्रति श्रमिक $\frac{k}{L}$ का ही एक फलन होता है।

आइए, $y = \frac{Y}{L}$, उत्पादन प्रति श्रमिक, और $= \frac{K}{L}$, पूँजी प्रति श्रमिक को परिभाषित करें। तदनुसार, समीकरण (2.4) में दिए गए उत्पादन फलन को हम $y = F(k, 1)$, के रूप में लिख सकते हैं, जो कि निम्नवत् पुनः सूत्रबद्ध किया जा सकता है –

$$y = f(k) \quad \text{… (2.5)}$$

समीकरण (2.5) के रूप में दिए गये उत्पादन फलन को तीन शर्तें पूरा करने वाला माना जाता है, यथा $f(0) = 0$, $f'(k) > 0$ और $f''(k) < 0$. इन शर्तों की व्याख्या इस प्रकार की जाती है – प्रथम, जब पूँजी प्रति श्रमिक शून्य होती है तो उत्पादन भी शून्य ही होता है। द्वितीय, पूँजी प्रति इकाई श्रम का सीमांत उत्पाद धनात्मक होता है। तृतीय, पूँजी प्रति इकाई श्रम का सीमांत उत्पाद किसी ह्रासमान दर से बढ़ता है (दूसरे शब्दों में, पूँजी का सीमांत उत्पाद धनात्मक होता है परंतु पूँजी प्रति इकाई श्रम बढ़ने पर यह घटता है।

ऊपर समीकरण (2.5) में दिया गया उत्पादन फलन चित्र 2.1 में दर्शाया गया है। आप देखेंगे कि उत्पादन फलन धनात्मक प्रवणता तो दर्शाता है मगर पूँजी प्रति श्रमिक की राशि बढ़ने पर वह समतल होता जाता है, जो यह इंगित करता है कि यहाँ ह्रासमान लाभ है। जब k निम्न हो तो औसत श्रमिक के पास काम चलाने के लिए बहुत ही कम पूँजी होती है, अतः पूँजी की कोई भी अतिरिक्त इकाई उपयोगी होती है और ढेर सारा अतिरिक्त उत्पादन देती है। दूसरी ओर, जब k उच्च हो तो औसत श्रमिक के पास पहले ही ढेर सारी पूँजी होती है, अतः पूँजी की कोई अतिरिक्त इकाई किंचित् ही उत्पादन बढ़ाती है।

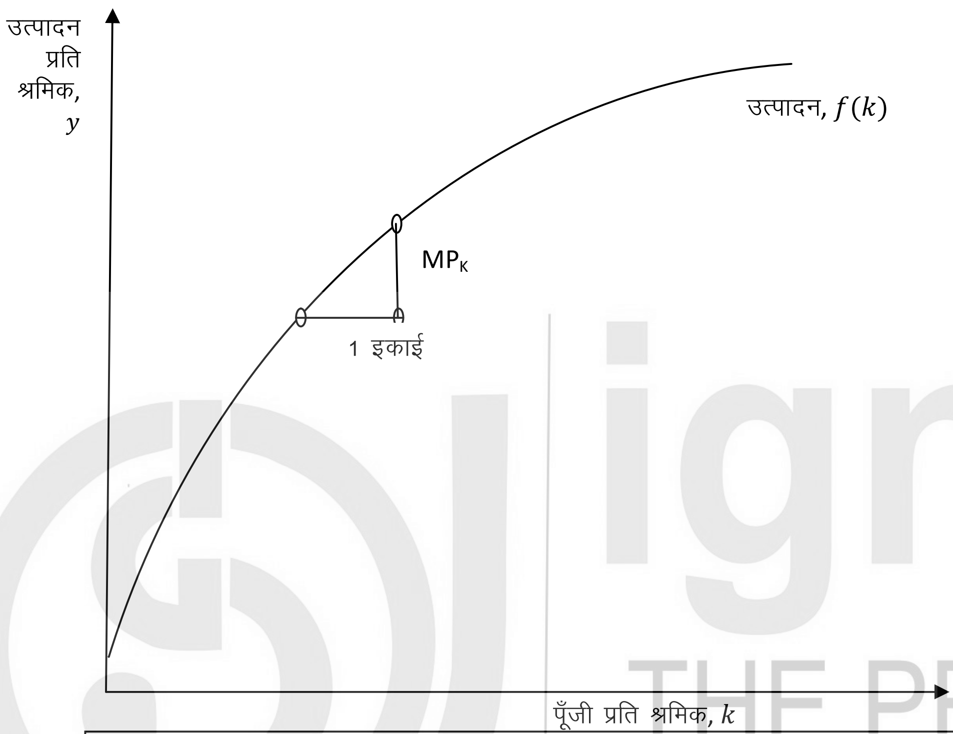

चित्र 2.1 दर्शाता है कि उत्पादन प्रति श्रमिक पूँजी प्रति श्रमिक पर निर्भर करता है। उत्पादन फलन की प्रवणता – पूँजी का सीमांत उत्पाद – धनात्मक होती है मगर k बढ़ने पर समतल होती जाती है, जो पूँजी प्रति श्रमिक पर ह्रासमान लाभ दर्शाता है।

चित्र 2.1: नवशास्त्रीय उत्पादन फलन

v) श्रम आगत वृद्धि n की किसी नियत दर पर बाहरी रूप से (मॉडल के बाहर से प्रदत्त) निर्धारित की जाती है। संकेत रूप में,

$$n = \frac{1}{L}\frac{dL}{dt}, \frac{dL}{dt} = \dot{L(t)} \quad \text{... (2.6)}$$

vi) और क्रमशः प्रौद्योगिकी, E (जो कि हम बाद में लाएँगे) व g. और $g = \frac{1}{E}\frac{dE}{dt}$ और $\frac{dE}{dt} = \dot{E(t)}$

vii) सोलो मॉडल यह मानकर चलता है कि हर साल लोग अपनी आय का एक अंश, s, बचाते हैं और एक अंश का उपभोग कर लेते हैं (1–s)। यहाँ बचत दर नियत होती है। उपभोग फलन निम्नवत् दर्शाया जा सकता है –

$$c = (1 - s)y \quad \text{.... (2.7)}$$

viii) शेयर पूँजी का प्रति अवधि एक नियत दर δ पर अवमूल्यन होता है। एक अवधि से दूसरी अवधि के बीच शेयर पूँजी में परिवर्तन दो बातों पर निर्भर करता है – एक, निवेश पर, जो कि शेयर पूँजी बढ़ा देता है, और दूसरे, अवमूल्यन पर, जो कि शेयर पूँजी घटाता रहता है।

शेयर पूँजी में परिवर्तन = निवेश – अवमूल्यन

$$\dot{K}(t) = I - \delta K(t)\ ,\ \dot{K}(t) = \frac{dK}{dt} \quad ...\ (2.8)$$

शेयर पूँजी जितनी अधिक होगी उतनी ही अधिक अवमूल्यन की राशि होगी।

बोध प्रश्न 1

1) सोलो मॉडल में प्रयुक्त उत्पादन फलन के गुणधर्म बताएँ।

....

....

....

....

....

2) संवृद्धि लेखा समीकरण का संक्षिप्त वर्णन करें।

....

....

....

....

....

2.4 स्थिरावस्था विकास पथ

माल की माँग उपभोग और निवेश से उत्पन्न होती है।

$$y = c + i \quad ...\ (2.9)$$

शून्य सरकारी खरीद वाली किसी भी बंद अर्थव्यवस्था के लिए यही होती है उसकी राष्ट्रीय आय अस्मिता या पहचान। इसका लक्ष्य बचत दर निर्धारित करना होता है, जो कि अभीष्ट होती है।

समीकरण (2.7) से लेकर c का मान समीकरण (2.9) में रखें।

$$y = (1 - s)y + i \quad ...\ (2.10)$$

हमें प्राप्त होता है,

$$i = sy \quad ...\ (2.11)$$

यह समीकरण दर्शाता है कि निवेश बचत के बराबर होता है। तदनुसार, बचत दर s निवेशार्थ तत्पर उत्पादन का अंश होती है।

आइए, $y = f(k)$ को समीकरण (2.11) में प्रतिस्थापित करते हैं। हमें प्राप्त होता है –

$$i = sf(k) \quad ...\ (2.12)$$

समीकरण (2.12) शेयर पूँजी प्रति श्रमिक, k, के ही एक फलन स्वरूप निवेश प्रति श्रमिक, i, व्यक्त करता है। चित्र 2.2 किसी भी ज्ञात शेयर पूँजी, k, को दर्शाता है; उत्पादन फलन, $y = f(k)$, यह तय करता है कि अर्थव्यवस्था कितना उत्पादन करे; और बचत दर, s, उपभोग प्रति श्रमिक, c, और निवेश प्रति श्रमिक, i, के बीच उस उत्पादन का आवंटन तय करती है।

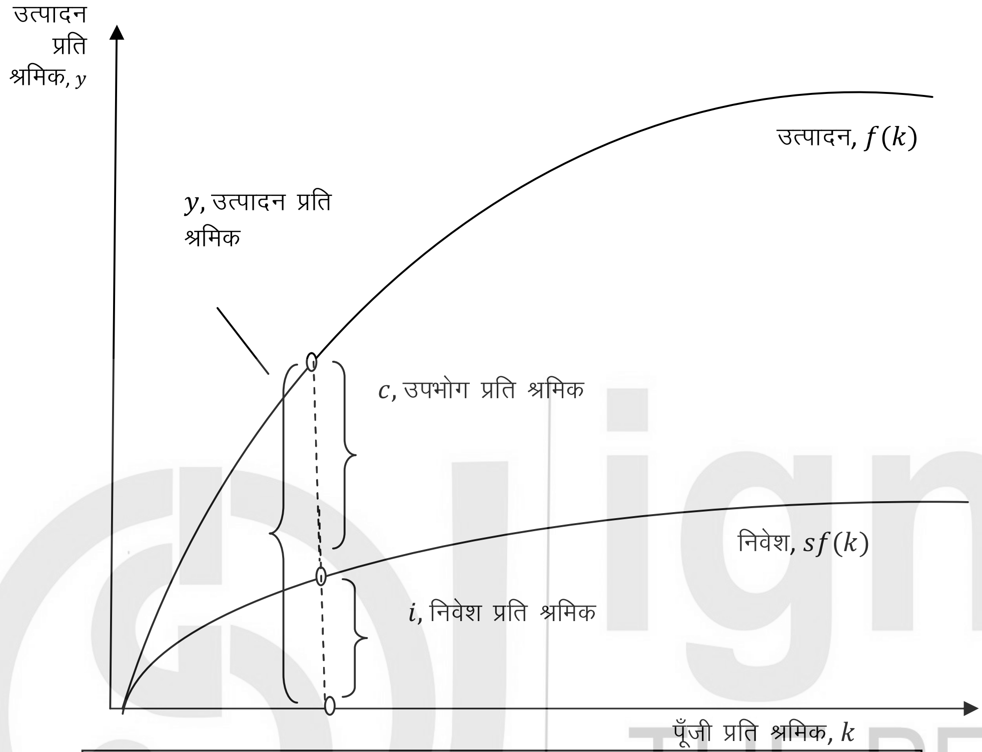

बचत दर, s, उपभोग और निवेश के बीच आवंटन तय करती है। पूँजी, k, के किसी भी स्तर के लिए उत्पादन $f(k)$ होता है, निवेश $sf(k)$ होता है, और उपभोग $f(k) - sf(k)$ होता है।

चित्र 2.2: उत्पादन, उपभोग और निवेश

2.4.1 मॉडल की गतिशीलता

आइए, अब उपर्युक्त अर्थव्यवस्था का व्यवहार निश्चित करते हैं। श्रम बहिर्जात होता है और मॉडल के भीतर निर्धारित नहीं किया जाता। तदनुसार, अर्थव्यवस्था के व्यवहार का लक्षण वर्णन करने के लिए हमें दूसरी आगत, पूँजी, के व्यवहार का विश्लेषण करना होगा, यथा –

$\mathrm{k} = \frac{\mathrm{K}}{\mathrm{L}}$, इसके लिए हम निम्नवत् शृंखला नियम का प्रयोग कर सकते हैं –

$$\dot{k}(t) = \frac{\dot{K}(t)}{L(t)} - \frac{K(t)}{L(t)^2} * \dot{L}(t) \qquad \text{... (2.13)}$$

$$\dot{k}(t) = \frac{\dot{K}(t)}{L(t)} - \frac{K(t)}{L(t)} * \frac{\dot{L}(t)}{L(t)} \qquad \text{... (2.14)}$$

समीकरण (2.8) से $\dot{K}(t)$ और समीकरण (2.6) से $\frac{\dot{L}(t)}{L(t)} = n$ को समीकरण (2.14) में प्रतिस्थापित करें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

$$\dot{k(t)} = \frac{I-\delta K(t)}{L(t)} - \frac{K(t)}{L(t)} * n \quad \text{... (2.15)}$$

समीकरण (2.15) में e $\frac{I}{L} = i$ और $\frac{K}{L} = k$ को प्रतिस्थापित करें।

$$\dot{k(t)} = i - \delta k - nk \quad \text{... (2.16)}$$

समीकरण (2.12) से i को समीकरण (2.16) में प्रतिस्थापित करें।

$$\dot{k(t)} = sf(k) - (\delta + n)k \quad \text{... (2.17)}$$

समीकरण (2.17) ही सोलो मॉडल का मुख्य समीकरण है। इसके अनुसार, शेयर पूँजी प्रति इकाई श्रम की परिवर्तन दर ही इन दोनों पदों के बीच अंतर दर्शाती है। प्रथम पद, $sf(k)$, वास्तविक निवेश प्रति इकाई श्रम है, यथा उत्पादन प्रति इकाई श्रम, $f(k)$, और उत्पादन का वह अंश जो s में निवेशित है। द्वितीय पद, $(\delta + n)k$, हानिरहित निवेश है, यथा किए जाने वाले निवेश की वह राशि जिससे k अपने वर्तमान स्तर पर बना रहे। इस बात के दो कारण हैं कि कुछ निवेश k को गिरने से बचाने के लिए क्यों आवश्यक होता है। प्रथम, वर्तमान पूँजी का अवमूल्यन हो रहा है; शेयर पूँजी को गिरावट से बचाने के लिए पूँजी वापस रखी जानी चाहिए।

समीकरण (2.17) में यही δk पद है। दूसरे, श्रम की मात्रा बढ़ रही है। चूँकि श्रम की मात्रा n की दर से बढ़ रही है, k को स्थिर रखने के लिए शेयर पूँजी n की दर से बढ़नी ही चाहिए। यही है समीकरण (2.17) में nk पद। यही पूँजी से नये श्रमिक, n, प्रदान करने के लिए आवश्यक निवेश की मात्रा है। यह समीकरण दर्शाता है कि जनसंख्या वृद्धि काफी कुछ अवमूल्यन की ही भाँति पूँजी संचय प्रति श्रमिक घटाती है। जब वास्तविक निवेश प्रति इकाई श्रम हानिरहित व्यापार हेतु आवश्यक निवेश से अधिक हो जाता है तो k बढ़ता है। जब वास्तविक निवेश हानिरहित व्यापार निवेश से कम होता है तो k घटता है। साथ ही, जब ये दोनों बराबर होते हैं तो k स्थिर रहता है।

2.4.2 पूँजी का स्थिरावस्था स्तर

किसी ऐसी स्थिति को स्थिरावस्था कहा जाता है जिसमें अर्थव्यवस्था का उत्पादन प्रति श्रमिक, y, उपभोग प्रति श्रमिक, c, और शेयर पूँजी प्रति श्रमिक, k, नियत होते हैं। यह स्पष्ट करने के लिए कि सोलो मॉडल कैसे काम करता है, हम पहले किसी स्थिर अवस्था के अभिलक्षण जानेंगे और फिर उसे हासिल करने की विधि समझेंगे। चित्र 2.3 में एकल शेयर पूँजी, k^*, वह बिंदु है जहाँ निवेश की मात्रा अवमूल्यन की मात्रा और पूँजी से नये श्रमिक प्रदान करने हेतु आवश्यक निवेश की मात्रा, n, के बराबर ही होती है। यदि उक्त अर्थव्यवस्था स्वयं को शेयर पूँजी के इस स्तर पर पाती है तो शेयर पूँजी में कोई घट–बढ़ नहीं होगी क्योंकि इस पर दो परस्पर विरोधी शक्तियाँ काम करती हैं – निवेश और 'अवमूल्यन व जनसंख्या वृद्धि' – बस संतुलन रखें; यथा, k^* पर $\dot{k} = 0$, जिससे कालांतर में शेयर पूँजी प्रति श्रमिक, k, और उत्पादन प्रति श्रमिक, $f(k)$, स्थिर (बढ़ने अथवा घटने की बजाय) ही रहते हैं। इसी कारण k^* को पूँजी का **स्थिरावस्था स्तर** कहा जाता है।

किसी भी साम्यावस्था को k के धनात्मक मान से परिभाषित किया जाता है, जिसे k^* से इस प्रकार इंगित किया जाता है कि $\dot{k} = 0$ हो। इसी को **स्थिर अवस्था** कहा जाता है। उत्पादन प्रति श्रमिक का एक अनुरूप मान होता है, जिसे y^* से इस प्रकार इंगित किया जाता है कि $\dot{y} = 0$ हो। चर k^* का यह स्थिरावस्था मान समीकरण (2.17) से आकलित है।

$$0 = sf(k^*) - (\delta + n)k^* \quad \text{… (2.18)}$$

तत्पश्चात y^* निम्नलिखित से आकलित है –

$$y^* = f(k^*)$$

यह स्थिर अवस्था दो कारणों से महत्वपूर्ण होती है। जैसा कि हमने अभी–अभी देखा, स्थिर अवस्था में कोई भी अर्थव्यवस्था वहीं बनी रहती है। इसके अलावा, और जो महत्वपूर्ण भी है, स्थिर अवस्था में न रहने वाली कोई भी अर्थव्यवस्था वहाँ चली जाएगी अर्थात् उस पूँजी के स्तर पर ध्यान दिए बगैर जहाँ से वह आरंभ हुई, यह अर्थव्यवस्था पूँजी के साम्यावस्था स्तर पर ही आकर रुकेगी। इस अर्थ में, स्थिर अवस्था अर्थव्यवस्था की दीर्घावधि साम्यावस्था को निरूपित करती है।

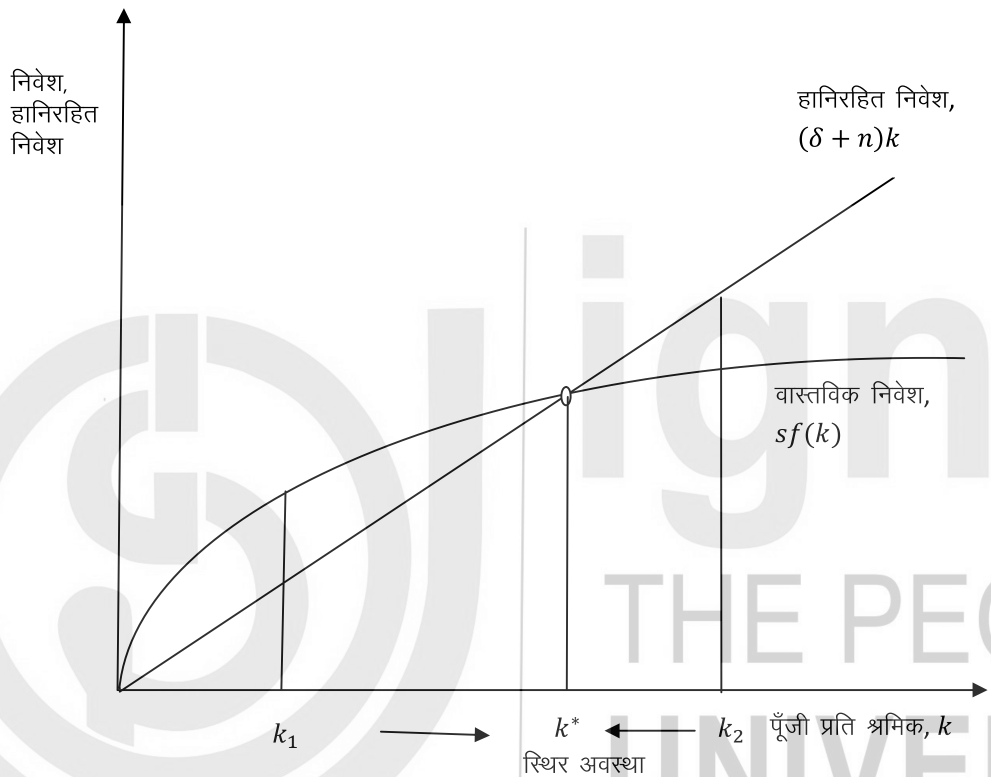

पूँजी k^* का स्थिरावस्था स्तर वह स्तर है जहाँ निवेश हानिरहित निवेश $(\delta + n)k$ के बराबर होता है। चर k^* से नीचे, यथा k_1 पर, शेयर पूँजी बढ़ती है क्योंकि निवेश अवमूल्यन और जनसंख्या वृद्धि से अधिक है। चर k_2 पर शेयर पूँजी घटती है। कोई भी अर्थव्यवस्था स्थिरावस्था स्तर, k^*, पर जाकर ही रुकती है।

चित्र 2.3: सोलो मॉडल में स्थिरावस्था स्तर

यह समझने के लिए कि कोई अर्थव्यवस्था स्थिरावस्था स्तर पर जाकर ही क्यों रुकती है, मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था चित्र 2.3 में स्तर k_1 जैसे पूँजी के स्थिरावस्था स्तर से भी कम पर शुरुआत करती है। इस उदाहरण में, निवेश का स्तर हानिरहित निवेश (अवमूल्यन और जनसंख्या वृद्धि) से ऊपर है। कालांतर में शेयर पूँजी बढ़ेगी और उत्पादन $f(k)$ के साथ–साथ तब तक बढ़ती रहेगी जब तक कि वह स्थिर अवस्था, k^*, पर नहीं पहुँच जाती।

इसी प्रकार, मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था स्तर k_2 जैसे पूँजी के स्थिरावस्था स्तर से अधिक पर शुरुआत करती है। इस उदाहरण में निवेश हानिरहित निवेश से कम है; पूँजी वापस आने की गति से कहीं धीमे घट रही है।

शेयर पूँजी पुनः स्थिरावस्था स्तर पर आते–आते घट जाएगी। एक बार जब शेयर पूँजी स्थिर अवस्था में पहुँच जाती है तो निवेश अवमूल्यन और जनसंख्या वृद्धि के बराबर हो जाता है, और शेयर पूँजी पर बढ़ने अथवा घटने के लिए कोई दवाब नहीं रहता। चित्र 2.4 इस जानकारी को एक प्रावस्था आरेख के रूप में दर्शाता है, जहाँ $\dot{k}$ चर k का एक फलन है। यदि k आरंभतः k^* से कम होगा तो वास्तविक निवेश हानिरहित निवेश से अधिक होगा और इसीलिए $\dot{k}$ धनात्मक है, यथा k वर्धमान है। यदि k चर k^* से अधिक होगा तो $\dot{k}$ ऋणात्मक होगा, यथा k ह्रासमान होगा। अंततः यदि k चर k^* के बराबर होता है तो $\dot{k}$ शून्य होगा। तदनुसार, इस बात पर ध्यान दिए बगैर कि k ने कहाँ से शुरुआत की, वह k^* की ओर चला जाता है।

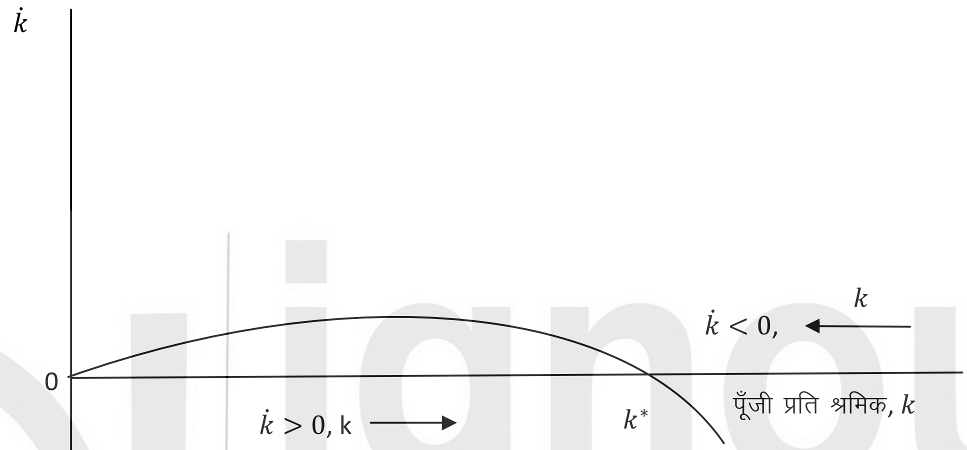

ऊपर दिया गया प्रावस्था आरेख दर्शाता है कि स्थिरावस्था, जो कि अद्वितीय होती है, भी स्थिर है – यहाँ दीर्घावधि में पहुँचा जाएगा, यथा पास रहते हुए भी कभी न मिलने वाली स्थिति में। जब k स्थिरावस्था स्तर k^* से कम होता है तो पूँजी प्रति श्रमिक में परिवर्तन की दर धनात्मक होती है, $\dot{k} > 0$, और शेयर पूँजी प्रति श्रमिक k से बढ़कर k^* पर पहुँच जाती है।

चित्र 2.4: सोलो मॉडल में k के लिए प्रावस्था आरेख

2.4.3 संतुलित विकास पथ

जनसंख्या वृद्धि के साथ स्थिर अवस्था में पूँजी प्रति श्रमिक और उत्पादन प्रति श्रमिक नियत रहते हैं। चूँकि यहाँ श्रमिकों की संख्या n की दर से बढ़ रही है, कुल उत्पादन और कुल पूँजी भी n की दर से ही बढ़ने चाहिए। संकेत रूप में –

$$y = \frac{Y}{L}, \qquad k = \frac{K}{L}$$

इसके अलावा, स्थिर अवस्था में

$\dot{y} = 0$ और $\dot{k} = 0$

समय के संदर्भ में k के साथ अवकलित करने पर –

$$\frac{dk}{dt} = \frac{1}{L}\frac{dK}{dt} - \frac{K}{L^2}\frac{dL}{dt} \qquad \text{... (2.19)}$$

$$\frac{dk}{dt} = \frac{K}{L}\left(\frac{1}{K}\frac{dK}{dt} - \frac{1}{L}\frac{dL}{dt}\right) \qquad \text{... (2.20)}$$

$$\frac{1}{k}\frac{dk}{dt} = \frac{1}{K}\frac{dK}{dt} - \frac{1}{L}\frac{dL}{dt} \qquad \text{... (2.21)}$$

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

स्थिर अवस्था में $\frac{dk}{dt} = 0$, और $\frac{1}{L}\frac{dL}{dt} = n$ उपर्युक्त को समीकरण 2.21 में रखने पर

$$\frac{1}{K}\frac{dK}{dt} = n \quad \text{... (2.22)}$$

इसी प्रकार, समय के संदर्भ में y को अवकलित करने पर

$$\frac{dy}{dt} = \frac{1}{L}\frac{dY}{dt} - \frac{Y}{L^2}\frac{dL}{dt} \quad \text{... (2.23)}$$

$$\frac{dy}{dt} = \frac{Y}{L}\left(\frac{1}{Y}\frac{dY}{dt} - \frac{1}{L}\frac{dL}{dt}\right) \quad \text{... (2.24)}$$

$$\frac{1}{y}\frac{dy}{dt} = \frac{1}{Y}\frac{dY}{dt} - \frac{1}{L}\frac{dL}{dt} \quad \text{... (2.25)}$$

स्थिर अवस्था में $\frac{dy}{dt} = 0$, और $\frac{1}{L}\frac{dL}{dt} = n$

उपर्युक्त मानों को समीकरण (2.25) में प्रतिस्थापित करने पर हमें प्राप्त होता है –

$$\frac{1}{Y}\frac{dY}{dt} = n \quad \text{... (2.26)}$$

स्थिर अवस्था में उत्पादन और शेयर पूँजी जनसंख्या वृद्धि की दर से बढ़ते हैं, जबकि उत्पादन प्रति श्रमिक और पूँजी प्रति श्रमिक नियत ही रहते हैं। तदनुसार, सोलो मॉडल का अर्थ हुआ कि अपने आरंभ बिंदु पर ध्यान दिए बगैर कोई भी अर्थव्यवस्था किसी भी संतुलित विकास पथ की ओर चली जाती है, यथा एक ऐसी स्थिति जहाँ मॉडल का प्रत्येक चर बाहरी रूप से जनसंख्या वृद्धि से दर्शायी दर पर संवृद्धि करता है।

2.5 पूँजी संचय के स्तर का स्वर्ण सिद्धांत

यदि हम उक्त मॉडल में परिवार शामिल करना चाहें तो उनका कल्याण उत्पादन पर नहीं बल्कि उपभोग पर निर्भर करेगा – निवेश भविष्य में किसी आदान को उत्पादन के अंतर्गत लाना मात्र होता है। तदनुसार, अनेक उद्देश्यों से हम उत्पादन व्यवहार की बजाय उपभोग व्यवहार में अधिक रुचि लेने लगते हैं। इस प्रकार कोई भी उदारमना नीति–निर्माता उपभोग के उच्चतम स्तर वाली स्थिर अवस्था का विकल्प चुनना चाहेगा। उपभोग अधिकतम करने वाले चर k के स्थिरावस्था मान को **पूँजी स्तर का स्वर्ण नियम** कहा जाता है और k^*_{Gold} से इंगित किया जाता है।

राष्ट्रीय आय लेखा पहचान

$$y = c + i \quad \text{… (2.19)}$$

उपभोग प्रति श्रमिक होगा –

$$c = y - i \quad \text{… (2.20)}$$

चूँकि हानिरहित निवेश, k^*, पर स्थिरावस्था उत्पादन $f(k^*)$ है और स्थिरावस्था निवेश $(\delta + n)k^*$ स्थिरावस्था उपभोग निम्नवत् व्यक्त किया जा सकता है –

$$c = f(k^*) - (\delta + n)k^* \quad \text{...(2.21)}$$

यह समीकरण दर्शाता है कि स्थिरावस्था पूँजी के स्थिरावस्था उपभोग पर दो परस्पर विरोधी प्रभाव होते हैं। एक ओर अधिक पूँजी का अर्थ होगा अधिक उत्पादन तो दूसरी ओर अधिक पूँजी का अर्थ यह भी होगा कि निरंतर घटती पूँजी वापस लाने के लिए अधिक उत्पादन का सहारा लेना होगा और नये श्रमिकों को पूँजी के उच्च स्तर पर रखना होगा।

आगे चित्र 2.5 स्थिरावस्था शेयर पूँजी के फलन स्वरूप स्थिरावस्था उत्पादन और स्थिरावस्था हानिरहित निवेश दर्शाता है। स्थिरावस्था उपभोग उत्पादन और हानिरहित

निवेश के बीच अंतर को कहा जाता है। इस चित्र के अनुसार, शेयर पूँजी का एक ही स्तर है – स्वर्ण-नियम k^*_{Gold} जो कि उपभोग को अधिकतम करता है। यदि शेयर पूँजी स्वर्ण–नियम स्तर से नीचे होगी तो शेयर पूँजी में वृद्धि उत्पादन को बढ़ाकर हानिरहित निवेश से ऊपर ले जाएगी, जिससे उपभोग बढ़ेगा। इस स्थिति में उत्पादन फलन $(\delta + n)k^*$ रेखा से कहीं अधिक ढालू होता है, जिससे इन दो वक्रों के बीच का अंतर – जो उपभोग के बराबर होता है — k^* बढ़ने के साथ–साथ बढ़ता है। दूसरी ओर, यदि शेयर पूँजी स्वर्ण–नियम स्तर से ऊपर हो तो शेयर पूँजी में कोई भी वृद्धि उपभोग घटा देती है क्योंकि उत्पादन में वृद्धि हानिरहित निवेश में वृद्धि से कम ही रहती है। इस स्थिति में उत्पादन फलन $(\delta + n)k^*$ रेखा की तुलना में समतल ही रहता है, जिससे इन वक्रों के बीच का अंतर — उपभोग — k^* बढ़ने के साथ–साथ घटता है।

पूँजी स्तर का स्वर्ण नियम के अंतर्गत उत्पादन फलन और $(\delta + n)k^*$ रेखा दोनों की प्रवणता एक समान रहती है। चित्र का खंड b दर्शाता है कि उपभोग प्रति श्रमिक पूँजी प्रति श्रमिक पर निर्भर करता है। स्वर्ण–नियम स्तर तक पूँजी प्रति श्रमिक में कोई भी वृद्धि उपभोग प्रति श्रमिक को बढ़ा देती है। पूँजी प्रति श्रमिक में आगे कोई भी वृद्धि उपभोग प्रति श्रमिक को घटा देगी। इस परिणाम हेतु मूल कारण पूँजी की ह्रासमान सीमांत उत्पादकता को माना जाता है — यथा, पहली ही उपलब्ध शेयर पूँजी जितनी अधिक होगी, शेयर पूँजी और बढ़ाने से प्राप्य लाभ उतना ही कम होगा। पूँजी प्रति श्रमिक का स्वर्ण–नियम स्तर अनुपात k^*_{Gold} निम्नवत् दर्शाया जाता है—

$$f'(k^*) = \delta + n \quad \text{... (2.22)}$$

$$f'(k^*) - \delta = n \quad \text{... (2.23)}$$

समीकरण (2.23) का अर्थ है कि स्वर्ण–नियम स्तर पर पूँजी की सीमांत उत्पादकता, अवमूल्यन घटाने के बाद, जनसंख्या वृद्धि दर के बराबर होती है।

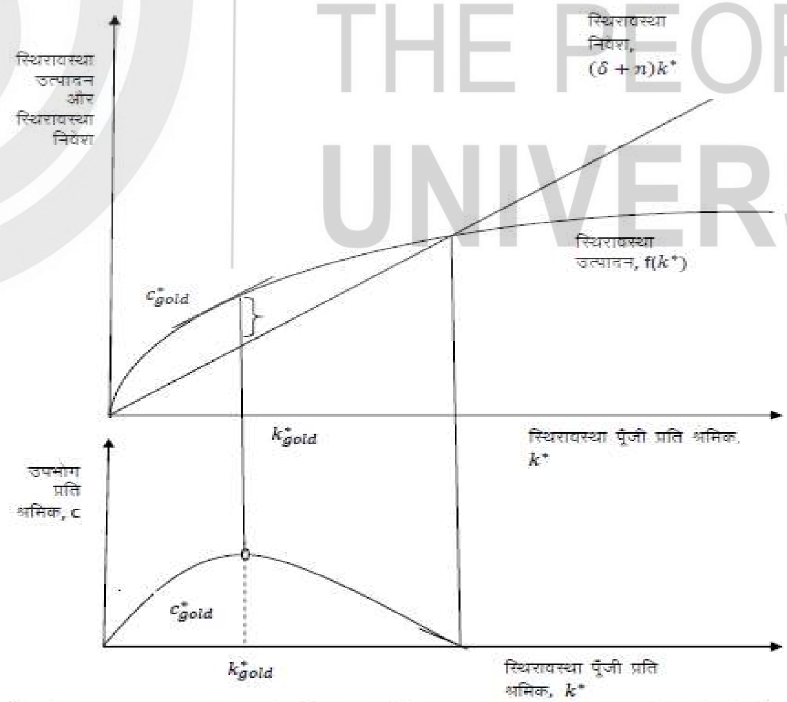

स्थिर अवस्था उत्पादन $f(k)^*$ और स्थिरावस्था निवेश $(\delta + n)k^*$ के बीच अंतर को कहते हैं। स्थिरावस्था उपभोग स्वर्ण–नियम स्थिर अवस्था में अधिकतम होता है। स्वर्ण–नियम शेयर पूँजी को k^*_{gold} से और स्वर्ण–नियम उपभोग को c^*_{gold}- से इंगित किया जाता है।

चित्र 2.5: स्थिरावस्था उपभोग

बोध प्रश्न 2

1) सोलो मॉडल की गतिशीलता से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

2) स्पष्ट करें कि किस प्रकार कोई अर्थव्यवस्था हमेशा स्थिर अवस्था में पहुँच कर ही दम लेती है।

....

....

....

....

....

3) पूँजी के स्वर्ण–नियम स्तर पहुँचने हेतु वांछित दशा पर प्रकाश डालें।

....

....

....

....

....

2.6 दीर्घावधि जीवन स्तर के निर्धारक तत्व

किसी अर्थव्यवस्था में औसत व्यक्ति कितना संपन्न है, यह कैसे तय किया जाता है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए हम सोलो मॉडल प्रयोग कर सकते हैं। यहाँ हम ऐसे तीन कारकों पर चर्चा करेंगे जो किसी व्यक्ति के दीर्घावधि जीवन स्तर को प्रभावित करते हैं – बचत दर, जनसंख्या वृद्धि और उत्पादकता वृद्धि।

2.6.1 बचत अनुपात में वृद्धि का प्रभाव

सोलो मॉडल के अनुसार, किसी ऊँची बचत दर का अर्थ होता है – दीर्घावधि में उच्चतर जीवन स्तर, जैसा कि चित्र 2.6 में दर्शाया गया है। मान लीजिए कि आरंभिक बचत दर s_1 है, जिससे बचत प्रति श्रमिक $s_1 f(k)$ आकलित होती है। जब बचत s_1 हो तो बचत वक्र को "आरंभिक बचत प्रति श्रमिक" कहा जाता है। आरंभिक स्थिरावस्था पूँजी–श्रम अनुपात, k_1^* वह पूँजी–श्रम अनुपात होता है जहाँ पर आरंभिक बचत वक्र और हानिरहित निवेश रेखा प्रतिच्छेद करते हैं (बिंदु A)।

अब मान लेते हैं कि सरकार ऐसी नीतियाँ लाती है जो बचत के लिए प्रोत्साहनों को मजबूती प्रदान करती हैं, जिससे देश की बचत दर s_1 से बढ़कर s_2 पर आ जाती है। यह बढ़ी बचत दर पूँजी–श्रम अनुपात के प्रत्येक स्तर पर बचत में वृद्धि करती है। आरेखीय रूप से, बचत वक्र $s_1 f(k)$ से ऊपर की खिसककर $s_2 f(k)$ पर आ जाता है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

यह नया स्थिरावस्था पूँजी–श्रम अनुपात, k_2^* , नये बचत वक्र और हानिरहित निवेश रेखा के प्रतिच्छेदन से संबंध रखता है (बिंदु B)।

चूँकि चर k_2^* चर k_1^* से बड़ा होता है, बचत दर की उच्चतर दर ने स्थिरावस्था पूँजी–श्रम अनुपात को बढ़ा दिया है। धीरे–धीरे यह अर्थव्यवस्था उच्चतर स्थिरावस्था पूँजी–श्रम अनुपात की ओर खिसकेगी, जैसा कि क्षैतिज अक्ष पर तीर–चिह्न इंगित करते हैं। इस नयी स्थिरावस्था में उत्पादन प्रति श्रमिक, y, और उपभोग प्रति श्रमिक, c, उनकी मूल स्थिरावस्था से कहीं अधिक होगा। सोलो मॉडल में उच्चतर बचत दर तीव्रतर संवृद्धि की ओर ले जाती है, लेकिन सिर्फ अस्थायी रूप से। बचत दर में कोई वृद्धि संवृद्धि तभी बढ़ाती है जब वह अर्थव्यवस्था नयी स्थिरावस्था में पहुँच जाती है। यदि यह अर्थव्यवस्था कोई उच्च बचत दर कायम रखती है तो वह वृहद शेयर पूँजी के साथ उत्पादन के किसी उच्च स्तर पर तो हो सकती है परंतु सदा के लिए कोई उच्च वृद्धि दर कायम नहीं रख सकती। किसी भी उच्चतर बचत दर को स्तर का प्रभाव रखने वाला माना जाता है क्योंकि स्थिरावस्था में बचत से केवल उत्पादन का स्तर प्रति व्यक्ति – न कि उसकी वृद्धि दर – प्रभावित होती है।

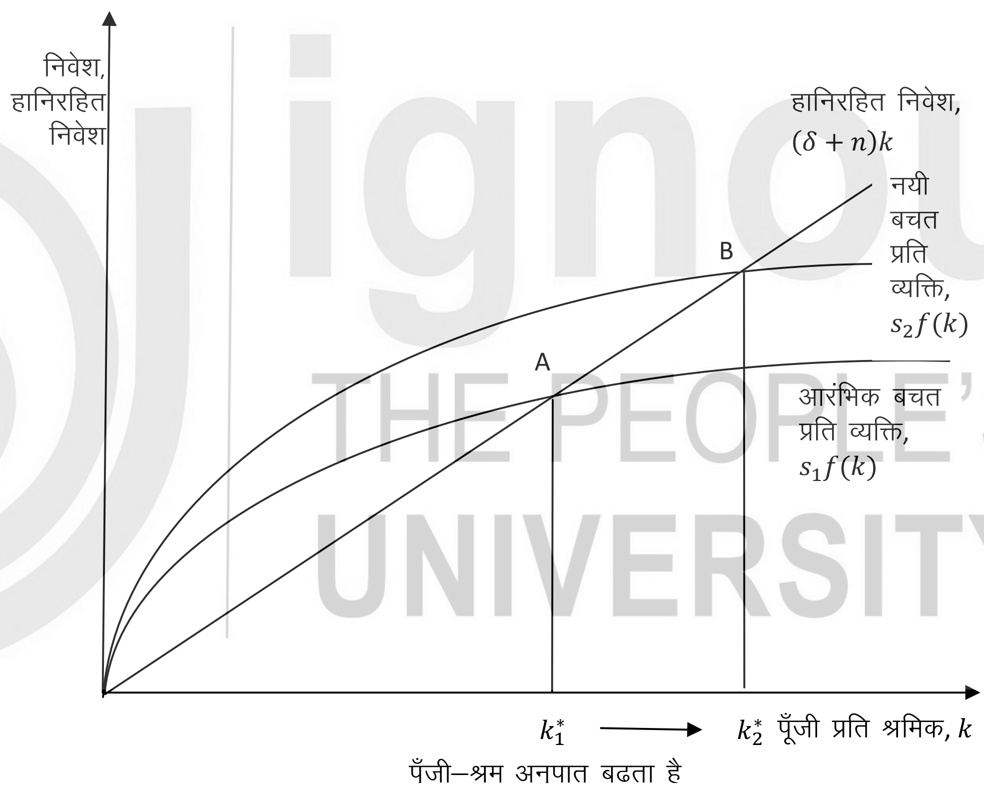

बचत दर, s, में कोई भी वृद्धि बचत फलन को ऊपर की ओर खिसका देती है। आरंभिक स्थिर अवस्था, k^*, में निवेश अब हानिरहित निवेश से अधिक हो जाता है। शेयर पूँजी तब तक बढ़ती है जब तक वह अधिक पूँजी और उत्पादन वाली एक नयी स्थिर अवस्था, k_2^*, पर नहीं पहुँच जाती।

चित्र 2.6: बचतदर में वृद्धि

2.6.2 जनसंख्या वृद्धि दर का प्रभाव

जनसंख्या वृद्धि और उत्पादन, उपभोग एवं पूँजी प्रति श्रमिक से परिमित किसी देश के विकास स्तर के बीच क्या संबंध होता है? इस प्रश्न का सोलो मॉडल द्वारा दिया गया उत्तर चित्र 2.7 में दर्शाया गया है।

कोई भी आरंभिक साम्यावस्था पूँजी–श्रम अनुपात, k_1^*, बिंदु A पर हानिरहित निवेश रेखा और बचत वक्र के प्रतिच्छेदन से जुड़ा होता है। अब मान लीजिए कि जनसंख्या वृद्धि दर जो कि श्रमबल वृद्धि दर के बराबर ही है, एक आरंभिक स्तर n_1 से बढ़कर n_2 पर पहुँच जाती है। ऐसे में जीवन स्तर कैसा हो जाएगा?

जनसंख्या वृद्धि दर में किसी भी बढ़ोतरी का अर्थ होगा कि श्रमिक श्रमबल में पहले से अधिक तेजी से शामिल होते जा रहे हैं। ये नये श्रमिक पूँजी से लैस होंगे। तदनुसार, वही स्थिरावस्था पूँजी–श्रम अनुपात कायम रखने के लिए निवेश राशि प्रति वर्तमान सदस्य श्रमिक बढ़नी ही चाहिए। बीजगणितीय रूप से, चर n में वृद्धि निवेश प्रति श्रमिक $(\delta + n_1)k$ से बढ़ाकर $(\delta + n_2)k$ पर ले आती है। जनसंख्या वृद्धि में यह बढ़ोतरी हानिरहित निवेश रेखा को ऊपर बाईं ओर संतुलित कर देती है (यथा, प्रवणतर होने के लिए) क्योंकि इसकी प्रवणता k_1^* से बढ़कर k_2^* पर आ जाती है।

उक्त हानिरहित निवेश रेखा के केंद्र बिंदु पश्चात यह नयी स्थिर अवस्था बिंदु B पर आ जाती है। अब नया स्थिरावस्था पूँजी–श्रम अनुपात k_2^* हो जाता है, जो कि मूल पूँजी–श्रम अनुपात, k_2^*, से कहीं नीचे होता है। चूँकि नया स्थिरावस्था पूँजी–श्रम अनुपात नीचे होता है, नया स्थिरावस्था उत्पादन प्रति श्रमिक और उपभोग प्रति श्रमिक भी नीचे ही देखा जाएगा।

इस प्रकार, सोलो मॉडल का अर्थ हुआ कि बढ़ी जनसंख्या वृद्धि जीवन स्तर नीचे ले आएगी। अब मूल समस्या यह है कि जब श्रमबल तेजी से बढ़ रहा है तो क्यों न वर्तमान उत्पादन का बड़ा हिस्सा नये श्रमिकों के प्रयोगार्थ पूँजी प्रदान करने के लिए ही दे दिया जाए? इस परिणाम के अनुसार, जनसंख्या वृद्धि नियंत्रण हेतु नीतियाँ वस्तुतः जीवन स्तर सुधार देंगी। ध्यान देने की बात है कि जनसंख्या वृद्धि दर में कोई भी परिवर्तन, जैसे बचत दर में परिवर्तन, उत्पादन प्रति व्यक्ति पर कोई स्तर प्रभाव तो डालता है किंतु उत्पादन प्रति व्यक्ति की स्थिरावस्था वृद्धि दर को प्रभावित नहीं करता।

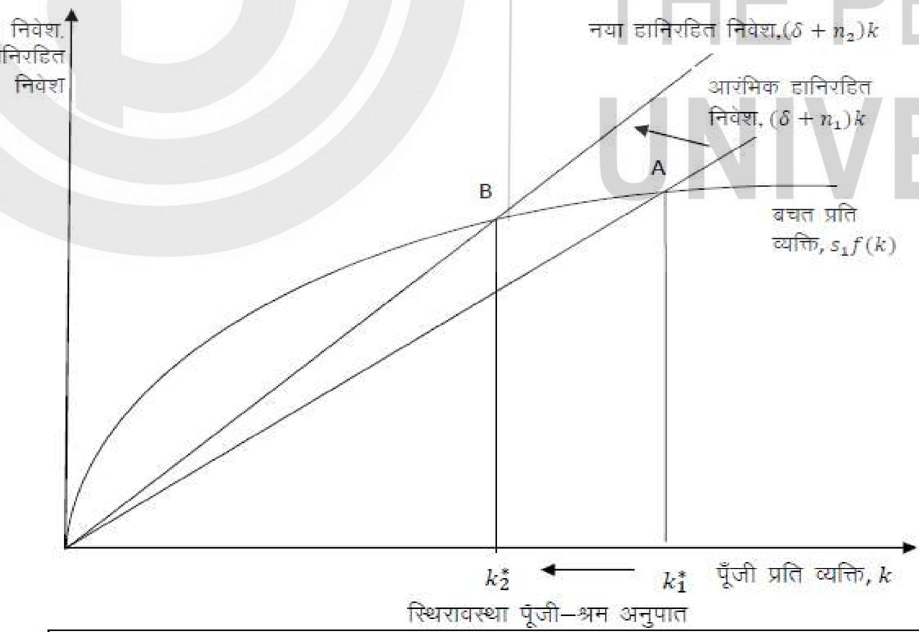

जनसंख्या वृद्धि, n_1 से लेकर n_2 तक, जनसंख्या वृद्धि व अवमूल्यन को निरूपित करती हानिरहित निवेश रेखा को ऊपर की ओर खिसका देती है। अब नयी स्थिर अवस्था, k_2^*, आरंभिक स्थिर अवस्था, k_1^*, की अपेक्षा निम्नतर पूँजी प्रति श्रमिक स्तर दर्शाती है।

चित्र 2.7: जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

2.7 सोलो मॉडल में प्रौद्योगिकीय प्रगति

उक्त मॉडल में अब तक हमने देखा कि जब अर्थव्यवस्था अपनी स्थिर अवस्था में पहुँच जाती है तो उत्पादन प्रति श्रमिक में आगे कोई वृद्धि नहीं होती। दीर्घस्थायी संवृद्धि की व्याख्या के लिए हमें इस मॉडल में प्रौद्योगिकीय प्रगति का समावेश करना होगा। कालांतर में समाज की उत्पादन क्षमताओं का विस्तार करने वाली बहिर्जात प्रौद्योगिकीय प्रगति को शामिल करने के लिए इस मॉडल को किंचित् परिवर्तित किया जा सकता है। फिर हम उत्पादन फलन को निम्नवत् लिख सकते हैं –

$$\boldsymbol{Y = F(K, L \times E)} \qquad \text{... (2.24)}$$

जहाँ E एक नया (और कुछ–कुछ काल्पनिक) चर है, जिसे श्रमिक की दक्षता कहा जाता है। यहाँ पद $(\boldsymbol{L \times E})$ की व्याख्या श्रमिकों की प्रभावी संख्या के अंकन स्वरूप की जा सकती है।

इसमें वास्तविक श्रमिक संख्या, L, और प्रत्येक श्रमिक की दक्षता, E, को ध्यान में रखा जाता है। इस नये उत्पादन फलन के अनुसार, कुल उत्पादन, Y , पूँजी, K , और दक्ष श्रमिकों, $L \times E$, के निवेश पर निर्भर करता है। हम यह मानकर चलते हैं कि प्रौद्योगिकीय प्रगति बहिर्जात रूप से ज्ञात किसी अचर दर, g, पर श्रमिक की दक्षता, E, को बढ़वा देती है।

$$\frac{1}{E}\frac{dE}{dt} = g \qquad \text{... (2.25)}$$

इस प्रकार की प्रौद्योगिकीय प्रगति को श्रम परिवर्धक माना जाता है और g को **श्रम–परिवर्धक प्रौद्योगिकीय प्रगति दर** कहा जाता है। चूँकि श्रमबल, L, चर n की दर बढ़ रहा है और श्रम की प्रति इकाई दक्षता, E , चर g की दर से बढ़ रही है, श्रमिकों की प्रभावी संख्या, $L \times E$, पद $n+g$ की दर से बढ़ेगी।

अब हम अर्थव्यवस्था का विश्लेषण परिमाण प्रति प्रभावी श्रमिक करेंगे। इस बार हम मान लेते हैं कि $= \frac{K}{(L \times E)}$ का अर्थ है पूँजी प्रति प्रभावी श्रमिक, और $y = \frac{Y}{(L \times E)}$ का अर्थ है उत्पादन प्रति प्रभावी श्रमिक। इन परिभाषाओं को लेकर हम पुनः लिख सकते हैं कि $y = f(k)$ और $\mathrm{k} = \frac{\mathrm{K}}{\mathrm{L \times E}}$.

निम्नलिखित को ज्ञात करने के लिए हम शृंखला नियम प्रयोग कर सकते हैं –

$$\dot{k(t)} = \frac{\dot{K(t)}}{E(t)L(t)} - \frac{K(t)}{E(t)L(t)^2} * \dot{L(t)} - \frac{K(t)}{E(t)^2 L(t)} * \dot{E(t)} \qquad \text{... (2.26)}$$

$$\dot{k(t)} = \frac{\dot{K(t)}}{E(t)L(t)} - \frac{K(t)}{E(t)L(t)} * \frac{\dot{L(t)}}{L(t)} - \frac{K(t)}{E(t)L(t)} * \frac{\dot{E(t)}}{E(t)} \qquad \text{... (2.27)}$$

आइए, समीकरण (2.8) से $\dot{K(t)}$ का, समीकरण (2.6) से $\frac{\dot{L(t)}}{L(t)} = n$ का, और समीकरण (2.25) से $\frac{\dot{E(t)}}{E(t)} = g$ का समीकरण (2.27) में प्रतिस्थापन करते हैं। इससे हमें प्राप्त होता है –

$$\dot{k(t)} = \frac{I - \delta K(t)}{E(t)L(t)} - \frac{K(t)}{E(t)L(t)} * n - \frac{K(t)}{E(t)L(t)} * g \qquad \text{... (2.28)}$$

$\frac{I}{E \times L} = i \text{ and } \frac{K}{E \times L} = k$ का प्रतिस्थापन समीकरण (2.28) में करने पर,

$$\dot{k(t)} = i - \delta k - nk - gk \qquad \text{... (2.29)}$$

$i = sf(k)$ का प्रतिस्थापन समीकरण (2.29) में करने पर, हमें प्राप्त होता है –

$$\dot{k(t)} = sf(k) - (\delta + n + g)k \qquad \text{... (2.30)}$$

समीकरण (2.30) प्रभावी श्रमिक की प्रति इकाई पूँजी, k, का क्रमिक विकास दर्शाता है। शेयर पूँजी में परिवर्तन, $\dot{k(t)}$ निवेश $sf(k)$ घटा हानिरहित निवेश, $(\delta + n + g)k$ के बराबर होता है। इस हानिरहित निवेश में k को अचर बनाए रखने के लिए तीन शर्तों का पालन आवश्यक होगा –

- अवमानित होती पूँजी को वापस लाने के लिए δk आवश्यक होगा;
- नये श्रमिकों को पूँजी प्रदान करने के लिए nk आवश्यक होगा; और
- प्रौद्योगिकीय प्रगति से सृजित नये ''प्रभावी श्रमिकों'' को पूँजी प्रदान करने के लिए gk आवश्यक होगा।

समीकरण (2.30) से, k^* का स्थिरावस्था मान ज्ञात करने के लिए हम पद $\dot{k(t)} = 0$ लिखते हैं। यहाँ हम समय–पादाक्षर, t, हटा देते हैं क्योंकि स्थिर अवस्था में उत्पादन प्रति प्रभावी श्रमिक और पूँजी प्रति प्रभावी श्रमिक अचर होते हैं।

तदनुसार, हमें प्राप्त होता है –

$$0 = sf(k^*) - (\delta + n + g)k^* \qquad \ldots (2.31)$$

तब y^* को निम्नलिखित से ज्ञात किया जाता है –

$$y^* = f(k^*)$$

स्थिर अवस्था में प्रभावी श्रमिक की प्रति इकाई पूँजी, k^*, को निम्नवत् लिखा जाता है –

$$sf(k^*) = (\delta + n + g)k^* \qquad \ldots (2.32)$$

पहले की ही भाँति, स्थिर अवस्था में निवेश हानिरहित निवेश के बराबर होता है। जैसा कि चित्र 2.8 में दर्शाया गया है, यहाँ k^* से इंगित k का एक स्तर होता है, जहाँ पूँजी प्रति प्रभावी श्रमिक और उत्पादन प्रति प्रभावी श्रमिक अचर होते हैं। फिर पहले की ही भाँति, यह स्थिर अवस्था अर्थव्यवस्था में दीर्घावधि साम्यावस्था निरूपित करती है।

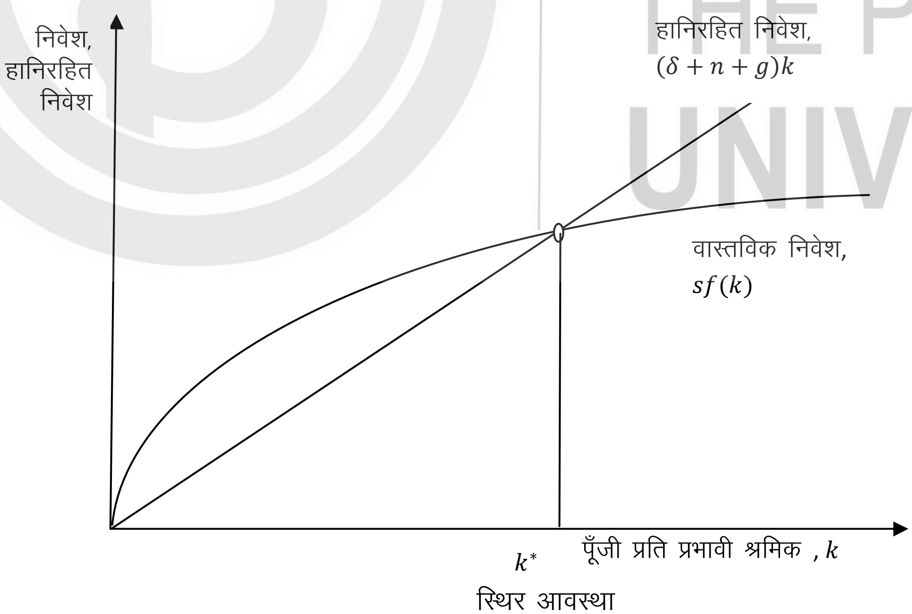

उक्त हानिरहित निवेश अब $(\delta + n + g)k$ के बराबर होता है। स्थिर अवस्था में निवेश $sf(k)$ अवमूल्यन, जनसंख्या वृद्धि एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति पर उपारोप्य k में कटौती को सही–सही प्रति संतुलित करता है।

चित्र 2.8: प्रौद्योगिकीय प्रगति और सोलो मॉडल

2.7.1 संतुलित विकास पथ

अपनी पूर्वधारणा के अनुसार, हमें ज्ञात है –

$$y = \frac{Y}{E \times L}, k = \frac{K}{E \times L}$$

इसके अलावा, स्थिर अवस्था में, $\dot{y} = 0$ और $\dot{k} = 0$

समय के संदर्भ में k को अवकलित करने पर हमें प्राप्त होता है –

$$\frac{dk}{dt} = \frac{1}{E \times L}\frac{dK}{dt} - \frac{K}{E \times L^2}\frac{dL}{dt} - \frac{K}{E^2 \times L}\frac{dL}{dt} \quad ... (2.33)$$

$$\frac{dk}{dt} = \frac{K}{E \times L}\left(\frac{1}{K}\frac{dK}{dt} - \frac{1}{L}\frac{dL}{dt} - \frac{1}{E}\frac{dE}{dt}\right) \quad ... (2.34)$$

$$\frac{1}{k}\frac{dk}{dt} = \frac{1}{K}\frac{dK}{dt} - \frac{1}{L}\frac{dL}{dt} - \frac{1}{E}\frac{dE}{dt} \quad ... (2.35)$$

स्थिर अवस्था में, $\frac{dk}{dt} = 0,$ और $\frac{1}{L}\frac{dL}{dt} = n$, $\frac{1}{E}\frac{dE}{dt} = g$.

उपरोक्त को समीकरण (2.35) में प्रतिस्थापित करने पर, हमें प्राप्त होता है –

$$\frac{1}{K}\frac{dK}{dt} = n + g \quad ... (2.36)$$

इसी प्रकार, समय के संदर्भ में y को अवकलित कर हमें प्राप्त होता है –

$$\frac{dy}{dt} = \frac{1}{E \times L}\frac{dY}{dt} - \frac{Y}{E \times L^2}\frac{dL}{dt} - \frac{Y}{E^2 \times L}\frac{dL}{dt} \quad ... (2.37)$$

$$\frac{dy}{dt} = \frac{Y}{L}\left(\frac{1}{Y}\frac{dY}{dt} - \frac{1}{L}\frac{dL}{dt} - \frac{1}{E}\frac{dE}{dt}\right) \quad ... (2.38)$$

$$\frac{1}{y}\frac{dy}{dt} = \frac{1}{Y}\frac{dY}{dt} - \frac{1}{L}\frac{dL}{dt} - \frac{1}{E}\frac{dE}{dt} \quad ...(2.39)$$

स्थिर अवस्था में, $\frac{dy}{dt} = 0,$, और $\frac{1}{L}\frac{dL}{dt} = n$, $\frac{1}{E}\frac{dE}{dt} = g$.

उपरोक्त को समीकरण (2.39) में प्रतिस्थापित करने पर, हमें प्राप्त होता है–

$$\frac{1}{Y}\frac{dY}{dt} = n + g \quad ... (2.40)$$

अब समीकरण (2.36) और (2.40) से हमें ज्ञात होता है कि स्थिर अवस्था में कुल शेयर पूँजी, K, और कुल उत्पादन, Y, की वृद्धि दरें प्रौद्योगिकीय वृद्धि दर और जनसंख्या वृद्धि दर के कुल योग में बराबर–बराबर होती हैं।

$$\frac{1}{K}\frac{dK}{dt} = \frac{1}{Y}\frac{dY}{dt} = n + g$$

विकल्पतः,

$$\frac{1}{K}\frac{dK}{dt} - n = g, \text{और} \quad \frac{1}{Y}\frac{dY}{dt} - n = g \quad ... (2.41)$$

शेयर पूँजी प्रति श्रमिक, $\frac{K}{L}$, और उत्पादन प्रति श्रमिक, $\frac{Y}{L}$, की वृद्धि दरों में से प्रत्येक प्रौद्योगिकीय वृद्धि दर के बराबर होती है। दीर्घावधि में अर्थव्यवस्था संतुलित विकास पथ की ओर चली जाती है। इस संतुलित विकास पथ पर उत्पादन प्रति श्रमिक की वृद्धि दर पूरी तरह से प्रौद्योगिकीय प्रगति की वृद्धि दर से ही निर्धारित की जाती है।

यह मॉडल प्रौद्योगिकीय प्रगति का विस्तार होते ही जीवन स्तर में उन सतत वृद्धियों की व्याख्या कर सकता है जो हमारे समक्ष होती हैं, यथा, हमने देखा कि प्रौद्योगिकीय प्रगति उत्पादन प्रति श्रमिक में सतत वृद्धि की ओर अग्रसर कर सकती है।

इसके विपरीत, बचत की कोई उच्च दर किसी उच्च वृद्धि दर की ओर तभी प्रवृत्त करती है जब स्थिर अवस्था बहाल हो गई हो। अर्थव्यवस्था के एक बार स्थिर अवस्था में पहुँच जाने के बाद उत्पादन प्रति श्रमिक की वृद्धि दर केवल प्रौद्योगिकीय प्रगति पर ही निर्भर करती है। सोलो मॉडल के अनुसार, केवल प्रौद्योगिकीय प्रगति ही सतत संवृद्धि और निरंतर वर्धमान जीवन स्तर की व्याख्या कर सकती है।

2.7.2 पूँजी का स्वर्ण–सिद्धांत स्तर

पूँजी के स्वर्ण–सिद्धांत स्तर को अब उस साम्य अवस्था के रूप में परिभाषित किया जाता है जो उपभोग प्रति प्रभावी श्रमिक अधिकतम कर देती है। पूर्व प्रयुक्त उपपत्तियों के ही अनुसार अब हम दर्शा सकते हैं कि प्रति प्रभावी श्रमिक स्थिरावस्था उपभोग निम्नवत् होता है –

$$c = f(k^*) - (\delta + n + g)k^* \quad \dots (2.42)$$

स्थिरावस्था उपभोग अधिकतम होता है, यदि

$$f'(k^*) = \delta + n + g \quad \dots (2.43)$$

$$f'(k^*) - \delta = n + g \quad \dots (2.44)$$

समीकरण (2.44) का अर्थ है कि पूँजी के स्वर्ण–सिद्धांत स्तर पर पूँजी का निवल सीमांत उत्पाद $(MPK - \delta)$ कुल उत्पादन की वृद्धि दर $(n+g)$ के बराबर होता है।

तालिका 2.1: दीर्घावधि जीवन स्तर के मूल निर्धारक तत्व

कारक (जो प्रभावित होता है)	दीर्घावधि उत्पादन, पूँजी एवं उपभोग प्रति श्रमिक पर पड़ने वाला प्रभाव	कारण
बचत दर, s	वृद्धि	अधिक बचत से अधिक निवेश और वृहत्तर शेयर पूँजी सृजन होने लगता है।
जनसंख्या वृद्धि दर, n	गिरावट	उच्चतर जनसंख्या वृद्धि होने पर नये श्रमिकों को पूँजी से लैस करने के लिए अधिक उत्पादन प्रयोग करना पड़ता है, जिससे उपभोग के लिए अथवा पूँजी प्रति श्रमिक बढ़ाने के लिए कम ही उत्पादन बचता है।
प्रौद्योगिकीय प्रगति दर, g	वृद्धि	उच्चतर उत्पादकता सीधे–सीधे उत्पादन बढ़ा देती है। इससे बचत और शेयर पूँजी भी बढ़ते हैं।

बोध प्रश्न 3

1) बचत दर में कोई वृद्धि केवल उत्पादन प्रति श्रमिक पर ही स्तर प्रभाव क्यों दर्शाती है?

....

....

....

....

....

2) स्पष्ट करें कि जनसंख्या वृद्धि में n_1 से लेकर n_2 तक कोई बढ़ोतरी पूँजी और उत्पादन प्रति श्रमिक के दीर्घावधि स्तर को कैसे प्रभावित करती है।

....

....

....

....

....

3) स्पष्ट करें कि प्रौद्योगिकीय प्रगति की दर में कोई वृद्धि जीवन स्तर में किसी सतत वृद्धि के रूप में कैसे सामने आती है।

....

....

....

....

....

2.8 सार–संक्षेप

आर्थिक विकास का सोलो मॉडल आर्थिक विकास सिद्धांत में एक अद्वितीय और उत्कृष्ट योगदान माना जाता है। यह एक बेहद सरल और प्रारंभिक समंजन क्रियातंत्र के माध्यम से स्थिरावस्था संवृद्धि की स्थिरता सिद्ध करता है। इस इकाई में हमने जाना कि सोलो विकास मॉडल में किसी देश के जीवन स्तर की अवस्था एवं वृद्धि तय करने में बचत, जनसंख्या वृद्धि और प्रौद्योगिकीय प्रगति परस्पर प्रभाव डालते हैं।

सोलो विकास मॉडल की स्थिर अवस्था में उत्पादन प्रति व्यक्ति की वृद्धि दर पूँजी प्रति व्यक्ति की वृद्धि दर के बराबर होती है। ये दोनों ही वृद्धि दरें पूरी तरह प्रौद्योगिकीय प्रगति की बहिर्जात दर, g, से तय की जाती हैं।

स्वर्ण सिद्धांत (उपभोग अधिकतमीकरण) स्थिर अवस्था पूँजी के निवल सीमांत उत्पाद $(MPK - \delta)$ और कुल आय की स्थिरावस्था वृद्धि दर $(n+g)$. के बीच समानता से ही अभिलक्षित होती है। सोलो मॉडल में दीर्घावधि संवृद्धि के दो निर्धारक तत्व होते हैं – बचत दर में वृद्धि और जनसंख्या वृद्धि दर में गिरावट।

किसी भी अर्थव्यवस्था की बचत दर ही उसकी शेयर पूँजी, और तदनुसार, उसका उत्पादन स्तर तय करती है। बचत दर जितनी ऊँची होगी उतनी ही अधिक शेयर पूँजी होगी और उतना ही ऊँचा उत्पादन स्तर होगा।

किसी अर्थव्यवस्था की जनसंख्या वृद्धि दर उसके जीवन स्तर का एक अन्य निर्धारक तत्व होता है। सोलो मॉडल के अनुसार, जनसंख्या वृद्धि दर जितनी ऊँची होगी उतनी ही नीचे पूँजी प्रति श्रमिक और उत्पादन प्रति श्रमिक के स्थिरावस्था स्तर होंगे।

बहरहाल, बचत दर और जनसंख्या वृद्धि दर दोनों में परिवर्तन उत्पादन प्रति व्यक्ति पर स्तर प्रभाव तो डालते हैं परंतु उत्पादन प्रति व्यक्ति की स्थिरावस्था वृद्धि दर को प्रभावित नहीं करते हैं। एक मात्र प्रौद्योगिकीय प्रगति ही है जो उत्पादन प्रति श्रमिक में सतत वृद्धि की ओर ले जा सकती है।

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1. यह उत्पादन फलन एक धनात्मक ढाल दर्शाता है परंतु पूँजी की राशि बढ़ते ही यह समतल होता जाता है, जो इंगित करता है कि वह अपना ह्रासमान लाभ दिखा रहा है।

2. उत्पादन वृद्धि दर और आगत वृद्धि व उत्पादकता वृद्धि की दरों के बीच संबंध ही वृद्धि लेखा समीकरण कहलाता है।

बोध प्रश्न 2

1. $\dot{k(t)} = sf(k) - (\delta + n)k$

उपर्युक्त समीकरण ही सोलो मॉडल का मुख्य समीकरण है। इसके अनुसार, शेयर पूँजी प्रति इकाई श्रमिक की परिवर्तन दर ही इन पदों के बीच अंतर दर्शाती है। प्रथम पद, $sf(k)$, वास्तविक निवेश प्रति इकाई श्रम है और दूसरा पद, $(\delta + n)k$, हानिरहित निवेश है।

2. चित्र 2.3 को देखें। माना कि अर्थव्यवस्था पूँजी के स्थिरावस्था स्तर, जैसे स्तर k_1, से भी कम के साथ शुरुआत करती है। इस स्थिति में निवेश का स्तर हानिरहित निवेश से ऊपर चला जाता है (अवमूल्यन और जनसंख्या वृद्धि)। कालांतर में शेयर पूँजी बढ़ेगी और $f(k)$ के साथ तब तक बढ़ती रहेगी जब तक कि वह स्थिर अवस्था k^* पर नहीं पहुँच जाती।

3. पूँजी प्रति श्रमिक अनुपात का स्वर्ण–सिद्धांत स्तर k^*_{Gold} निम्नलिखित समीकरण से दर्शाया जाता है –

$$f^{'}(k^*) = \delta + n$$

बोध प्रश्न 3

1. कोई भी उच्चतर बचत दर स्तर प्रभाव रखने वाली कही जाती है क्योंकि स्थिर अवस्था में बचत दर से केवल उत्पादन प्रति श्रमिक का स्तर – न कि उसकी वृद्धि दर – प्रभावित होता है।

2. सोलो मॉडल के अनुसार, जनसंख्या वृद्धि की दर जितनी ऊँची होगी, पूँजी प्रति श्रमिक और उत्पादन प्रति श्रमिक के स्थिरावस्था स्तर उतने ही नीचे होंगे। चित्र 2.7 को देखें।

3. दीर्घावधि में अर्थव्यवस्था संतुलित विकास पथ की ओर चली जाती है। इस संतुलित विकास पथ पर उत्पादन प्रति श्रमिक की वृद्धि दर पूरी तरह प्रौद्योगिकीय प्रगति की वृद्धि दर से तय की जाती है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3 अंतर्जात विकास मॉडल*

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 अंतर्जात विकास मॉडलों का विहंगावलोकन

3.3 अंतर्जात विकास का AK मॉडल

3.4 अंतर्जात विकास का रोमर मॉडल

3.5 रोमर मॉडल में स्थिरावस्था विकास

3.6 रोमर मॉडल में स्थिरावस्था विकास दर अवकलित करना

3.7 उत्पादन प्रौद्योगिकी अनुपात का स्थिरावस्था स्तर

3.8 अनुसंधान एवं विकास के अंश में स्थायी वृद्धि

3.9 सार–संक्षेप

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि –

- स्पष्ट कर सकें कि वर्धमान अनुमापी प्रतिफल किस प्रकार उत्पादन विस्तार और आर्थिक संवृद्धि की ओर अग्रसर करता है;
- दीर्घावधि में उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की आर्थिक संवृद्धि के पीछे कारण पहचान सकें;
- अंतर्जात विकास मॉडल संबंधी अवधारणाओं का खाका खींच सकें;
- अंतर्जात विकास के AK मॉडल संबंधी महत्वपूर्ण अभिलक्षण स्पष्ट कर सकें;
- निर्धारित कर सकें कि किस प्रकार बचत और निवेश AK मॉडल में निरंतर विकास की ओर ले जा सकता है;
- रोमर मॉडल में कुल उत्पादन फलन को समझ सकें;
- उत्पादन, पूँजी और प्रौद्योगिकी की स्थिरावस्था वृद्धि दर अवकलित कर सकें;
- संतुलित विकास पथ पर उत्पादन–प्रौद्योगिकी और पूँजी–प्रौद्योगिकी अनुपात जैसे प्रमुख चरों के स्थिरावस्था स्तर आकलित कर सकें; तथा
- कुल आदानों में अनुसंधान एवं विकास अंश में किसी स्थायी वृद्धि के प्रभाव को समझ सकें।

3.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास का सोलो मॉडल (देखें इकाई 2) आर्थिक संवृद्धि संबंधी हमारी समझ बढ़ाने में पूरी तरह उपयोगी साबित हुआ है। सोलो मॉडल के एक निहितार्थ के अनुसार, दीर्घावधि में दुनिया भर के देशों को संवृद्धि में सम्मिलन अर्थात् एक ही ओर झुकाव दर्शाना चाहिए। जब पूँजी प्रति श्रमिक कम होती है तो पूँजी पर लाभ बहुत अच्छा होता है,

* डॉ० आर्ची भाटिया, सह–आचार्य, हिमाचल प्रदेश केन्द्रिय विश्वविद्यालय, धर्मशाला।

जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था की विकास दर ऊँची चली जाती है। दूसरी ओर, जब पूँजी प्रति श्रमिक बढ़ जाती है तो पूँजी पर लाभ घट जाता है और विकास दर नीचे चली जाती है। तदनुसार, गरीब देशों की विकास दर (कम पूँजी प्रति श्रमिक) अपेक्षाकृत ऊँची होनी चाहिए जबकि अमीर देशों की विकास दर (ऊँची पूँजी प्रति श्रमिक) अपेक्षाकृत नीची होनी चाहिए। इस प्रक्रिया में देशों के बीच विकास दरों में सम्मिलन देखा जाएगा। अनुभवतः, बहरहाल, देखा यह जाता है कि कालांतर में अमीर देश और अमीर जबकि गरीब देश और गरीब होते जाते हैं। भारत में भी हम देखते हैं कि कुछ समय के बाद पिछड़े राज्यों ने अपेक्षाकृत तेजी से तरक्की की है, जो कि आर्थिक विकास में सम्मिलन का संकेत है। इस प्रकार का विकास परिदृश्य सोलो मॉडल के निष्कर्ष के विपरीत कहा जाएगा।

सोलो मॉडल की एक और कमी, जो कि सैद्धांतिक है, प्रौद्योगिकीय प्रगति के विषय में उसकी अवधारणा है। इस मॉडल के अनुसार, उत्पादकता वृद्धि अथवा प्रौद्योगिकीय प्रगति ही उत्पादन प्रति व्यक्ति की दीर्घावधि संवृद्धि का स्रोत है। तदनुसार, दीर्घावधि आर्थिक विकास की किसी भी व्याख्या में उत्पादकता वृद्धि की व्याख्या शामिल होनी चाहिए। यह मॉडल, बहरहाल, यह स्पष्ट करने की बजाय कि उत्पादकता वृद्धि कैसे निर्धारित होती है, बस उत्पादकता वृद्धि की ज्ञात दर (बहिर्जात अथवा मॉडल से इतर निर्धारित) को ही ले लेता है। दूसरे शब्दों में, सोलो मॉडल में उत्पादन प्रति व्यक्ति की दीर्घावधि वृद्धि दर का निर्धारक तत्व प्रौद्योगिकीय प्रगति को माना जाता है, जो कि मॉडल में बहिर्जात होती है।

सोलो मॉडल में एक अर्थ यह भी निहित था कि बचत दर में कोई भी वृद्धि विकास दर पर अपना अल्पावधि प्रभाव मात्र रखती है और विकास की दीर्घावधि दर पर अपना प्रभाव उदासीन ही रहने देती है। अतः प्रौद्योगिकीय परिवर्तन को बहिर्जात मानते हुए नवशास्त्रीय सिद्धांत उन आधारभूत शक्तियों पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर सका जो किसी राष्ट्र का दीर्घावधि विकास निर्धारित करती हैं। तदंतर अंतर्जात विकास सिद्धांत ही सोलो मॉडल की उक्त कमियों पर काबू पा सका।

इस इकाई में चर्चा के लिए हम उक्त सिद्धांत पर आधारित दो मॉडल लेंगे, यथा AK मॉडल और रोमर मॉडल। हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि क्यों अमेरिका जैसी विश्व की उन्नत अर्थव्यवस्थाएँ पिछली शताब्दी से लगभग 2 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से विकास कर पा रही हैं। ऐसी संवृद्धि को रेखांकित करने वाली प्रौद्योगिकीय प्रगति कहाँ से आती है? यह मानकर चलने की बजाय कि संवृद्धि प्रौद्योगिकी में अप्रत्याशित एवं बहिर्जात सुधारों के कारण आती है, अंतर्जात विकास सिद्धांत प्रौद्योगिकीय प्रगति में निहित शक्तियों को समझने पर ध्यान केन्द्रित करता है। अतः अंतर्जात विकास मॉडलों का मुख्य सरोकार विभिन्न देशों के बीच विकास दरों में अंतर और इन देशों में आर्थिक विकास के विभिन्न कारकों का योगदान स्पष्ट करने से है। ये मॉडल प्रौद्योगिकीय प्रगति की दर अथवा जनसंख्या वृद्धि की दर अथवा दोनों को अंतर्जात कारक मानकर चलते हुए आपको विकास के सर्वश्रेष्ठ स्रोतों की गहराई में ले जाएँगे।

3.2 अंतर्जात विकास मॉडलों का विहंगावलोकन

अंतर्जात विकास सिद्धांत सोलो मॉडल की कमियों को दूर करने के लिए ही सामने आया। इसने उत्पादकता वृद्धि, और इस कारण से, उत्पादन वृद्धि दर, को अंतर्जात रूप से अर्थात् मॉडल के भीतर ही रहकर स्पष्ट करने का प्रयास किया। अंतर्जात विकास मॉडल सोलो मॉडल की बहिर्जात प्रौद्योगिकीय प्रगति संबंधी अवधारणा को निरस्त करता है। आपको याद ही होगा कि नवशास्त्रीय विकास मॉडल आदानों पर घटते लाभ की कल्पना करते हैं जिससे उत्पादन का विस्तार और आर्थिक संवृद्धि एक सीमा से आगे नहीं हो पाते।

आर्थिक संवृद्धि के सामने आई इस बाधा को दूर करने के लिए अंतर्जात विकास मॉडल यह मानकर चलता है कि अनुमापी प्रतिफल बढ़ाना संभव होता है।

आर्थिक साहित्य में अंतर्जात विकास मॉडलों के इक्का–दुक्का उदाहरण ही मिलते हैं। अपने अध्ययन की शुरुआत हम ऐसे मॉडलों की सामान्य अवधारणाओं पर चर्चा के साथ करेंगे। तत्पश्चात ही उनकी बारीकियों को समझना आसान होगा। इस दृष्टि से AK मॉडल को सरलतम अंतर्जात मॉडल माना जाता है। उसके बाद हम आपका परिचय रोमर मॉडल में कुल उत्पादन फलन से कराएँगे।

संतुलित विकास हेतु दशाएँ और मुख्य चरों – यथा (i) उत्पादन–प्रौद्योगिकी अनुपात, एवं (ii) पूँजी–प्रौद्योगिकी अनुपात – के साम्यावस्था स्तर तत्पश्चात ही विकसित होते हैं। हम इस बात पर भी चर्चा करेंगे कि प्रौद्योगिकीय प्रगति में परिवर्तन स्थिर अवस्था में 'उत्पादन प्रति व्यक्ति' और 'पूँजी प्रति व्यक्ति' के स्तर किस प्रकार प्रभावित करते हैं।

इकाई का समापन हम दुनिया भर की अर्थव्यवस्थाओं के लिए अंतर्जात विकास मॉडलों के निहितार्थों पर चर्चा के साथ करेंगे।

अंतर्जात विकास मॉडलों की मुख्य अवधारणाएँ निम्नवत् हैं –

a) किसी भी बाजार में अनेक फर्में होती हैं।

b) ज्ञान या जानकारी अथवा प्रौद्योगिकीय उन्नति एक गैर–प्रतिद्वंद्वी वस्तु है।

c) एक साथ लिए जाने पर सभी कारक वर्धमान अनुमापी प्रतिफल दर्शाते हैं और किसी एक ही कारक (कारकों में से कम से कम एक) को लिए जाने पर नियत लाभ।

d) प्रौद्योगिकीय उन्नति लोगों की कारगुजारी से आती है। इसका अर्थ है कि प्रौद्योगिकीय उन्नति नये विचार सृजन पर आधारित होती है।

e) कई लोगों व फर्मों को को बाजार शक्ति हासिल होती है और वे अपने अन्वेषणों से लाभ कमाते हैं। यह अवधारणा इस तथ्य से सामने आई है कि उत्पादन में वर्धमान अनुमापी प्रतिफल हो सकता है। वर्धमान अनुमापी प्रतिफल बाजार में अपूर्ण प्रतिस्पर्धा की ओर अग्रसर करता है।

3.3 अंतर्जात विकास का AK मॉडल

जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया, AK मॉडल ही सरलतम अंतर्जात मॉडल है। यह एक नियत, बहिर्जात, बचत दर की कल्पना करके चलता है। यह प्रौद्योगिकीय प्रगति को केवल एक प्राचल में ढाल देता है (प्रायः A से इंगित)। यह इस अवधारणा को निरस्त करता है कि उत्पादन फलन ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल दर्शाता है। हमारा यह सरल अंतर्जात विकास मॉडल कुल उत्पादन फलन पर आधारित होता है, यथा –

$$Y = AK \quad \ldots (3.1)$$

जहाँ Y कुल उत्पादन है, K कुल शेयर पूँजी है और A एक धनात्मक नियतांक है, जो K की प्रत्येक इकाई के लिए प्रस्तुत उत्पादन की मात्रा मापता है। तदनुसार, समीकरण (3.1) में हम मानकर चलते हैं कि Y चर K का एक नियत अनुपात है।

समीकरण (3.1) में दर्शाए गए उत्पादन फलन के अनुसार पूँजी की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई इस बात पर ध्यान दिए बिना ही उत्पादन A इकाइयों तक बढ़ा देती है कि उत्पादन में पूँजी की कितनी इकाइयाँ प्रयोग होती हैं। चूँकि पूँजी का सीमांत उत्पाद, जो कि A के बराबर है, शेयर पूँजी K के आकार पर निर्भर नहीं है, समीकरण (3.1) में दर्शाए गए उत्पादन फलन का अर्थ पूँजी की ह्रासमान सीमांत उत्पादकता नहीं है।

यह अवधारणा कि सीमांत उत्पादकता नियत रहती है, न कि ह्रासमान, सोलो मॉडल से एक प्रमुख प्रत्यंतर है।

अंतर्जात विकास सिद्धांतकारों ने यह स्पष्ट करने के लिए अनेक कारण दिए हैं कि क्यों, समग्र अर्थव्यवस्था के लिए, पूँजी की सीमांत उत्पादकता ह्रासमान नहीं हो सकती। इनमें से एक व्याख्या में मानव पूँजी की भूमिका पर जोर दिया गया है। अर्थशास्त्र में 'मानव पूँजी' का अर्थ होता है – व्यक्तियों का ज्ञान, कौशल और प्रशिक्षण। जब अर्थव्यवस्थाएँ पूँजी संचय कर और समृद्ध हो जाती हैं तो वे बेहतर पोषण, शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा एवं काम करते हुए प्रशिक्षण के माध्यम से "लोगों में निवेश" की दिशा में और संसाधन लगा देती हैं। जन सामान्य में यह निवेश उन देशों की मानव पूँजी को बढ़ा देता है, जो कि फिर उत्पादकता बढ़ाता है। यदि मानव शेयर पूँजी नियत रहने पर भौतिक शेयर पूँजी बढ़ती है तो भौतिक पूँजी की ह्रासमान सीमांत उत्पादकता दिखाई देगी क्योंकि भौतिक पूँजी की प्रत्येक इकाई मानव पूँजी की अपेक्षाकृत कम मात्रा के साथ ही प्रभावशाली ढंग से काम करेगी।

अंतर्जात विकास सिद्धांत के अनुसार, जब किसी अर्थव्यवस्था की भौतिक शेयर पूँजी बढ़ती है तो उसकी मानव शेयर पूँजी भी उसी अनुपात में बढ़ने लगती है। तदनुसार, जब भौतिक शेयर पूँजी बढ़ती है तो भौतिक पूँजी की प्रत्येक इकाई मानव पूँजी की एक समान मात्रा के साथ ही प्रभावशाली ढंग से काम करती है, अतः पूँजी की सीमांत उत्पादकता का घटना कोई जरूरी नहीं होता।

पूँजी की नियत सीमांत उत्पादकता के लिए एक दूसरा तर्क इस अवलोकन पर आधारित है कि, किसी भी विकासशील अर्थव्यवस्था में, फर्मों के पास अनुसंधान एवं विकास (R&D) क्रियाकलाप करवाने के लिए प्रलोभन होते हैं। ये क्रियाकलाप तकनीकी जानकारी बढ़ा देते हैं और इससे उत्पादकता में वृद्धि होती है। ऐसे लाभ पूँजी की सीमांत उत्पादकता को घटाने वाले किसी भी रुझान का प्रतिकार करते हैं।

अपनी चर्चा में हमने ऊपर देखा कि क्यों समीकरण (3.1) जैसे किसी उत्पादन फलन को समग्र अर्थव्यवस्था का एक युक्तियुक्त विवरण होना चाहिए। हमने वर्धित मानव पूँजी और R&D जैसे कारकों का ध्यान रखा। आइए, अब समीकरण (3.1) के निहितार्थ ज्ञात करते हैं। सोलो मॉडल की भाँति हम यहाँ भी मानकर चलेंगे कि राष्ट्रीय आय, S, कुल उत्पादन, AK, का एक अचर अंश 's' है (क्योंकि Y= AK)। तदनुसार, $S = sY = sAK$.

जैसा कि हमें प्रारंभिक समष्टि अर्थशास्त्र से ज्ञात है, किसी भी बंद अर्थव्यवस्था में निवेश बचत के बराबर ही होना चाहिए। हमें यह भी याद है कि सकल निवेश निवल निवेश (शेयर पूँजी में निवल वृद्धि) जमा अवमूल्यन (dK) के बराबर होता है, यथा –

$$\boldsymbol{I = \Delta K + dK} \qquad \text{... (3.2)}$$

अतएव, निवेश बचत के बराबर रखने पर हमें प्राप्त होता है –

$$\boldsymbol{\Delta K + dK = sAK} \qquad \text{... (3.3)}$$

शेयर पूँजी की वृद्धि दर, तदनुसार, होगी –

$$\boldsymbol{\frac{\Delta K}{K} = (sA - d)} \qquad \text{... (3.4)}$$

चूँकि उत्पादन शेयर पूँजी के समानुपाती है (देखें समीकरण (3.1)), उत्पादन की वृद्धि दर $\frac{\Delta Y}{Y}$ भी शेयर पूँजी की वृद्धि दर $\frac{\Delta K}{K}$ के बराबर है। अतएव, समीकरण (3.4) का अर्थ होगा कि –

$$\frac{\Delta Y}{Y} = sA - d \quad \text{... (3.5)}$$

समीकरण (3.5) से हम उत्पादन की वृद्धि दर $\frac{\Delta Y}{Y}$ निर्धारित करने वाले कारक ज्ञात कर सकते हैं। आप देखेंगे कि जब तक $sA > d$ रहता है, अर्थव्यवस्था की आय बढ़ती रहती है, वह भी बहिर्जात प्रौद्योगिकीय प्रगति की अवधारणा के बगैर। इस समीकरण में उत्पादन की वृद्धि दर बचत दर (s) पर निर्भर करती है। यह सोलो मॉडल के नितांत विपरीत है। आपको याद होगा कि सोलो मॉडल में बचत दर अर्थव्यवस्था की दीर्घावधि विकास दर को प्रभावित नहीं करती।

अंतर्जात विकास के AK मॉडल में, बहरहाल, बचत दर अर्थव्यवस्था के दीर्घावधि विकास को प्रभावित करती है। यह परिणाम कहीं अधिक यथार्थपरक है क्योंकि बचत की उच्चतर दरें और पूँजी निर्माण मानव पूँजी निर्माण को बढ़ावा देते हैं और R&D के लिए प्रोत्साहन प्रदान करते हैं। उत्पादकता में परिणामी वृद्धियाँ दीर्घावधि विकास प्रोत्साहित करने में मदद करती हैं। सारतः, सोलो मॉडल की तुलना में, यह मॉडल दीर्घावधि विकास के स्रोतों के रूप में बचत, मानव पूँजी निर्माण और R&D पर अधिक जोर देता है। तदनुसार, उत्पादन फलन में कोई भी हल्का—सा बदलाव आर्थिक विकास के विषय में प्रत्याशाओं में नाटकीय परिवर्तन ला सकता है। सोलो मॉडल में बचत अस्थायी विकास की ओर प्रवृत्त करती है, परंतु पूँजी में ह्रासमान लाभ अंततोगत्वा अर्थव्यवस्था को एक ऐसी स्थिर अवस्था में पहुँचने को विवश कर देता है जहाँ संवृद्धि केवल बहिर्जात प्रौद्योगिकीय प्रगति पर निर्भर करती है। इसके विपरीत, अंतर्जात विकास के AK मॉडल में, बचत और निवेश अनवरत विकास की ओर ले जा सकते हैं।

यद्यपि अंतर्जात विकास सिद्धांत अपनी उद्विकास अवस्था में ही है, यह उपागम कम से कम दो आयामों में आशाजनक प्रतीत होता है। प्रथम, यह सिद्धांत अर्थव्यवस्था की उत्पादकता वृद्धि दर को स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है, न कि सिर्फ मानकर चलता है। दूसरे, यह दर्शाता है कि किस प्रकार उत्पादन की दीर्घावधि वृद्धि दर देश की बचत दर जैसे उन कारकों पर निर्भर कर सकती है जो सरकारी नीतियों द्वारा प्रभावित किए जा सकते हैं।

बोध प्रश्न 1

1. अंतर्जात विकास के AK मॉडल की अद्वितीय अवधारणा पर प्रकाश डालें।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. अंतर्जात विकास के AK मॉडल में उत्पादन की वृद्धि दर कैसे निर्धारित होती है?

   ....

   ....

   ....

   ....

3.4 अंतर्जात विकास का रोमर मॉडल

अमेरिकी अर्थशास्त्री पॉल रोमर के मॉडल को विचारोत्पादन में विशेषज्ञता प्राप्त एक अनुसंधान कार्यक्षेत्र के रूप में पहचान वर्ष 1990 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'एंडोजीनस

टेक्नोलॉजिकल चेंज' से मिली। यह कार्यक्षेत्र विचार पैदा करने अथवा नयी जानकारी सामने लाने के लिए ज्ञान के वर्तमान भंडार के साथ–साथ मानव पूँजी का भी उपयोग करता है। रोमर के अनुसार, योजना रूपी विचार प्राकृतिक स्रोतों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। जापान का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि उसके पास प्राकृतिक संसाधन बेशक बहुत कम रहे हैं, लेकिन उसने सदा पाश्चात्य विचारों और प्रौद्योगिकी का स्वागत किया है।

रोमर कुल उत्पादन फलन का निरूपण निम्नवत् करते हैं –

$$\boldsymbol{Y = L_Y^{1-\propto}(x_1^{\propto} + x_2^{\propto} + \cdots . + x_A^{\propto})} \quad \ldots (3.6)$$

$$\boldsymbol{Y = L_Y^{1-\propto} \sum_{i=1}^{A} x_i^{\propto}} \quad \ldots (3.7)$$

जहाँ L_Y उत्पादन देने वाले श्रमिकों की संख्या है और $x'_{i\,s}$ पूँजीगत वस्तुओं के विभिन्न प्रकार। एक बड़ी संख्या में पूर्णतः प्रतिस्पर्धी फर्में किसी सजातीय उत्पादन वस्तु, Y, को बनाने के लिए श्रम और पूँजी का संयोजन करती हैं।

उत्पादन Y को श्रम L_Y और कुछ संख्या में विभिन्न पूँजीगत वस्तुओं x_i जिन्हें 'मध्यवर्ती माल' कहा जाता है, का प्रयोग कर प्रस्तुत किया जाता है। चर A किसी भी समय–बिंदु पर तैयार माल क्षेत्र में प्रयोग किए जाने के लिए उपलब्ध पूँजीगत वस्तुओं की संख्या बताता है। इस मॉडल में आविष्कारों अथवा विचारों का संबंध उन नयी पूँजीगत वस्तुओं के सृजन से है जिन्हें उत्पादन प्रदर्शित करने के लिए तैयार माल क्षेत्र द्वारा प्रयोग किया जा सकता है। यदि A नियत हो तो प्रत्येक भिन्न पूँजीगत वस्तु पर ह्रासमान लाभ के प्रतिमान का अर्थ होगा कि वृद्धि अंततः घटते–घटते शून्य हो जाएगी। बहरहाल, रोमर मॉडल में A नियत नहीं होता। बल्कि यहाँ R&D में संलग्न L_A श्रमिक होते हैं और इससे नयी पूँजीगत वस्तुओं के आविष्कार का मार्ग प्रशस्त होता है। जब हम मान लेते हैं कि विचार (A) भी उत्पादन फलन में आदान ही कहलाते हैं तो हम वर्धमान लाभ देखते हैं।

कुल शेयर पूँजी को हम निम्नवत् परिभाषित कर सकते हैं –

$$\boldsymbol{K = \sum_{i=1}^{A} x_i} \quad \ldots (3.8)$$

पुनः हम बचत दर को बहिर्जात मानकर चलते हैं और फिर मान लेते हैं कि

$$\boldsymbol{\dot{K} = s_K Y - dK} \quad \ldots (3.9)$$

अर्थव्यवस्था में जब लोग किसी ज्ञात दर s_K पर उपभोग त्याग देते हैं तो पूँजी संचित होती है और बहिर्जात दर d पर अवमूल्यित हो जाती है। इस विश्लेषण को सरल ढंग से प्रस्तुत करती एक व्याख्या के अनुसार, सभी पूँजीगत वस्तुएँ उत्पादन प्रक्रिया में एक अभिन्न भूमिका निभाती हैं। इसी वजह से हम यह मानकर चल सकते हैं कि इन पूँजीगत वस्तुओं में से प्रत्येक के लिए उत्पादनकर्ताओं की ओर से माँग एक समान ही होती है, जिसका अर्थ है कि

$$\boldsymbol{x_i = \bar{x}\ , i = 1, 2 \ldots \ldots \ldots , A} \quad \ldots (3.10)$$

अर्थात् उत्पादन फलन को निम्नवत् लिखा जा सकता है –

$$\boldsymbol{Y = AL_Y^{1-\propto}\, \bar{x}^{\propto}} \quad \ldots (3.11)$$

अब आप समीकरण 3.8 और 3.10 से $\boldsymbol{K = A\bar{x}}$ को निम्नवत् देखेंगे–

$$\boldsymbol{\bar{x} = \frac{K}{A}} \quad \ldots (3.12)$$

अतः उत्पादन निम्नवत् लिखा जा सकता है –

$$Y = AL_Y^{1-\propto}\left(\frac{K}{A}\right)^{\propto} = (AL_Y)^{1-\propto}K^{\propto} \quad \text{… (3.13)}$$

रोमर मॉडल में कुल उत्पादन फलन ही बताता है कि किस प्रकार विचार सामग्री A का प्रयोग कर शेयर पूँजी K और श्रम L_Y उत्पादन Y प्रदर्शित करने के लिए संयोजित होते हैं। यहाँ $\propto$ मान 0 और 1 के बीच एक प्राचल है। प्रौद्योगिकी के किसी ज्ञात स्तर के लिए समीकरण 3.13 में उत्पादन फलन K और L_Y में अचर अनुमापी प्रतिफल दर्शाता है। बहरहाल, जब हम मान लेते हैं कि विचार (A) भी उत्पादन फलन में एक आदान हैं तो हम वर्धमान लाभ देखते हैं।

अर्थव्यवस्था में कुल श्रम आपूर्ति दो क्रियाकलापों में प्रयोग की जाती है– L_Y श्रमिक उत्पादन प्रदर्शित करने के लिए प्रयोग किया जाता है जबकि L_A श्रमिक R&D में संलग्न रहते हैं, और यह नयी पूँजीगत वस्तुओं के आविष्कार की ओर प्रवृत्त करता है।

$$L_Y + L_A = L \quad \text{… (3.14)}$$

हम यह मानकर चलते हैं कि श्रमबल का एक नियत अंश नये विचार सृजन के लिए R&D में संलग्न है।

$$\frac{L_A}{L} = s_A \quad \text{… (3.15)}$$

श्रमिक वर्ग का शेष भाग उत्पादन प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग किया जाता है –

$$\frac{L_Y}{L} = 1 - s_A = s_Y \quad \text{… (3.16)}$$

श्रम जो जनसंख्या के समतुल्य होता है, किसी अचर और बहिर्जात दर n पर तेजी से बढ़ता है।

$$\frac{\dot{L}}{L} = n \quad \text{…(3.17)}$$

$A(t)$ ज्ञान का भंडार अथवा उन विचारों की संख्या है जो अतीत में समय t तक आविष्कारों का रूप लेते रहे हैं। चर $\dot{A}$ किसी भी ज्ञात समय–बिंदु पर प्रस्तुत नये विचारों की संख्या है। चर $\dot{A}$ को पूँजीगत वस्तुओं या विचारों की संख्या में किसी परिवर्तन हेतु एक उत्पादन फलन प्रयोग करते हुए निरूपित किया जाता है।

$$\dot{A} = \bar{\gamma}\, L_A^{\lambda} \quad \text{…(3.18)}$$

चर $\dot{A}$ ये विचारों की खोज में लगे अनुसंधानकर्ताओं की संख्या L_A पर धनात्मक रूप से निर्भर करता है। चर λ इस बात का संसूचक है कि अनुसंधानकर्ताओं के लिए कितने धीमे ह्रासमान सीमांत उत्पादकता शुरू होती है। उदाहरण के लिए, जब अनुसंधान में एकाधिक लोग संलग्न हों तो प्रयास में पुनरावृत्ति की संभावना बढ़ती है। चर λ मान 0 और 1 के बीच कोई प्राचल है। चर $\bar{\gamma}$ वह दर है जिस पर वे नये विचार खोजते हैं। खोज की यह दर $\bar{\gamma}$ उस विचार सामग्री पर निर्भर करेगी जो पहले ही आविष्कृत A है।

$$\bar{\gamma} = \gamma A^{\theta} \quad \text{… (3.19)}$$

यदि $\theta > 0$ तो खोज की यह दर A का एक वर्धमान फलन होगी, यथा अतीत में विचारों का आविष्कार वर्तमान में अनुसंधानकर्ताओं की उत्पादकता बढ़ा देता है। यदि $\theta < 0$ तो खोज की यह दर A का एक ह्रासमान फलन होगी, और यह प्रसंग मत्स्यन में उस प्रयास जैसा होगा जिसमें मछली बार–बार हाथ से फिसल जाती है। अंततः $\theta = 0$ का अर्थ होता है कि अनुसंधान की उत्पादकता ज्ञान के भंडार पर निर्भर नहीं होती।

चलिए, समीकरण (3.18) और (3.19) से विचारों के सामान्य उत्पादन फलन को पुनः लिखते हैं –

$$\dot{A} = \gamma L_A^{\lambda} A^{\theta} \quad \ldots (3.20)$$

हम यह मानकर चलते हैं कि $\theta < 1$ होता है। यह प्रभाव "जाइंट शोल्डर्स" अर्थात् किसी दैत्य के कंधे पर सवार होकर पहले ही दूर तक देख लेने जैसा है। उदाहरण के लिए, नये सॉफ्टवेयर का आविष्कार का भरोसा उपयुक्त कंप्यूटर हार्डवेयर के पिछले आविष्कार पर ही रहा होगा। हम यह भी मानकर चलते हैं कि $\lambda < 1$ पुनरावृत्ति से जुड़ी एक बाह्यता दर्शा सकता है – किसी विशिष्ट अनुसंधानकर्ता द्वारा सृजित कुछ विचार शायद अर्थव्यवस्था के लिए नये न हों।

बोध प्रश्न 2

1) रोमर मॉडल का कुल उत्पादन फलन स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

2) स्पष्ट करें कि विचारों के उत्पादन फलन में θ और λ क्या निरूपित करते हैं।

....

....

....

....

....

3) पूँजी के स्वर्ण–नियम स्तर पहुँचने हेतु वांछित दशा पर प्रकाश डालें।

....

....

....

....

....

3.5 रोमर मॉडल में स्थिरावस्था विकास

वह अर्थव्यवस्था जिसमें पूँजी और उत्पादन एक समान दर से बढ़ते हैं, किसी स्थिरावस्था विकास पथ की ओर मुड़ जाती है। अतः स्थिरावस्था विकास दर इस प्रकार आकलित की जा सकती है – समीकरण (3.16) से L_Y के लिए प्रतिस्थापित करने के बाद उत्पादन फलन को पुनः निम्नवत् लिखें –

$$Y = (As_Y L)^{1-\alpha} K^{\alpha} \quad \ldots (3.21)$$

समीकरण (3.21) के लघुगणक और अवकलज लेकर हमें प्राप्त होता है –

$$\frac{\dot{Y}}{Y} = (1-\alpha)\left(\frac{\dot{A}}{A} + \frac{\dot{s_Y}}{s_Y} + \frac{\dot{L}}{L}\right) + \alpha\left(\frac{\dot{K}}{K}\right) \quad \ldots (3.22)$$

अब इस तथ्य का प्रयोग करें कि पूँजी और उत्पादन की स्थिरावस्था विकास दरें एक समान हैं। अतः अवकलन के लिए स्थिरावस्था विकास दर को हम निम्नवत् दर्शाएँगे –

$$\left(\frac{\dot{Y}}{Y}\right)^* = (1-\alpha)\left(\frac{\dot{A}}{A} + \frac{\dot{s_Y}}{s_Y} + \frac{\dot{L}}{L}\right) + \alpha\left(\frac{\dot{Y}}{Y}\right) \quad (3.23)$$

अब $\frac{\dot{s_Y}}{s_Y} = 0$ … (3.24)

यथा, गैर–अनुसंधान क्षेत्र को आवंटित श्रम का भाग स्थिरावस्था पथ पर बदलता नहीं रह सकता अन्यथा अनुसंधानकर्ताओं का अंश अंततोगत्वा शून्य अथवा 1 से कुछ अधिक हो जाएगा, जो कि अव्यवहार्य होगा। अतः हमें प्राप्त होता है –

$$\left(\frac{\dot{Y}}{Y} - \frac{\dot{L}}{L}\right)^* = \frac{\dot{A}}{A} \quad \ldots (3.25)$$

उत्पादन प्रति श्रमिक की स्थिरावस्था विकास दर चर A की स्थिरावस्था विकास दर के बराबर होती है।

मान लीजिए कि अधोलिखित अक्षर प्रति व्यक्ति चर इंगित करते हैं और g_X चर X की वृद्धि दर दर्शाता है। तब

$$g_Y = g_K = g_A \quad \ldots (3.26)$$

यथा, उत्पादन प्रति व्यक्ति, पूँजी–श्रम अनुपात और विचार भंडार समेत सभी किसी भी संतुलित विकास पथ पर एक समान दर से बढ़ते हैं। यदि इस मॉडल में प्रौद्योगिकीय प्रगति नहीं होती तो कोई विकास भी नहीं होता। अतएव, हमें प्रौद्योगिकीय विकास की यह दर किसी संतुलित विकास पथ पर चलकर ही ज्ञात करनी होगी।

3.6 रोमर मॉडल में स्थिरावस्था विकास दर अवकलित करना

रोमर मॉडल में सोलो मॉडल की तुलना में एक बड़ा अंतर यह है कि यहाँ A पद मॉडल के भीतर ही निर्धारित किया जाता है, जो कि आदर्श अर्थव्यवस्था में अभिकर्ताओं की कार्रवाई से असंबद्ध किसी नियत दर पर विकसित किए जाने के विपरीत है। इस मॉडल में स्थिरावस्था विकास दर अवकलित करने के लिए आप देखेंगे कि अनेक पूँजीगत वस्तुओं की वृद्धि दर निम्नवत् होती है –

$$\frac{\dot{A}}{A} = \frac{\gamma(s_A L)^\lambda}{A^{1-\theta}} \quad \ldots (3.27)$$

इस अर्थव्यवस्था की स्थिर अवस्था का अर्थ है कि प्राचल A किसी नियत दर पर बढ़ रहा है। ऐसा तभी हो सकता है जब समीकरण (3.27) के दाएँ पक्ष की वृद्धि दर शून्य हो।

समीकरण (3.27) के लघुगणक और अवकलज लेकर हमें प्राप्त होता है–

$$0 = \lambda\left(\frac{\dot{s_A}}{s_A} + \frac{\dot{L}}{L}\right) - (1-\theta)\frac{\dot{A}}{A} \quad \ldots (3.28)$$

पुनः स्थिर अवस्था में अनुसंधानकर्ताओं के अंश की वृद्धि दर $\frac{\dot{s_A}}{s_A}$ शून्य ही होनी चाहिए। अतः इस मॉडल के स्थिरावस्था विकास पथ पर अनेक पूँजीगत वस्तुओं की वृद्धि दर निम्नवत् होगी –

$$\left(\frac{\dot{A}}{A}\right)^* = \frac{\lambda}{1-\theta}\frac{\dot{L}}{L} \quad \ldots (3.29)$$

समीकरण (3.17) से $\frac{\dot{L}}{L} = n$ के लिए प्रतिस्थापन कर हमें प्राप्त होता है –

$$g_Y = g_K = g_A = \left(\frac{\dot{A}}{A}\right)^* = \frac{\lambda}{1-\theta} n \qquad \dots (3.30)$$

इस मॉडल में उत्पादन प्रति श्रमिक की दीर्घावधि वृद्धि दर तीन कारकों पर धनात्मक रूप से निर्भर करती है, यथा –

a) प्राचल λ, जो कि वह सीमा दर्शाता है जहाँ तक अनुसंधानकर्ता शामिल करने पर ह्रासमान सीमांत उत्पादकता नजर आती है। प्राचल λ से जुड़ी बाह्यता को 'स्टेपिंग ऑन टोज' अर्थात् पंजों के बल चलकर आने वाला प्रभाव कहा जा सकता है।

b) 'स्टैंडिंग ऑन शोल्डर्स' अर्थात् कंधे पर बैठ कर दूर तक देख लेने वाले प्रभाव, θ, की ताकत। अतीत में हुए आविष्कार वर्तमान आविष्कारों की दर बढ़ाने में जितने अधिक मददगार साबित होंगे उतनी ही तेजी से विकास दर बढ़ेगी। इससे अनुसंधान में ज्ञान का सकारात्मक अधिप्लावन दिखाई देता है। चर θ से जुड़ी बाह्यता को हम 'स्टैंडिंग ऑन शोल्डर्स' प्रभाव कह सकते हैं।

c) श्रमिक संख्या, n, की वृद्धि दर। चर n का मान जितना अधिक होता है उतनी ही तेजी से अर्थव्यवस्था अनुसंधानकर्ताओं की संख्या बढ़ाती है। यह कुछ असामान्य अवकल्पना प्रतीत होती है, परंतु यदि आप विश्व आर्थिक इतिहास पर अपनी दीर्घ दृ ष्टि डालें तो यह सच लगेगा। औद्योगिक क्रांति से पूर्व जनसंख्या वृद्धि दरें और जीडीपी प्रति व्यक्ति बेहद कम होती थीं। विगत 200 वर्षों में जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक संवृद्धि दोनों की दरें बढ़ी हैं।

3.7 उत्पादन प्रौद्योगिकी अनुपात का स्थिरावस्था स्तर

सोलो मॉडल पर अपनी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए, हम उत्पादन प्रति श्रमिक को पूँजी–उत्पादन अनुपात और एक कुल उपादान उत्पादकता घटक के रूप में विघटित कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, हम $L_Y = (1 - s_A)L$ को प्रतिस्थापित कर समीकरण (3.13) फिर से लिख सकते हैं, यथा –

$$Y = (A\,(1 - s_A)L)^{1-\alpha} K^{\alpha} \qquad \dots (3.31)$$

समीकरण (3.9) से, $\dot{K} = s_K Y - dK$

$$\frac{\dot{K}}{K} = s_K \frac{Y}{K} - d \qquad \dots (3.32)$$

आप देखेंगे कि समीकरण (3.32) ही पूँजी संचय समीकरण है।

चलिए, समीकरण (3.31) के दोनों पक्षों को L से विभाजित करते हैं ताकि उत्पादन प्रति व्यक्ति ज्ञात हो–

$$y = \frac{Y}{L} = A^{1-\alpha}(1 - s_A)^{1-\alpha} \left(\frac{K}{L}\right)^{\alpha} \qquad \dots (3.33)$$

अब हम $k = \frac{K}{L}$ को समीकरण (3.33) में प्रतिस्थापित करते हैं–

$$y = A^{1-\alpha}(1 - s_A)^{1-\alpha} k^{\alpha} \qquad \dots (3.34)$$

समीकरण (3.34) के दोनों पक्षों को A से विभाजित करने पर प्राप्त होता है –

$$\frac{y}{A} = (1 - s_A)^{1-\alpha} \left(\frac{k}{A}\right)^{\alpha} \qquad \dots (3.35)$$

यदि हम $\bar{y} = \frac{y}{A}$ और $\bar{k} = \frac{k}{A}$ को समीकरण (3.35) में प्रतिस्थापित करते हैं तो प्राप्त होता है –

$$\bar{y} = (1 - s_A)^{1-\alpha}\bar{k}^{\alpha} \quad \text{... (3.36)}$$

जहाँ $\bar{y} = \frac{y}{A} = \frac{Y}{AL}$ प्रौद्योगिकी के अनुसार उत्पादन प्रति श्रमिक अथवा उत्पादन–प्रौद्योगिकी अनुपात है और $\bar{k} = \frac{k}{A} = \frac{K}{AL}$ प्रौद्योगिकी के अनुसार पूँजी प्रति श्रमिक अथवा पूँजी–प्रौद्योगिकी अनुपात है। यदि हम पूँजी संचय समीकरण (3.32) को $\bar{k}$ के पदों में पुनः लिखें तो हमें पूँजी–प्रौद्योगिकी अनुपात प्राप्त होता है, यथा –

$$\frac{\dot{\bar{k}}}{\bar{k}} = \frac{\dot{K}}{K} - \frac{\dot{A}}{A} - \frac{\dot{L}}{L} \quad \text{... (3.37)}$$

आइए, अब $\frac{\dot{K}}{K} = s_K \frac{Y}{K} - d$, $\frac{\dot{A}}{A} = g_A$ और $\frac{\dot{L}}{L} = n$ को समीकरण (3.37) में प्रतिस्थापित करते हैं। इससे हमें प्राप्त होता है –

$$\frac{\dot{\bar{k}}}{\bar{k}} = s_K \frac{Y}{K} - d - g_A - n \quad \text{... (3.38)}$$

$$\frac{\dot{\bar{k}}}{\bar{k}} = s_K \left(\frac{Y/_{AL}}{K/_{AL}}\right) - d - g_A - n \quad \text{... (3.39)}$$

$$\frac{\dot{\bar{k}}}{\bar{k}} = s_K \frac{\bar{y}}{\bar{k}} - d - g_A - n \quad \text{...(3.40)}$$

$$\dot{\bar{k}} = s_K\bar{y} - (d + g_A + n)\bar{k} \quad \text{...(3.41)}$$

स्थिरावस्था उत्पादन–प्रौद्योगिकी अनुपात ज्ञात किया जाना और यह शर्त कि स्थिर अवस्था में $\dot{\bar{k}} = 0$ उत्पादन फलन से निर्धारित होता है। चर $\bar{k}^*$ का मान ज्ञात करने के लिए हम $\dot{\bar{k}} = 0$ को समीकरण (3.41) में रखते हैं।

$$0 = s_K\bar{y} - (d + g_A + n)\bar{k} \quad \text{... (3.42)}$$

$$0 = s_K\left[(1 - s_A)^{1-\alpha}\bar{k}^{\alpha}\right] - (d + g_A + n)\bar{k} \quad \text{... (3.43)}$$

$$\bar{k}^{1-\alpha} = (1 - s_A)^{1-\alpha} \frac{s_K}{d+g_A+n} \quad \text{... (3.44)}$$

$$\bar{k}^* = (1 - s_A)\left(\frac{s_K}{d+g_A+n}\right)^{\frac{1}{1-\alpha}} \quad \text{... (3.45)}$$

समीकरण (3.45) से $\bar{k}^*$ को लेकर समीकरण (3.36) में दर्शाए गए उत्पादन फलन में प्रतिस्थापित करने पर हमें प्राप्त होता है –

$$\bar{y}^* = (1 - s_A)^{1-\alpha}\left(\frac{s_K}{d+g_A+n}\right)^{\frac{\alpha}{1-\alpha}} (1 - s_A)^{\alpha} \quad \text{... (3.46)}$$

अतः स्थिरावस्था उत्पादन–प्रौद्योगिकी अनुपात निम्नवत् दर्शाया जाएगा –

$$\bar{y}^* = (1 - s_A)\left(\frac{s_K}{d+g_A+n}\right)^{\frac{\alpha}{1-\alpha}} \quad \text{... (3.47)}$$

3.8 अनुसंधान एवं विकास के अंश में स्थायी वृद्धि

इस पाठांश में हम स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे कि यदि नये विचारों की खोज में लगी जनसंख्या का अंश स्थाई रूप से बढ़ता है तो विश्व की उन्नत अर्थव्यवस्थाओं का क्या होता है? इस बात को सरल ढंग से समझने के लिए, चलिए, मान लेते हैं कि $\lambda = 1$ और $\Theta = 0$ अब हम समीकरण (3.27) को पुनः निम्नवत् लिख सकते हैं –

$$\frac{\dot{A}}{A} = \frac{\gamma(s_A L)}{A} \qquad ...(3.48)$$

चित्र 3.1 दर्शाता है कि यह मानते हुए कि अर्थव्यवस्था एक स्थिर अवस्था से आरंभ कर रही है, जब s_A स्थायी रूप से बढ़कर $s_A{}'$ हो जाता है तो प्रौद्योगिकीय प्रगति का क्या होता है? स्थिर अवस्था में अर्थव्यवस्था प्रौद्योगिकीय प्रगति की दर, g_A, पर एक संतुलित विकास पथ पर आगे बढ़ती है, जिससे वह हमारी कल्पना के अनुसार जनसंख्या वृद्धि की दर, n, के बराबर हो जाती है, यथा –

$$g_A = \frac{\dot{A}}{A} = \frac{\gamma(s_A L)}{A} \qquad ... (3.49)$$

$$\frac{g_A}{\gamma} = \frac{\dot{A}}{A} = \frac{L_A}{A} \qquad ... (3.50)$$

समीकरण (3.50) से, $\frac{L_A}{A}$ का अनुपात इसीलिए $\frac{g_A}{\gamma}$ के बराबर है। चित्र 3.1 में, मान लीजिए कि s_A में वृद्धि समय $t = 0$ पर होती है। अब जनसंख्या L_0 के साथ, L_A बढ़ने पर अनुसंधानकर्ताओं की संख्या बढ़ती है, जिससे अनुपात $\frac{L_A}{A}$ उछलकर एक उच्चतर स्तर पर चला जाता है। अतिरिक्त अनुसंधानकर्ता नये विचारों की वृहत्तर संख्या प्रस्तुत करते हैं, जिससे प्रौद्योगिकी की विकास दर भी इस बिंदु से ऊपर चली जाती है। यह स्थिति चित्र 3.1 में "X" अंकित बिंदु से मेल खाती है। बिंदु X पर प्रौद्योगिकीय प्रगति $\frac{\dot{A}}{A}$ जनसंख्या वृद्धि, n, से आगे निकल जाती है, जिससे कालांतर में अनुपात $\frac{L_A}{A}$ गिर जाता है, जैसा कि तीर–चिह्न इंगित करते हैं।

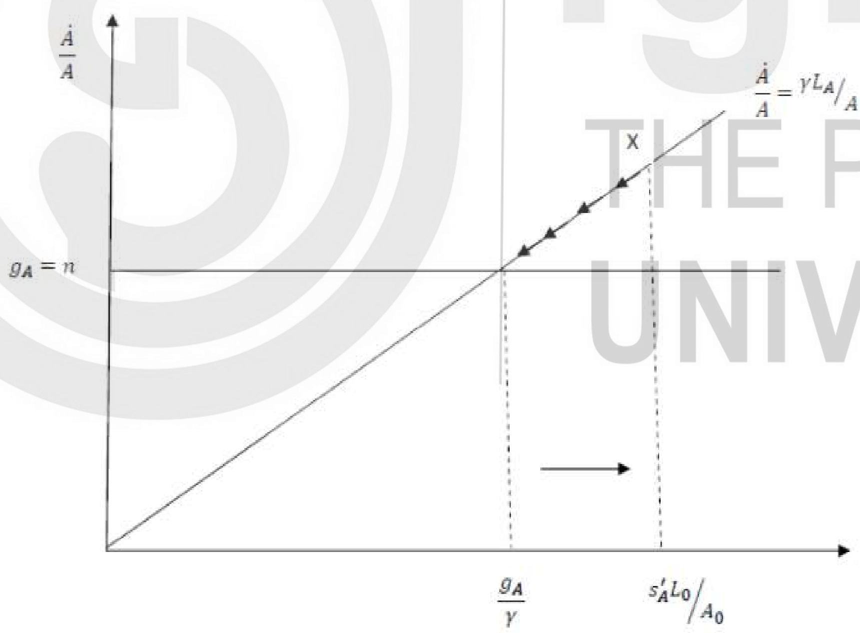

स्थिर अवस्था में अर्थव्यवस्था $g_A = n$ से संतुलित विकास पथ पर आगे बढ़ती है। फिर $t = 0$, पर s_A में वृद्धि के साथ अनुसंधानकर्ताओं की संख्या बढ़ती है और $\frac{L_A}{A}$ का अनुपात उछलकर स्तर X पर आ जाता है। बिंदु X पर प्रौद्योगिकीय प्रगति $\frac{\dot{A}}{A}$ जनसंख्या वृद्धि n से अधिक होती है, जिससे कालांतर में अनुपात $\frac{L_A}{A}$ गिर जाता है, जो तीर–चिह्न इंगित करते हैं।

चित्र 3.1: प्रौद्योगिकीय प्रगति : R&D के अंश में वृद्धि

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

जब यह अनुपात गिरता है तो प्रौद्योगिकीय परिवर्तन दर भी धीरे–धीरे गिरने लगती है, और तब तक गिरती रहती है जब तक अर्थव्यवस्था उस संतुलित विकास पथ पर नहीं आ जाती जहाँ $g_A = n$ होता है। अतएव, अनुसंधान को समर्पित जनसंख्या के अंश में कोई स्थायी वृद्धि प्रौद्योगिकीय प्रगति की दर अस्थायी रूप से तो बढ़ा देती है मगर दीर्घ अवधि में नहीं। यह व्यवहार चित्र 3.2 में दर्शाया गया है।

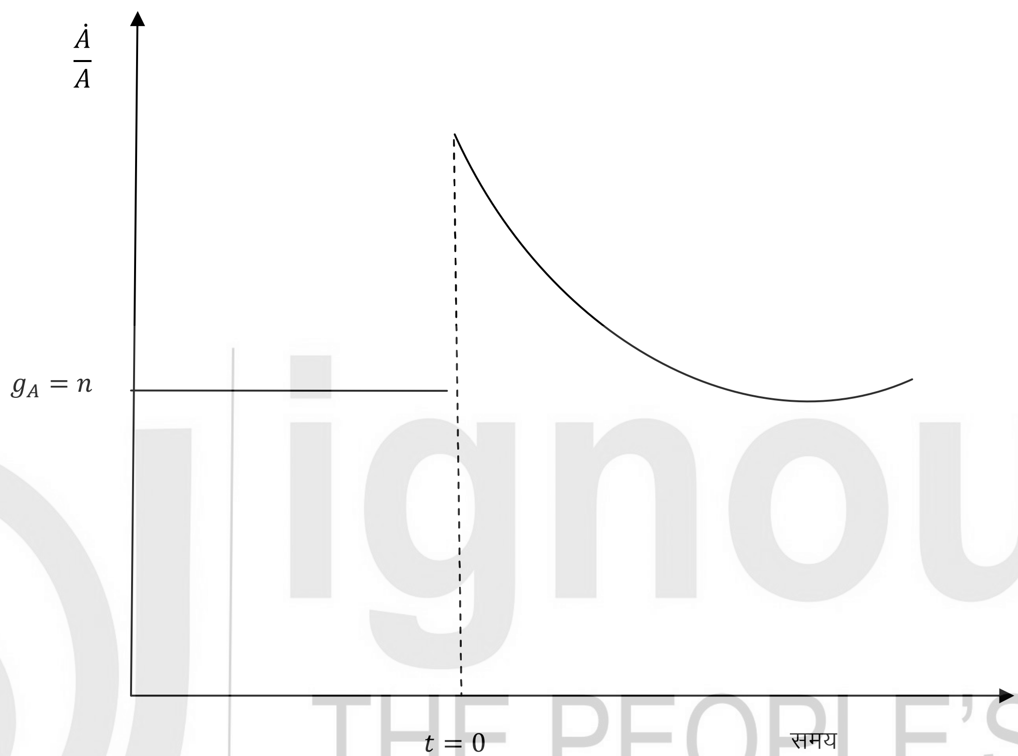

अनुपात $\frac{L_A}{A}$ तब तक गिरती रहती है जब तक अर्थव्यवस्था उस संतुलित विकास पथ पर नहीं आ जाती जहाँ $g_A = n$ प्रौद्योगिकी प्रगति की दर केवल अस्थायी रूप से बढ़ती है।

चित्र 3.2: कालांतर में प्रौद्योगिकी की विकास दर

इस अर्थव्यवस्था में प्रौद्योगिकी के स्तर का क्या होता है? इस प्रश्न का उत्तर चित्र 3.3 देता है। प्रौद्योगिकी का स्तर g_A की दर से समय $t = 0$ तक एक संतुलित विकास पथ पर आगे बढ़ता है। इस समय–बिंदु पर प्रौद्योगिकी की विकास दर बढ़ती है और प्रौद्योगिकी का स्तर पहले से अधिक तेजी से बढ़ता है। कालांतर में, बहरहाल, विकास दर वापस g_A पर आने तक गिरती है। इस प्रकार, अनुसंधान को समर्पित जनसंख्या के अंश में किसी भी स्थायी वृद्धि का प्रौद्योगिकी पर सिर्फ स्तर प्रभाव होता है। फिर R&D में स्थायी वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रौद्योगिकी का स्तर स्थायी रूप से ऊँचा हो जाता है। इस मॉडल की दीर्घावधि विकास दर अस्थायी रूप से बढ़ने के बाद संतुलित विकास पथ पर लौट जाती है।

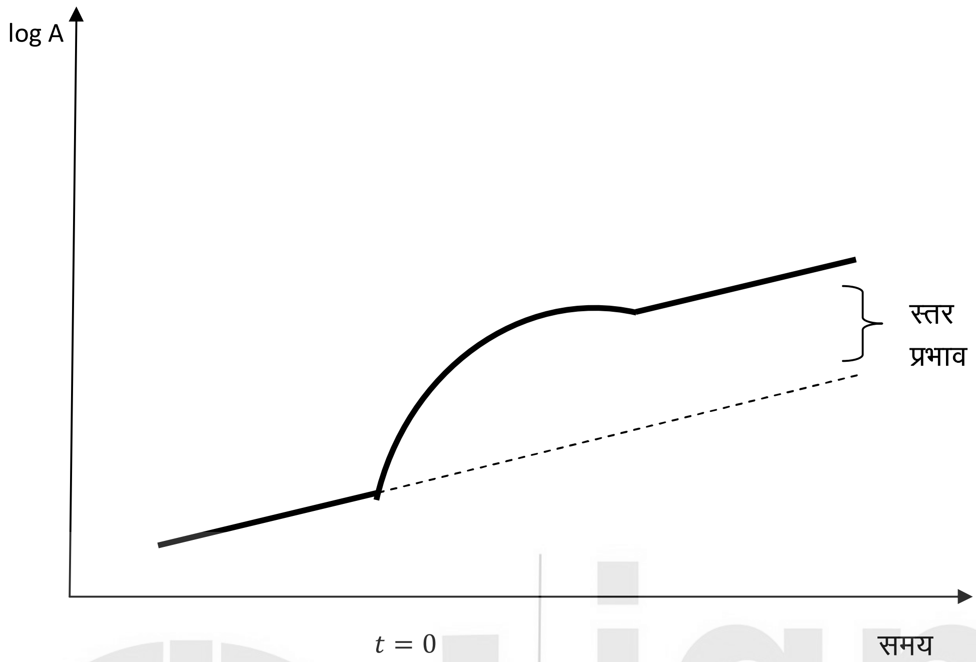

प्रौद्योगिकी का स्तर g_A की दर से समय $t = 0$ तक एक संतुलित पथ पर आगे बढ़ता है। इस समय–बिंदु पर प्रौद्योगिकी की विकास दर बढ़ती है और प्रौद्योगिकी का स्तर पहले से अधिक तेज़ी से बढ़ता है। कालांतर में, बहरहाल, विकास दर g_A पर आने तक गिरती है। इस प्रकार, अनुसंधान को समर्पित जनसंख्या के अंश में किसी भी स्थायी वृद्धि का प्रौद्योगिकी पर सिर्फ स्तर प्रभाव होता है। फिर R&D में स्थायी वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रौद्योगिकी का स्तर स्थायी रूप से ऊँचा हो जाता है।

चित्र 3.3: कालांतर में प्रौद्योगिकी का स्तर

बोध प्रश्न 3

1) रोमर मॉडल में उत्पादन प्रति श्रमिक की स्थिरावस्था विकास दर क्या होती है?

....

....

....

....

....

2) उत्पादन प्रति श्रमिक की दीर्घावधि वृद्धि दर के निर्धारक तत्वों का वर्णन करें।

....

....

....

....

....

3) स्थिरावस्था उत्पादन–प्रौद्योगिकी अनुपात स्तर के लिए समीकरण प्राप्त करके दिखाएँ।

....

....

....

....

....

4) प्रौद्योगिकी की विकास दर और प्रौद्योगिकी के स्तर पर R&D में संलग्न जनसंख्या के अंश में किसी स्थायी वृद्धि का प्रभाव स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

3.9 सार–संक्षेप

अंतर्जात विकास मॉडल विकास प्रक्रिया को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण सैद्धांतिक प्राधार प्रदान करते हैं। ये समाज के भीतर अंतर्संबंधों को उजागर करते हैं, जो कि नीति–निर्माताओं के लिए मददगार साबित होता है। ये सिद्धांत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये इस बात पर जोर देते हैं कि पूँजी संचय और नवाचार आर्थिक विकास ला सकते हैं, जबकि ह्रासमान लाभ उसमें गिरावट दर्ज करा सकते हैं। ये मॉडल दर्शाते हैं कि अर्थव्यवस्था के भीतर विचारों और अनुसंधान के अधिप्लाव और स्तर प्रभावों के माध्यम से दीर्घावधि आर्थिक विकास कैसे हासिल किया जा सकता है।

अंतर्जात विकास मॉडल मुख्यतः इस बात को सिद्ध करने से संबंध रखते हैं कि प्रौद्योगिकीय प्रगति किस प्रकार वर्धमान अनुमापी प्रतिफल दिला सकती है। एरो (1962) द्वारा प्रतिपादित AK मॉडल उत्पादन प्रति श्रमिक पर निर्भर उत्पादकता की संभावना पर जोर देता है। इसके अनुसार, "करके सीखना" विधि से अनभिप्रेत होने पर भी प्रौद्योगिकीय प्रगति देखी जा सकती है। जब श्रमिक उत्पादन प्रक्रिया में विशेषज्ञता हासिल करने में जुटे रहते हैं तो उनके निवेश की उत्पादकता इस विशेषज्ञता के सहारे बढ़ जाएगी। इस मॉडल में प्रौद्योगिकीय प्रगति करके सीखने से पहले उपादान की आरंभिक उत्पादकता और करके सीखने के बाद उपादान की उत्पादकता के बीच अंतर पर आधारित है, जहाँ परवर्ती का मान पहले से अधिक ही होता है। इस मॉडल में आर्थिक विकास बचत, पूँजी संचय, और दक्षता से प्रेरित होती है। दक्षता को "करके सीखना" द्वारा कारक आदानों की उत्पादकता में वृद्धि के रूप में परिभाषित किया जाता है।

रोमर मॉडल विचारों और वस्तुओं के बीच भिन्नता को केंद्र में रखता है। इस मॉडल की अवधारणाएँ चार समीकरण देती हैं – (1) उत्पादन देने के लिए ज्ञान और श्रम की आवश्यकता पड़ती है। उत्पादन फलन अचर अनुमापी प्रतिफल केवल वस्तुओं में, जबकि वर्धमान अनुमापी प्रतिफल वस्तुओं और विचारों दोनों में दर्शाता है। (2) नये विचार पिछली अवधि में विचारों की विद्यमानता, विचार उत्पन्न करने वाले श्रमिकों की संख्या और उनकी उत्पादकता पर निर्भर करते हैं। (3) विचार उत्पन्न करने वाले श्रमिकों की संख्या और

उत्पादन देने वाले श्रमिकों की संख्या का कुल योग ही जनसंख्या कहलाता है। (4) जनसंख्या का कुछ अंश ही विचार उत्पन्न करता है।

अपने समीकरणों के साथ रोमर मॉडल वांछित दीर्घावधि आर्थिक विकास प्रस्तुत करता है, जो कि सोलो मॉडल ने नहीं किया। यह मॉडल विचारों का ह्रासमान लाभ नहीं दर्शाता क्योंकि वे गैर–प्रतिद्वंद्वी होते हैं। यह मॉडल एक संतुलित विकास पथ दर्शाता है – जिस पर सभी अंतर्जात चरों की वृद्धि दरें अचर रहती हैं, और $g_Y = g_K = g_A = \left(\frac{\dot{A}}{A}\right)^* = \frac{\lambda}{1-\theta}n$ के बराबर होता है।

इस मॉडल में उत्पादन प्रति श्रमिक की दीर्घावधि वृद्धि दर धनात्मक रूप से तीन कारकों पर निर्भर करती है – प्राचल λ पर, "स्टैंडिंग ऑन शोल्डर्स" प्रभाव θ पर, और श्रमिक संख्या की वृद्धि दर n पर। इसके अलावा, R&D में स्थायी वृद्धि के फलस्वरूप प्रौद्योगिकी के स्तर में वृद्धि का प्रौद्योगिकी पर केवल कोई स्तर प्रभाव ही देखने में आता है। इस मॉडल की दीर्घावधि विकास दर अस्थायी रूप से बढ़ने के बाद संतुलित विकास पथ पर लौट जाती है।

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) इसमें यह अवधारणा प्रयोग होती है कि उत्पादन फलन अंतर्जात विकास की ओर ले जाने के लिए कोई ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल नहीं दर्शाता।
2) समीकरण 3.5 में उत्पादन वृद्धि दर बचत दर पर निर्भर करती है।

बोध प्रश्न 2

1) उत्पादन Y श्रम L_Y और अनेक प्रकार की पूँजीगत वस्तुओं, x_i का प्रयोग कर प्रदर्शित किया जाता है, जिन्हें 'मध्यवर्ती माल' कहा जाता है।
2) प्राचल λ इस बात का संसूचक होता है कि अनुसंधानकर्ताओं के सम्मुख आने वाली ह्रासमान सीमांत उत्पादकता कितनी धीमी है। चर θ "जाइंट शोल्डर्स" प्रभाव से जुड़ी एक धनात्मक बाह्यता निरूपित करता है।

बोध प्रश्न 3

1) उत्पादन प्रति श्रमिक की स्थिरावस्था वृद्धि दर A की स्थिरावस्था वृद्धि दर के बराबर होती है, यथा $g_Y = g_K = g_A$
2) इस मॉडल में उत्पादन प्रति श्रमिक की दीर्घावधि वृद्धि दर धनात्मक रूप से तीन कारकों पर निर्भर करती है – प्राचल λ पर, "स्टैंडिंग ऑन शोल्डर्स" प्रभाव, θ पर और श्रमिक संख्या की वृद्धि दर, n पर।
3) पाठ में समीकरण (3.31) से (3.47) तक देखें।
4) अनुसंधान को समर्पित जनसंख्या के अंश में कोई भी स्थायी वृद्धि प्रौद्योगिकी पर केवल एक स्तर प्रभाव दर्शाएगी। फिर R&D में स्थायी वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रौद्योगिकी का स्तर स्थायी रूप से ऊँचा हो जाता है। इस मॉडल की दीर्घावधि विकास दर अस्थायी रूप से बढ़ने के बाद संतुलित विकास पथ पर लौट जाती है।

इकाई 4 व्यवसाय चक्र*

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 विषय–प्रवेश

4.2 व्यापार चक्र के अभिलक्षण

4.3 व्यापार चक्र के सोपान

4.3.1 विस्तार सोपान

4.3.2 संकुचन सोपान

4.4 व्यापार चक्र की पहचान

4.5 व्यापार चक्र के संसूचक

4.5.1 अग्रणी संसूचक

4.5.2 पश्चायित संसूचक

4.5.3 सम्पाती संसूचक

4.6 व्यापार चक्र के सिद्धांत

4.6.1 व्यापार चक्र का केन्जियन सिद्धांत

4.6.2 व्यापार चक्र संबंधी शुम्पीटर का नवप्रवर्तन सिद्धांत

4.6.3 व्यापार चक्र संबंधी सैम्युल्सन का मॉडल : गुणक एवं त्वरक के बीच अंतर्क्रिया

4.6.4 यथार्थ व्यापार चक्र सिद्धांत

4.7 सार–संक्षेप

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि–

- व्यापार चक्र की संकल्पना एवं अभिलक्षण स्पष्ट कर सकें;
- व्यापार चक्र के विभिन्न सोपानों की पहचान कर सकें;
- उस सैद्धांतिक प्राधार को निश्चित कर सकें जो व्यापार चक्र के अस्तित्व को स्पष्ट करे;
- व्यापार चक्र के समर्थक मौद्रिक एवं वास्तविक कारकों के बीच अंतर कर सकें; तथा
- अग्रणी, पश्चायित एवं आकस्मिक संसूचकों के बीच अंतर स्पष्ट कर सकें।

4.1 विषय–प्रवेश

विगत दो शताब्दियों के दौरान अनेक विकसित अर्थव्यवस्थाओं द्वारा अनुभूत तीव्र आर्थिक संवृद्धि कोई निर्बाध नहीं रही। इन देशों के जीडीपी स्तरों में नियत कालिक उतार–चढ़ाव होते रहे हैं। उत्पादन के साथ–साथ आय, नियोजन एवं मूल्य जैसे विभिन्न समाहारों व उनके दीर्घावधि रुझानों में भी घट–बढ़ देखी गई। इन अर्थव्यवस्थाओं ने उत्पादन व अन्य आर्थिक समाहारों में विकल्प रूप से विस्तार एवं संकुचन के दौर देखे हैं। ऊर्ध्वगमन और अधोगमन के यही प्रत्यावर्ती सोपान व्यापार चक्र कहलाते हैं।

---

*डॉ० आर्ची भाटिया, सह–आचार्य, हिमाचल प्रदेश केन्द्रिय विश्वविद्यालय, धर्मशाला।

व्यापार चक्रों की सैद्धांतिक व्याख्याएँ 20वीं सदी के पूर्वार्ध में विकसित हुईं। किसी भी अर्थव्यवस्था में विस्तार एवं संकुचन की अवधियाँ नियमितता का विलक्षण अंश दर्शाती थीं। इन सोपानों के अभिलक्षणों का प्रलेखन वैसली मिशेल, साइमन कुज्नेत्स एवं फ्रेड्रिक मिल्स जैसे अर्थशास्त्रियों द्वारा बड़ी ही सावधानीपूर्वक किया गया। मिशेल ने इन चक्रों से जुड़े चरों के सहगमन का प्रलेखन किया; विस्तार एवं संकुचन विषयक कीमतों और मात्राओं के सहगमन का प्रलेखन किया; जबकि कुज्नेत्स ने संवृद्धि एवं उतार–चढ़ाव दोनों के प्रतिमानों का अध्ययन किया। उन्नीस सौ तीस का दशक व्यापार–चक्र अनुसंधान का एक बेहद सक्रिय काल रहा, जिस दौरान राष्ट्रीय आर्थिक अनुसंधान ब्यूरो (NBER) ने व्यापार चक्रों के आनुभविक प्रलेखन का कार्यक्रम (मिल एवं मिशेल द्वारा आरंभ) जारी रखा। बहरहाल, केन्स के 'जनरल थ्योरी' के प्रकाशन उपरांत व्यापार चक्रों में रुचि घटने लगी जो कि व्यापार चक्रों से ध्यान भटकाकर अर्थव्यवस्था के अल्पावधि प्रबंधन की ओर ले गयी। 'सत्तर के दशक में, उस वक्त व्यापार चक्रों में रुचि एक बार फिर जागी जब अनेक देशों में व्याप्त आर्थिक संकट को केन्जियन मॉडल से समझाया जा न सका।

इस इकाई में, हम सर्वप्रथम व्यापार चक्रों के अभिलक्षणों और व्यापार चक्रों के विभिन्न सोपानों पर प्रकाश डालेंगे। आगे हम इस बात पर सावधानीपूर्वक विचार करेंगे कि व्यापार चक्रों की पहचान कैसे की जाए और विभिन्न आर्थिक शृंखलाओं का प्रयोग कर अर्थव्यवस्था की औसत स्थिति कैसे ज्ञात की जाए। तदंतर, हम व्यापार चक्रों के महत्वपूर्ण सैद्धांतिक प्राधारों को स्पष्ट करेंगे।

4.2 व्यापार चक्रों के अभिलक्षण

व्यापार चक्र अन्य चरों के साथ–साथ उत्पादन, बेकारी, कीमतों, राजस्व, लाभ, एवं ब्याज दरों में भी अर्थव्यवस्था–व्यापी उतार–चढ़ाव दर्शाते हैं। ये उतार–चढ़ाव समग्र अर्थव्यवस्था में और अनेक वर्षों तक नजर आते रहते हैं। किसी भी अर्थव्यवस्था में उतार–चढ़ाव तो होते ही रहते हैं। व्यापार चक्र, बहरहाल, ऐसे उतार–चढ़ावों के संदर्भ में नहीं होते जो किसी अर्थव्यवस्था के भीतर किसी एक भौगोलिक क्षेत्र अथवा उद्योग विशेष में दृष्टिगत होते हों। व्यापार चक्रों को पहचानने के लिए हमें उन कारकों पर दृष्टिपात करना होगा जो समग्र अर्थव्यवस्था पर कोई प्रभाव डाल सकते हों।

व्यापार चक्रों में नियोजन, उत्पादन, वास्तविक आय, एवं यथार्थ बिक्री समेत अनेक विस्तार एवं संकुचन के पुनरावर्तक एकान्तर दौर आते हैं। व्यापार चक्रों में बहुआयामी प्रक्रियाएँ शामिल होती हैं, जहाँ मात्राएँ व कीमतें, निचय एवं प्रवाह, उत्पादन एवं निवेश के साथ–साथ वास्तविक, मौद्रिक एवं वित्तीय चर भी एक साथ मिलकर चलते हैं। ये इस अर्थ में असंयमित होते हैं कि विस्तार आकार एवं अवधि में संकुचनों से अभिलक्षणापूर्वक परे निकल जाते हैं। व्यापार चक्रों को अन्य उतार–चढ़ावों से भिन्न माना जा सकता है कि प्रायः वृहत्तर, दीर्घतर, और व्यापकतः विसरित होते हैं।

व्यापार चक्रों के प्रमुख अभिलक्षण निम्नवत् होते हैं –

1) यद्यपि व्यापार चक्र एक–सी नियमितता नहीं दर्शाते, इनमें कुछ विशिष्ट सोपान नजर आते हैं, जैसे– विस्तार, चरमोत्कर्ष, प्रतिसरण, गर्त और समुत्थान। चक्र की अवधि दो से लेकर 12 वर्ष तक कुछ भी हो सकती है।

2) व्यापार चक्र समकालिक होते हैं। अर्थव्यवस्था के अधिकतर उद्योगों एवं क्षेत्रों में मंदी अथवा संकुचन एक साथ ही घटित होते हैं। मंदी एक उद्योग से दूसरे उद्योग में पहुँच जाती है और शृंखला प्रतिक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि पूरी अर्थव्यवस्था

मंदी की गिरफ्त में नहीं आ जाती। इसी प्रकार, विस्तार उद्योगों अथवा क्षेत्रों के बीच विभिन्न अनुबंधनों के सहारे आगे बढ़ता है।

3) उतार–चढ़ाव उत्पादन के साथ–साथ नियोजन, निवेश, उपभोग, आदि के स्तर में भी सहकालिक रूप से ही होते हैं।

4) टिकाऊ वस्तुओं का उपभोग एवं निवेश अधिकांशतः चक्रीय उतार–चढ़ावों से ही प्रभावित होते हैं। जैसा कि केन्स ने जोर देकर कहा है, निवेश बड़ा ही अस्थिर होता है क्योंकि वह निजी उद्यमियों लाभापेक्षाओं पर निर्भर करता है। इन अपेक्षाओं में कोई भी बदलाव निवेश को अस्थिर कर देता है। तदनुसार, टिकाऊ कुटुंब प्रभावों की स्थिति में घट–बढ़ की विस्तीर्णता जीडीपी प्रभावों की स्थिति में घट–बढ़ की विस्तीर्णता से कहीं अधिक होती है।

5) व्यापार चक्रों के विभिन्न सोपानों में गैर–टिकाऊ वस्तुओं एवं सेवाओं का उपभोग बहुत अधिक भिन्नता नहीं दर्शाता। व्यापार चक्रों के विगत आँकड़े दर्शाते हैं कि परिवार गैर–टिकाऊ वस्तुओं के उपभोग में अतीव स्थिरता रखते हैं। तदनुसार, गैर–टिकाऊ वस्तुओं के उपभोग में घट–बढ़ की विस्तीर्णता जीडीपी में घट–बढ़ की विस्तीर्णता से कहीं अधिक होती है।

6) व्यापार मंदी अथवा विस्तार का तत्काल प्रभाव वस्तुओं की माल–सूचियों पर देखा जाता है। जब मंदी आती है तो माल–सूचियों में संचय वांछित स्तर से कहीं ऊपर चला जाता है। इससे माल के उत्पादन में कटौती करनी पड़ती है। इसके विपरीत, जब समुत्थान प्रारंभ होता है तो माल–सूचियाँ वांछित स्तर से नीचे आ जाती हैं। इससे व्यापार गृह पहले से अधिक माल की माँग करने लगते हैं जो कि उत्पादन में उछाल लाकर निवेश को बढ़ावा देता है।

7) लाभ में उतार–चढ़ाव किसी भी अन्य प्रकार की आय की अपेक्षा अधिक होते हैं क्योंकि व्यापार चक्रों की विद्यमानता व्यापारियों के लिए व्यापक अनिश्चितता की स्थिति पैदा कर देती है और उनके लिए आर्थिक दशाओं का पूर्वानुमान कर पाना कठिन हो जाता है। मंदी के दौरान, लाभ ऋणात्मक हो जाते हैं और अनेक व्यापारी तो दिवालिया भी हो जाते हैं।

8) व्यापार चक्र अपनी प्रकृति में अंतर्राष्ट्रीय होते हैं अर्थात् एक बार किसी देश में शुरू होने के बाद वे अपने संक्रामक प्रभाव से अन्य देशों में भी फैल जाते हैं। किसी एक देश के वित्त बाजार में अधोस्खलन, उदाहरण के लिए, दूसरे देश में तेजी से फैल जाता है क्योंकि वित्त बाजार पूँजी प्रवाहों के माध्यम से वैश्विक रूप से जुड़े होते हैं। इसके अलावा, किसी एक देश, माना अमेरिका, में मंदी दूसरे देश में फैल सकती है क्योंकि अमेरिका का आयात घट जाएगा। ऐसे देश जो अमेरिका के प्रमुख निर्यातकों में शामिल होंगे, अपने निर्यात में कमी देखेंगे और फिर उन्हें मंदी का सामना करना पड़ सकता है।

4.3 व्यापार चक्रों के सोपान

व्यापार चक्र एक अवधि में आर्थिक चरों के विस्तार और फिर अगली ही अवधि में उनके संकुचन से अभिलक्षित होते हैं। चित्र 4.1 में आप देखेंगे कि ऊर्ध्वमुखी प्रवण वक्र (विस्तार चरण) के साथ वृद्धि दर में गतिवर्धन है। इस वक्र का अधोमुखी प्रवण भाग 'संकुचन चरण' इंगित करता है।

इसी चित्र में, ऊर्ध्वमुखी प्रवण ऋजु रेखा जीडीपी का स्थिरावस्था वृद्धि पथ अथवा दीर्घावधि वृद्धि पथ इंगित करती है। वास्तविक जीडीपी व्यापार चक्रों के कारण ही स्थिरावस्था वृद्धि पथ के इर्दगिर्द घट–बढ़ दर्शाती है। कुछ अन्वेषकों के अनुसार, किसी भी व्यापार चक्र के चार सोपान होते हैं, यथा– विस्तार, प्रतिसरण, अवनमन और समुत्थान।

व्यापार चक्रों के ये चार सोपान भी उक्त चित्र में दर्शाए गए हैं। वस्तुतः, विस्तार सोपान में समुत्थान और विस्तार दोनों शामिल होते हैं। इसी प्रकार, संकुचन सोपान में प्रतिसरण और अवनमन दोनों शामिल होते हैं। आप देखेंगे कि प्रतिसरण और अवनमन के बीच अंतर मात्र एक अंश का है। प्रतिसरण अर्थात् मंदी के दौर में वृद्धि दर में अवमंदन ही नजर आता है जबकि अवनमन के दौर में, आर्थिक संवृद्धि अपने दीर्घावधि रुझान से नीचे ही रहती है और अर्थव्यवस्था में ऋणात्मक वृद्धि दर भी दिखाई पड़ सकती है।

इसी प्रकार, समुत्थान और विस्तार के बीच अंतर भी मात्र एक अंश और फैलाव का है। अपनी ऋणात्मक वृद्धि के पश्चात अर्थव्यवस्था समुत्थान अर्थात् प्रतिप्राप्ति के दौर से और फिर विस्तार या फैलाव के दौर से गुजरती है। वह बिंदु जहाँ विस्तार समाप्त होता है और प्रतिसरण आरंभ, व्यापार चक्र का 'चरमोत्कर्ष' कहलाता है। दूसरी ओर, वह बिंदु जहाँ अवनमन अर्थात् दबाव समाप्त हो जाता है और समुत्थान शुरू, 'गर्त' यानी खाई कहलाता है। तदनुसार, चरमोत्कर्ष और ही किसी भी व्यापार चक्र के 'संक्रांतिकाल' होते हैं।

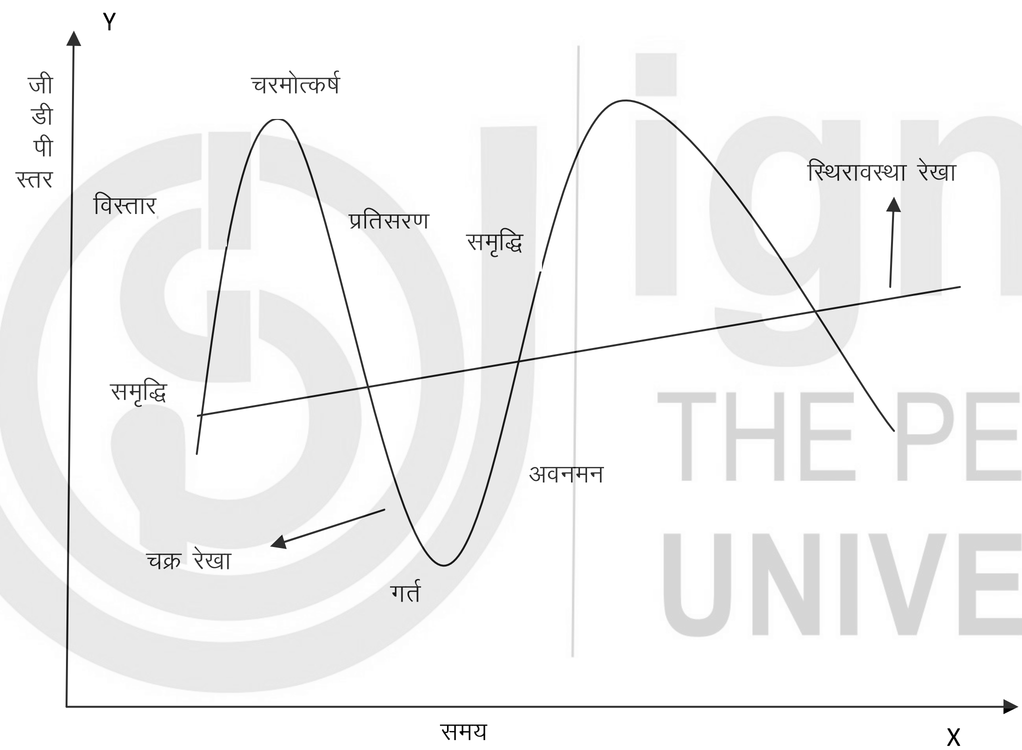

चित्र 4.1: किसी व्यापार चक्र के सोपान

4.3.1 विस्तार सोपान

व्यापार चक्र के विस्तार सोपान में, विभिन्न आर्थिक उपादानों में वृद्धि दिखाई पड़ती है, यथा – उत्पादन, नियोजन, प्रदा, वेतन, लाभ, उत्पादों की माँग व आपूर्ति, तथा बिक्री।

यह सोपान अनेक शक्तियों के फलस्वरूप शुरू हो सकता है, जिनमें शामिल हैं – वित्तीय संस्थाओं की पहले से अधिक ऋण देने की इच्छा और व्यापार गृहों की पहले से अधिक उधार लेने की इच्छा। इससे अर्थव्यवस्था में व्यापक आशावाद नजर आने लगता है। आर्थिक परिवेश अनुकूल होने तक यह दौर चलता ही रहता है।

विस्तार सोपान के दौरान, अर्थव्यवस्था प्राय इस अर्थ में अतितप्त हो जाती है कि उसमें अनेक निबाध और मतभेद जन्म ले लेते हैं। वेतन दर व कीमतें उत्पादन मात्रा के मुकाबले

कहीं तेजी से बढ़ती हैं जिससे उत्पादन लागत में अचानक वृद्धि हो जाती है और लाभ घट जाते हैं। ऐसे में केंद्रीय बैंक प्रतिबंधात्मक मौद्रिक नीति अपनाता है ताकि मुद्रास्फीति पर नियंत्रण बना रहे।

विस्तार सोपान में आर्थिक वृद्धि अंततः धीमी पड़कर फिर अपने चरमबिंदु पर पहुँचती है। किसी भी व्यापार चक्र के चरमोत्कर्ष पर, उत्पादन, लाभ, बिक्री और रोजगार जैसे आर्थिक चर ऊँचाई पर तो होते हैं मगर वे और गति नहीं बढ़ाते। निवेश मूल्यों में वृद्धि के कारण विभिन्न आदानों की माँग में क्रमिक ह्रास देखने में आता है। आगत मूल्यों में बढ़ोतरी उत्पादन मूल्यों में वृद्धि की ओर अग्रसर करती है जबकि लोगों की वास्तविक आय यथानुपात नहीं बढ़ती है। इससे उपभोक्तावर्ग अपने मासिक बजट में जोड़–तोड़ करने लगता है और उत्पादों, विशेषतः विलास–वस्तुओं एवं उपभोज्य टिकाऊ वस्तुओं, की माँग गिरने लगती है। चरमोत्कर्ष फुटकर बिक्री जैसे विभिन्न आर्थिक संसूचकों और रोजगारप्राप्त लोगों की संख्या घटने के पूर्व भी दिखाई पड़ता है। जब उत्पादों की माँग में गिरावट तेज और स्थिर हो जाती है तो प्रतिसरण की बारी आती है।

4.3.2 संकुचन सोपान

प्रतिसरण अर्थात् मंदी के दौर में, उत्पादन, मूल्य, बचत और निवेश जैसे सभी आर्थिक चर घटने लगते हैं। आमतौर पर, ह्रास शुरू होते समय, उत्पादनकर्ता अपने उत्पादों की माँग में गिरावट के प्रति जागरूक नहीं होते और माल व सेवाओं का उत्पादन करते ही रहते हैं। ऐसी स्थिति में, आपूर्ति माँग से अधिक हो जाती है और माल सूचियाँ बढ़ जाती हैं। कालांतर में, उत्पादनकर्ताओं को पता चलता है कि माल सूचियों का संचय, उत्पादन लागत में वृद्धि, और लाभ में कमी अनचाहे ही गले पड़े हैं। इस प्रकार की स्थिति सर्वप्रथम कुछ ही उद्योगों के समक्ष आती है और फिर वह धीरे–धीरे समस्त अर्थव्यवस्था को अपने चंगुल में ले लेती है। मंदी के दौर में, उत्पादनकर्ता प्रायः नये निवेश को टालते रहते हैं, जो उन्हें उत्पादन उपादानों की माँग में कमी, और फलतः आगत मूल्यों में गिरावट एवं बेरोजगारी की ओर ले जाता है। व्यापार प्रतिष्ठान अपना उत्पादन स्तर और अपने भुगतान रजिस्टर में दर्ज लोगों की संख्या घटा देते हैं। फिर शुरू होती है शृंखला प्रतिक्रिया – कमतर आय, कमतर माँग, कमतर पैदावार, कमतर रोजगार, इत्यादि। प्रतिसरण के प्रतिकूल प्रभाव पूर्णतः आर्थिक क्षेत्र को लाँघ जाते हैं और फिर समाज के ताने–बाने को भी क्षति पहुँचाते हैं। मंदी के दौर में सामाजिक असंतोष और अपराध सर उठाने लगते हैं।

यदि प्रतिसरण जारी रहता है तो आर्थिक वृद्धि दर ऋणात्मक भी हो सकती है। इस दौर को प्रायः 'अवनमन' की संज्ञा दी जाती है। अवनमन के दौरान मात्र वृद्धि दर में ही कमी नहीं आती बल्कि जीडीपी के पूर्ण स्तर में गिरावट भी देखी जाती है। जब बिक्री घट जाती है तो व्यापार गृहों को अपने ऋण चुकाना भारी लगने लगता है। साथ ही, जब लोगों में व्यापार भाव का इस कदर ह्रास हो जाए कि कोई नये निवेश को ही राजी न हो तो ऋण की माँग घटने लगती है। ऐसे में बैंक भी ऋण देने में सावधानी बरतने लगते हैं क्योंकि ऋण अदायगी पर वादा खिलाफी के अवसर बढ़ जाते हैं। कालान्तर में अर्थव्यवस्था, बहरहाल, अपनी वृद्धि दर फिर हासिल कर लेती है और उसके कुछ क्षेत्रों में आशा बँधती दिखाई देती है।

इससे मंदी का दौर अपने कदम वापस खींच लेता है और समुत्थान का दौर शुरू होता है। अब व्यक्ति एवं संस्थान निवेश, नियोजन व उत्पादन जैसे विभिन्न आर्थिक उपादानों के प्रति एक सकारात्मक रवैया अपनाने लगते हैं। इस समुत्थान के सोपान में, उपभोक्ता व्यय और उपभोज्य वस्तुओं की माँग में वृद्धि देखी जाती है। इससे व्यापार प्रतिष्ठानों को उत्पादन बढ़ाने, नये निवेश करने, पहले से अधिक श्रमिक काम पर रखने, आदि के लिए

प्रोत्साहन मिलता है। इसके अलावा, पुरानी बेकार पड़ी मशीनों को बदलने और विद्यमान पूँजी भंडार के अनुरक्षण की वजह से मंदी के दौर में कुछ निवेश देखा जा सकता है।

मूल्य स्तर किसी भी अर्थव्यवस्था के 'समुत्थान सोपान' में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैसा कि हमने ऊपर देखा, मंदी के दौर में, आगत मूल्यों में गिरावट उत्पाद मूल्यों में गिरावट से कहीं अधिक होती है। इससे उत्पादन लागत घटती है और लाभ में वृद्धि होती है। इसके विपरीत, 'समुत्थान सोपान' में, उत्पादनकर्ताओं द्वारा कुछ अवमूल्यित पूँजीगत वस्तुओं को बदल लिया जाता है और कुछ का रखरखाव कर उनके द्वारा कायम रखा जाता है। परिणामतः, संस्थानों द्वारा निवेश और नियोजन में वृद्धि देखने में आती है। जब यह प्रक्रिया गति पकड़ती है तो अर्थव्यवस्था फिर से विस्तार सोपान में प्रवेश कर जाती है। इस प्रकार, व्यापार चक्र पूरा हो जाता है।

बोध प्रश्न 1

1) व्यापार चक्र से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

....

2) व्यापार चक्र के महत्वपूर्ण अभिलक्षण बताइए।

....

....

....

....

....

....

3) व्यापार चक्र के विभिन्न सोपानों पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

4.4 व्यापार चक्र की पहचान

व्यापार चक्र के विभिन्न सोपानों को समझना नितांत आवश्यक है क्योंकि प्रति–चक्रीय उपाय करने में यही सरकार की मदद करेगा। इसमें किसी व्यापार चक्र के संक्रांतिकाल

की पहचान कर लिया जाना अपेक्षित होता है। अमेरिका में, नेशनल ब्यूरो ऑफ इकॉनमिक रिसर्च (NBER) व्यापार चक्र के संक्रांतिकाल की तिथियों की पहचान करने के लिए एक समर्पित अनुसंधान कार्यक्रम चलाता है। इसी प्रकार, सैंटर फॉर इकॉनमिक पॉलिसी रिसर्च (CEPR) की यूरो एरिया बिजनेस साइकिल डेटिंग कमेटी यूरो क्षेत्र के सदस्य देशों के प्रतिसरण एवं विस्तार संबंधी कालानुक्रम से तादात्म्य स्थापित करती है। भारत में भी विद्वानों द्वारा व्यापार चक्रों के कालानुक्रम की पहचान करने हेतु कुछ प्रयास किए गए हैं (देखें, उदाहरण के लिए, दुआ एवं बनर्जी (2000) तथा चित्रे (2001)),

उक्त संस्था (NBER) की बिजनेस साइकिल डेटिंग कमेटी अमेरिकी व्यापार चक्र का कालानुक्रम तैयार करती है। यह तैथिकी आर्थिक क्रियाकलाप में चरमोत्कर्षों और गर्तों की प्रत्यावर्ती तिथियाँ दर्शाती है। प्रतिसरण किसी चरमोत्कर्ष व गर्त के बीच की अवधि, और विस्तार किसी गर्त व चरमोत्कर्ष के बीच की अवधि को कहा जाता है। इस संस्था के अनुसार, प्रतिसरण समस्त अर्थव्यवस्था पर असर डालती आर्थिक क्रियाकलाप में आई किसी बड़ी गिरावट को कहा जाता है, जो कुछ महीनों से भी अधिक समय तक रहती है और सामान्यतः वास्तविक जीडीपी, वास्तविक आय, रोजगार, औद्योगिक उत्पादन एवं थोक–खुदरा बिक्रियों में साफ नजर आती है। इसी प्रकार, विस्तार के दौरान, आर्थिक क्रियाकलाप भरपूर तरक्की करता है, समस्त अर्थव्यवस्था में फैल जाता है, और प्रायः वर्षों चलता रहता है। तदनुसार, उक्त संस्था (NBER) का उपागम व्यापार चक्रों की पहचान बड़ी संख्या में आर्थिक समय शृंखलाओं के स्तरों में विस्तार एवं संकुचन के प्रत्यावर्ती सोपानों के पुनरावर्तक परिणामों के रूप में करता है। व्यापार चक्र की यह कारगर परिभाषा पचास से भी अधिक वर्षों से उक्त संस्था के प्रयोग में रही है, और वर्तमान में उसके द्वारा अमेरिकी व्यापार चक्र को पहचानने व दिनांकित करने के लिए अपनायी जा रही है। ये तिथियाँ सरकार, अन्वेषकों एवं व्यापार विश्लेषकों द्वारा व्यापक रूप से सकारी जाती हैं।

प्रतिसरण एवं विस्तार दोनों में ही, आर्थिक क्रियाकलाप में अल्पकालिक विपर्यय देखे जा सकते हैं – कभी प्रतिसरण में अनुगामी और अधिक गिरावट के साथ विस्तार की अल्पावधि शामिल हो सकती है तो कभी विस्तार में अनुगामी और अधिक वृद्धि के साथ संकुचन का कोई छोटा–सा दौर नजर आ सकता है। बिजनेस साइकिल डेटिंग कमेटी प्रतिसरण एवं विस्तार संबंधी उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर ही अपना निर्णय लेती है और इन उतार–चढ़ावों को निर्धारित करने के लिए कोई तयशुदा नियम बनाकर नहीं रखती।

उक्त कमेटी आर्थिक क्रियाकलाप की कोई पूर्व–निर्धारित परिभाषा लेकर नहीं चलती। वह वृहद क्रियाकलाप के विभिन्न मापदंडों के व्यवहार की गहरी छानबीन व तुलना करती है – उत्पाद एवं आय पक्षों पर मापित वास्तविक जीडीपी, अर्थव्यवस्था–व्यापी रोजगार, और वास्तविक आय। यह कमेटी ऐसे संसूचकों पर भी विचार कर सकती है जो समस्त अर्थव्यवस्था का प्रतिनिधित्व न करते हों, जैसे – वास्तविक बिक्री और फेडरल रिजर्व का औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (IIP).

तालिका **4.1:** अमेरिकी व्यापार चक्रों की दर पर **NBER** का कालानुक्रम

(अवधि माह संख्या में)

चरमोत्कर्ष मास	*गर्त मास*	*चरमोत्कर्ष मास संख्या*	*गर्त मास संख्या*	*अवधि, चरमोत्कर्ष से गर्त*	*अवधि, गर्त से चरमोत्कर्ष*	*अवधि, चरमोत्कर्ष से चरमोत्कर्ष*	*अवधि, गर्त से गर्त*
	दिसंबर 1854	---	660	---	---	---	---
जून 1857	दिसंबर 1858	690	708	18	30	---	48
अक्तूबर 1860	जून 1861	730	738	8	22	40	30
अप्रैल 1865	दिसंबर 1867	784	816	32	46	54	78
जून 1869	दिसंबर 1870	834	852	18	18	50	36
अक्तूबर 1873	मार्च 1879	886	951	65	34	52	99
मार्च 1882	मई 1885	987	1025	38	36	101	74
मार्च 1887	अप्रैल 1888	1047	1060	13	22	60	35
जुलाई 1890	अगस्त 1891	1087	1097	10	27	40	37
जनवरी 1893	जून 1894	1117	1134	17	20	30	37
दिसंबर 1895	जून 1897	1152	1170	18	18	35	36
जून 1899	दिसंबर 1900	1194	1212	18	24	42	42
सितंबर 1902	अगस्त 1904	1233	1256	23	21	39	44
मई 1907	जून 1908	1289	1302	13	33	56	46
जनवरी 1910	जनवरी 1912	1321	1345	24	19	32	43
जनवरी 1913	दिसंबर 1914	1357	1380	23	12	36	35
अगस्त 1918	मार्च 1919	1424	1431	7	44	67	51
जनवरी 1920	जुलाई 1921	1441	1459	18	10	17	28
मई 1923	जुलाई 1924	1481	1495	14	22	40	36
अक्तूबर 1926	नवंबर 1927	1522	1535	13	27	41	40
अगस्त 1929	मार्च 1933	1556	1599	43	21	34	64
मई 1937	जून 1938	1649	1662	13	50	93	63
फरवरी 1945	अक्तूबर 1945	1742	1750	8	80	93	88
नवंबर 1948	अक्तूबर 1949	1787	1798	11	37	45	48

जुलाई 1953	मई 1954	1843	1853	10	45	56	55
अगस्त 1957	अप्रैल 1958	1892	1900	8	39	49	47
अप्रैल 1960	फरवरी 1961	1924	1934	10	24	32	34
दिसंबर 1969	नवंबर 1970	2040	2051	11	106	116	117
नवंबर 1973	मार्च 1975	2087	2103	16	36	47	52
जनवरी 1980	जुलाई 1980	2161	2167	6	58	74	64
जुलाई 1981	नवंबर 1982	2179	2195	16	12	18	28
जुलाई 1990	मार्च 1991	2287	2295	8	92	108	100
मार्च 2001	नवंबर 2001	2415	2423	8	120	128	128
दिसंबर 2007	जून 2009	2496	2514	18	73	81	91
फरवरी 2020	---	---	---	---	128	146	---

ऊपर दी गई तालिका से यह देखा जा सकता है कि किसी भी चक्र की अवधि अपरिवर्ती नहीं होती (गर्त से गर्त अथवा चरमोत्कर्ष से चरमोत्कर्ष पर ध्यान दें)। दूसरे, चरमोत्कर्ष से गर्त की अवधि (संकुचन सोपान) गर्त से चरमोत्कर्ष की अवधि (विस्तार सोपान) की अपेक्षा छोटी ही रही है।

4.5 व्यापार चक्र संसूचक

जैसा कि आपको विदित ही है, समष्टि–अर्थशास्त्रीय नीति का एक प्रमुख उद्देश्य आर्थिक संवृद्धि और मूल्य स्तर में स्थिरता कायम रखना होता है। केंद्रीय बैंक की जिम्मेदारी का एक अहम भाग, इसीलिए, वर्तमान और, यदि संभव हो तो भावी भी, आर्थिक दशाओं से जुड़ी जानकारी एकत्र करना होता है। जीडीपी, विक्रय, निवेश, शेयर भाव, आदि आर्थिक शृंखलाओं का प्रयोग कर वर्तमान व्यापार गतिविधियों का मूल्यांकन करने संबंधी सैद्धांतिक संकल्पना कहीं अधिक सरल है हालाँकि उसका व्यावहारिक अनुप्रयोग कठिन है। आमतौर पर, इन घट–बढ़ वाली आर्थिक शृंखलाओं का समय प्रतिमान विविधता दर्शाता है। जहाँ कुछ आर्थिक शृंखलाएँ किसी ज्ञात समय–बिंदु पर विस्तारित होती दिखाई पड़ती हैं, वहीं अन्य अपने संक्रांति–बिंदु (चरमोत्कर्ष) पर पहले ही पहुँच चुकी हैं जबकि कुछ ऐसी भी हैं जो अधोगमन कर रही हैं; कुछ आर्थिक कार्यकलाप तो और निचले संक्रांति–बिंदु (गर्त) में भी नजर आ सकते हैं। तदनुसार, प्रश्न यह उठता है कि इन आर्थिक चरों का प्रयोग कर अर्थव्यवस्था की समग्र स्थिति का मूल्यांकन कैसे किया जाए क्योंकि ये तो नानाविध रुझान दर्शाते हैं।

आर्थिक संसूचकों की संकल्पना मूल रूप से 1930 के दशक में डब्ल्यू.सी. मिशेल एवं ए. एफ. बर्नस् द्वारा उक्त संस्था (NBER) में ही की गई। इस उपागम में उन आर्थिक चरों का अवलोकन किए जाने की आवश्यकता होती है जो चक्रीय परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील लगते हों, उनका कारण भले ही जो हो। इस संदर्भ में तीन परिदृश्य देखे जा सकते हैं – (i) कुछ आर्थिक चर व्यापार चक्र के आगे–आगे चलते हैं (ये व्यापार चक्र का नेतृत्व' करते हैं), (ii) कुछ अन्य आर्थिक चर व्यापार चक्र से पिछड़ कर चलते हैं (इन चरों में संक्रांति–बिंदु उस 'पिछड़ेपन' के साथ बाद में ही दिखाई देते हैं), और (iii) कुछ और

आर्थिक चर ऐसे भी होते हैं जो व्यापार चक्र के 'सम्पाती' होते हैं। बर्नस् और मिशेल ने यह पता लगाने के लिए लगभग 487 चरों के एक समूह का अध्ययन किया कि क्या इन चरों में संक्रांति–बिंदुओं ने निरंतर नेतृत्व किया, ये सम्पाती रहे, अथवा ये अमेरिकी व्यापार चक्र में दृष्टिगत संक्रांति–बिंदुओं से पिछड़े ही रहे। संदर्भ उद्धरणों से संबंधित औसत नेतृत्व अथवा पिछड़ेपन के अनुसार 71 शृंखलाएँ चुनकर व्यवस्थित की गईं। उदाहरण के लिए, छह समय शृंखलाओं में कोई औसत नेतृत्व अथवा पिछड़ापन नहीं देखा गया। औसत रूप से, अग्रणी शृंखलाएँ एक से लेकर दस माह तक संदर्भ उद्धरणों से आगे थीं जबकि पिछड़ी शृंखलाएँ औसतन एक से लेकर 12 माह तक पीछे थीं।

बिजनेस साइकिल इंडीकेटर्स हैंडबुक 2020 के अनुसार, किसी भी व्यापार चक्र संसूचक को निम्नलिखित कसौटियों पर खरा उतरना चाहिए –

(i) *अनुरूपता* : शृंखला व्यापार चक्रों के एकदम अनुरूप होनी चाहिए;

(ii) *सुसंगत कालमापन* : शृंखला किसी अग्रणी, सम्पाती अथवा पिछड़े संसूचक के रूप में कालान्तर में कोई सुसंगत कालमापन प्रतिमान ही दर्शाती हो;

(iii) *आर्थिक महत्व* : शृंखला का चक्रीय कालमापन अर्थशास्त्रीय रूप से तर्कसंगत हो;

(iv) *सांख्यिकीय उपयुक्तता* : चर विषयक आँकड़े किसी सांख्यिकीय रूप से विश्वसनीय विधि से ही एकत्र एवं संसाधित किए गए हों;

(v) *निर्बाधता* : चरों में मास–दर–मास गतिविधियाँ अति अनियमित न हों; और

(vi) *प्रचलन* : चर विषयक आँकड़े किसी तर्कसंगत तत्काल समय–सारणी पर उपलब्ध हों।

यहाँ ऐसी शृंखलाओं का चयन किया जाता है जो व्यापार चक्रों में दृष्टिगत चरमोत्कर्षों एवं गर्तों पर कालमापन में सदृश हों। व्यापार चक्र संसूचकों को तीन समूहों में वर्गीकृत किया जाता है, यथा – अग्रणी संसूचक, सम्पातीप्राय संसूचक तथा पश्चायित संसूचक।

4.5.1 अग्रणी संसूचक

अग्रणी आर्थिक संसूचक हमें यह पता लगाने में मददगार साबित होते हैं कि अर्थव्यवस्था कहाँ जा रही है। ये जो होने वाला है उसका पूर्वाभास करा देते हैं, यथा ऐसा संक्रांति–बिंदु जो वस्तुतः अभी सामने आया ही नहीं है।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण अग्रणी संसूचकों में एक है – शेयर बाजार स्वयं, जो किसी सूचकांक से आँका जाता है, जैसे – एस एंड पी 500. यह आर्थिक परिवेश अनुकूल नजर आने से पहले ही बढ़ना शुरू हो जाता है, और आर्थिक दशाओं के निश्चयपूर्वक कुछ कहने से पूर्व ही गिरना शुरू। एक अन्य महत्वपूर्ण अग्रणी संसूचक है – ब्याज दरें। निम्न ब्याज दर ऋणादान और खरीददारी में तेजी ला देती है, जो कि अर्थव्यवस्था के हित में होता है। ब्याज दरों में कोई भी वृद्धि दर्शाती है कि अर्थव्यवस्था अच्छी चल रही है, परन्तु अंततोगत्वा बढ़ती ब्याज दरें मंदी की ओर ले जाती हैं क्योंकि नयी परियोजनाएँ शुरू करने के लिए धन उधार लेने वालों की संख्या कम ही रहती है।

4.5.2 पश्चायित संसूचक

अग्रणी संसूचकों से भिन्न, पश्चायित अर्थात् पिछड़े संसूचक अर्थव्यवस्था बदल जाने के बाद ही सामने आते हैं। यद्यपि ये प्रतीकात्मक ढंग से यह नहीं बताते कि अर्थव्यवस्था कहाँ जा रही है, ये इस बात का संकेत अवश्य करते हैं कि कालान्तर में अर्थव्यवस्था कैसे बदलती है, और इस प्रकार दीर्घावधि रुझान देख पाने में मददगार साबित होते हैं। पश्चायित आर्थिक संसूचक अर्थव्यवस्था विषयक अतीत से अवगत कराते हैं। सकल घरेलू

उत्पाद (GDP) यह दर्शाता है कि कोई देश कितना उत्पादन कर रहा है। आँकड़े एकत्र किए जाने और उन्हें जारी किए जाने के बीच महत्वपूर्ण विलंब काल होता है, और वह भी एक महत्वपूर्ण संसूचक होता है। अनेक विद्वानों के अनुसार, यदि दो त्रिमास लगातार गिरते जीडीपी के साक्षी होते हैं तो प्रतिसरण के आसार होते हैं। अन्य संसूचक, जैसे उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI), भी प्रायः पश्चायित संसूचक माने जाते हैं क्योंकि ये ऐसी जानकारी देते हैं जो अधिकांश उपभोक्ताओं के पास पहले से ही होती है।

4.5.3 सम्पाती संसूचक

सम्पाती संसूचक सामान्य आर्थिक दशाओं में सहकालिक रूप से बदल (कमोबेश) जाते हैं और इसीलिए अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति दर्शाते हैं। ये उपभोक्ताओं, व्यापार अग्रणियों एवं नीति–निर्माताओं को इस विषय में जानकारी देते हैं कि वर्तमान में, ठीक अभी, अर्थव्यवस्था कहाँ है। यदि अर्थव्यवस्था में आज सुधार आया है तो सम्पाती संसूचक आज ही वृद्धि दर्शाएँगे। इसी प्रकार, यदि अर्थव्यवस्था में आज गिरावट आती है तो सम्पाती संसूचक आज ही ह्रास दर्शाएँगे। सम्पाती संसूचकों के प्रतिनिधिक उदाहरण हैं – औद्योगिक उत्पादन अथवा व्यापार की मात्रा। तालिका 4.2 व्यापार चक्र संसूचकों की एक विस्तृत सूची प्रस्तुत करती है।

तालिका 4.2: व्यापार चक्र संसूचक

अग्रणी	सम्पातीप्राय	पश्चायित
	I. नियत पूँजी एवं माल–सूचियों में निवेश	
नये भवन में संभव; आवासन आरंभ; आवासीय नियत निवेश; नव व्यापार रचना; नव पूँजी विनियोजन; संयंत्र एवं उपस्कर हेतु संविदाएँ एवं कार्यादेश; व्यापार माल–सूचियों में परिवर्तन	व्यापार उपस्कर का कार्य–प्रदर्शन; यंत्र–समूह एवं उपस्कर बिक्री	पूँजी विनियोजन संबंधी कार्य संचय; नये संयंत्र एवं उपस्कर हेतु व्यापार व्यय; व्यापार माल–सूचियाँ
	II. उपभोग, व्यापार, कार्यादेश, एवं वितरित माल	
उपभोज्य वस्तुओं एवं सामग्रियों हेतु नये कार्यादेश; टिकाऊ वस्तुओं के अनापूर्तित कार्यादेशों में परिवर्तन; विक्रेता कार्य–प्रदर्शन (निकासी की गति); उपभोक्ता मनोभाव का सूचकांक	उपभोज्य वस्तुओं का उत्पादन; व्यापार बिक्री	
	III. नियोजन, उत्पादन, एवं आय	
औसत कार्य–सप्ताह; अधिकाल घंटे; अभिगमन दर; कामबंदी दर; नये बेकारी बीमा दावे; उत्पादकता (उत्पादन प्रति घंटा); क्षमता–उपयोग दर	गैर–कृषि रोजगार; बेरोजगारी दर; जीडीपी; व्यक्तिगत आय; औद्योगिक उत्पादन	बेरोजगारी की औसत अवधि; दीर्घावधि बेरोजगारी
	IV. मूल्य, लागत, एवं लाभ	
ऋणपत्र मूल्य; शेयर भाव; संवेदनशील सामग्री मूल्य; लाभ की गुंजाइश; कुल निगमित लाभ; निवल नकद प्रवाह		इकाई श्रम लागत; राष्ट्रीय आय में श्रमिकांश

V. मुद्रा, ऋण, एवं ब्याज		
मौद्रिक वृद्धि दरें; तरल परिसंपत्तियों में बदलाव; उपभोक्ता ऋण में बदलाव; कुल निजी ऋणादान; वास्तविक धनापूर्ति	मुद्रा का वेग	अल्पावधि ब्याज दरें; ऋणपत्रों से आय; उपभोक्ता ऋण बकाया; वाणिज्यिक एवं औद्योगिक ऋण बकाया
नोट : तथ्यों का चयन ब्यूरो ऑफ इकॉनमिक एनालिसिस, अमेरिकी वाणिज्य विभाग द्वारा जारी एक मासिक रिपोर्ट *बिजनेस कंडीशन्स डाइजेस्ट* में प्रकाशित अमेरिकी संसूचकों पर आधारित है।		

बोध प्रश्न 2

1) वे कौन–से मापदंड हैं जो किसी व्यापार चक्र संसूचक के चयन हेतु आधार प्रदान करते हैं?

....

....

....

....

....

2) किसी पश्चायित संसूचक का क्या महत्व होता है?

....

....

....

....

....

4.6 व्यापार चक्र के सिद्धांत

हमने ऊपर व्यापार चक्रों के विभिन्न सोपानों एवं सामान्य अभिलक्षणों पर विस्तृत चर्चा की। अब एक अहम सवाल यह सामने आता है कि व्यापार चक्र चलते किस वजह से हैं। इस संदर्भ में, व्यापार चक्रों के अनेक सिद्धांत समय–समय पर प्रतिपादित किए जाते रहे हैं। इनमें से प्रत्येक सिद्धांत व्यापार चक्रों को जन्म देने वाले भिन्न–भिन्न कारकों की व्याख्या करता है।

4.6.1 व्यापार चक्र का केन्जियन सिद्धांत

जे.एम. केन्स ने अपनी प्रारंभिक पुस्तक 'जनरल थ्योरी ऑफ इंप्लॉयमेंट, इंट्रेस्ट एंड मनी' में व्यापार चक्रों के कारणों से जुड़े विश्लेषण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। लेखक के अनुसार, कुल प्रभावी माँग के स्तर में परिवर्तन आय के स्तर में उतार–चढ़ाव पैदा करते हैं। इस कुल माँग में उपभोज्य वस्तुओं की माँग के साथ–साथ निवेश वस्तुओं की माँग भी शामिल होती है। केन्स के अनुसार, उपभोग करने की प्रवृत्ति अल्पावधि में अपेक्षाकृत अधिक अथवा कम स्थायी होती है। निजी निवेश, बहरहाल, अर्थव्यवस्था विषयक लाभ हेतुक एवं व्यापार प्रत्याशाओं पर निर्भर करता है। तदनुसार, कुल माँग में घट–बढ़ मुख्यतः निवेश माँग में उतार–चढ़ावों पर आश्रित होती है। निवेश में किसी कटौती अथवा बढ़ोतरी के पश्चात आय में आवर्धित परिवर्तन लाने में गुणक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

केन्जियन सिद्धांत, बहरहाल, व्यापार चक्र के संचयी लक्षण की व्याख्या नहीं कर पाता। उदाहरण के लिए, माना कि निवेश रु. 100 तक बढ़ता है और गुणक का विस्तार 4 है। गुणक के सिद्धांत से, हमें ज्ञात है कि राष्ट्रीय आय रु. 400 तक बढ़ेगी और यदि गुणक एकमात्र कार्यबल हुआ तो प्रकरण यहाँ समाप्त हो जाता है, जहाँ अर्थव्यवस्था राष्ट्रीय आय के एक उच्चतर स्तर पर एक नयी स्थिर साम्यावस्था में पहुँच चुकी होगी। परंतु यथार्थ जीवन में, ऐसा होना संभव नहीं है क्योंकि निवेश में किसी ज्ञात वृद्धि द्वारा उत्पन्न आय वृद्धि अर्थव्यवस्था में दुष्परिणामों को बढ़ाएगी ही। यह प्रतिक्रिया 'प्रिंसिपल ऑफ एक्सिलरेटर' अर्थात् त्वरण के सिद्धांत में वर्णित है (त्वरण निवेश पर आय के प्रभाव को कहा जाता है)। सैम्युल्सन ने त्वरण सिद्धांत को गुणक से जोड़ा और दर्शाया कि इन दोनों के बीच अंतर्क्रिया आर्थिक क्रियाकलाप में चक्रीय उतार–चढ़ाव ला सकती है।

4.6.2 व्यापार चक्र संबंधी शुम्पीटर का नवप्रवर्तन सिद्धांत

जोसफ शुम्पीटर ने व्यापार चक्रों को किसी प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था में उद्यमियों की नवाचार गतिविधि का परिणाम माना। उसने अर्थव्यवस्था की साम्य अवस्था को आर्थिक क्रियाकलाप का एक ऐसा 'वर्तुल प्रवाह' बताया जो अवधि दर अवधि स्वयं को बस दोहराता ही रहता है। आर्थिक क्रियाकलाप का यह वर्तुल प्रवाह उस वक्त बाधित हो जाता है जब कोई उद्यमी कोई नवप्रवर्तन सफलतापूर्वक संपन्न कर लेता है। शुम्पीटर के अनुसार, किसी उद्यमी का प्रमुख कार्य ऐसा नवप्रवर्तन कार्य करना ही होता है जो उसे वास्तविक 'लाभ' प्रदान करे।

उक्त अर्थशास्त्री के अनुसार, किसी प्रमुख नवप्रवर्तन का पदार्पण व्यापार चक्र को जन्म देता है। जब नवप्रवर्तन–उद्यमी अन्य उद्योगों से संसाधन आमंत्रित करते हैं तो मौद्रिक आय बढ़ती है और कीमतें बढ़ना शुरू हो जाती हैं, जिससे निवेश को और अधिक प्रोत्साहन मिलता है। जब यह नवप्रवर्तन उत्पादन बढ़ा देता है तो अर्थव्यवस्था में वर्तुल प्रवाह में वृद्धि होती है। इससे आपूर्ति माँग से अधिक हो जाती है और आरंभिक साम्यावस्था में विघ्न पड़ता है। तब आर्थिक क्रियाकलाप के विस्तार की लहर चलती है। शुम्पीटर इसको ''प्राथमिक लहर'' की संज्ञा देते हैं। इस प्राथमिक लहर के बाद विस्तार की ''द्वितीयक लहर'' चलती है। ऐसा प्रतिस्पर्धियों पर मूल नवप्रवर्तन के प्रभाव से होता है। यदि आप इस नवप्रवर्तन को इंटरनेट, मोबाइल फोन व ऑनलाइन लेन–देन जैसे किसी यथार्थ जीवन के उदाहरण से जोड़कर देखें तो इसके प्रभाव की कल्पना कर पाएँगे।

चूँकि मूल नवप्रवर्तन लाभदायक सिद्ध होता है, अन्य उद्यमी अत्यंत उत्साहपूर्वक इसे भारी संख्या में अपनाते हैं। किसी एक क्षेत्र में नवप्रवर्तन अन्य संबद्ध क्षेत्रों में नवप्रवर्तनों को प्रेरित करता है। इससे मौद्रिक आय एवं कीमतों में वृद्धि होती है। जब इन उद्योगों में प्रच्छन्न लाभ बढ़ता है तो विस्तार की लहर समग्र अर्थव्यवस्था में चल पड़ती है।

समृद्धि की उक्त अवधि पुराने उत्पादों के स्थान पर नवप्रवर्तनों की लहरों से प्रेरित 'नये' उत्पाद आ जाने के साथ ही समाप्त हो जाती है। चूँकि अब पुराने उत्पादों की माँग घट जाती है, उनके दाम गिर जाते हैं और परिणामस्वरूप, उनकी उत्पादक–फर्में अपना उत्पादन घटाने को बाध्य हो जाती हैं। जब नवप्रवर्तक अपने बैंक ऋण अपनी नयी कमाई से चुकाना शुरू करते हैं तो संचलनार्थ धन की मात्रा घट जाती है, जिसके फलस्वरूप दाम गिर जाते हैं और लाभ कम हो जाता है। ऐसे परिवेश में, अनिश्चितता और जोखिम दोनों बढ़ते हैं। तब मंदी अपने कदम बढ़ाने लगती है। प्रतिसरण की स्थिति में कोई अर्थव्यवस्था लंबे समय तक नहीं रह सकती। उद्यमीवर्ग लाभप्रद नवप्रवर्तनों की खोज में लगा ही रहता है। समुत्थान की नैसर्गिक शक्तियाँ पुनरुत्थान का रास्ता खोल देती हैं।

4.6.3 व्यापार चक्र संबंधी सैम्युल्सन का मॉडल : गुणक एवं त्वरक के बीच अंतर्क्रिया

सैम्युल्सन ने अपने शुरुआती शोधपत्र में विश्वासोत्पादक तरीके से दर्शाया कि निवेश स्तर में कोई भी स्वायत्त वृद्धि गुणक के मान पर निर्भर करते हुए एक आवर्धित राशि तक आय बढ़ा देती है। यह आय वृद्धि त्वरण प्रभाव के माध्यम से निवेश में वृद्धि ला देती है। आय में वृद्धि माल एवं सेवाओं की कुल माँग में भी उछाल ले आती है। पहले से अधिक माल बनाने के लिए हमें अपेक्षाकृत अधिक पूँजीगत वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, जिसके लिए अतिरिक्त निवेश का भार वहन किया जाता है। तदनुसार, निवेश और आय के बीच संबंध परस्पर अंतर्क्रिया का है; निवेश आय को प्रभावित करता है, जो बदले में निवेश माँग को प्रभावित करता है और इस प्रक्रिया में आय व रोजगार एक चक्रीय रीति से घटते–बढ़ते हैं।

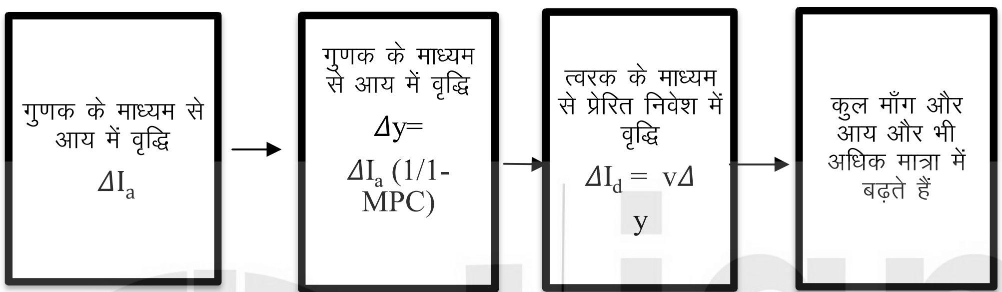

चित्र 4.2 दर्शाता है कि केन्जियन गुणक के साथ जोड़ दिए जाने पर आय एवं उत्पादन किस प्रकार और भी अधिक मात्रा में बढ़ेंगे।

ΔI_a = स्वायत्त निवेश में वृद्धि

Δy = आय में वृद्धि

$\frac{1}{1-MPC}$ = गुणक का आकार, जबकि MPC = उपभोग की सीमान्त संभावना

ΔI_d = उत्प्रेरित निवेश में वृद्धि

v = त्वरक का आकार

चलिए, मान लेते हैं कि अर्थव्यवस्था में निवेश बढ़ा है। इसके फलस्वरूप, गुणक प्रभाव के कारण उत्पादन और आय में आवर्धित वृद्धि देखी जाएगी। जब गुणक प्रभाव के कारण उत्पादन बढ़ता है तो यह निवेश में और बढ़ोतरी करने का काम करता है। पूँजीगत माल उद्योगों में इस उत्प्रेरित निवेश की सीमा पूँजी–उत्पादन अनुपात (v) पर निर्भर करती है। निवेश वृद्धि और अधिक आय वृद्धि की ओर ले जाती है, जो पुनः निवेश में वृद्धि की ओर अग्रसर करता है। गुणक एवं त्वरक के बीच अंतर्क्रिया का प्रतिमान, बहरहाल, उपभोग सीमांत संभावना एवं पूँजी–उत्पादन अनुपात की प्रमात्राओं पर निर्भर करते हुए भिन्न होता है। इसका अर्थ है कि गुणक एवं त्वरक के बीच अंतर्क्रिया व्यापार चक्रों को बढ़ावा दे सकती है। गुणक एवं त्वरक के बीच अंतर्क्रिया का प्रतिमान गणितीय रूप से निम्नवत् निरूपित किया जा सकता है –

$$Y_t = C_t + I_t \quad ..(4.1)$$

$$C_t = C_a + c\,(Y_{t-1}) \quad ...(4.2)$$

$$I_t = I_a + v\,(Y_{t-1} - Y_{t-2}) \quad ...(4.3)$$

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

जहाँ Y_t , C_t , I_t अवधि t के लिए क्रमशः आय, उपभोग एवं निवेश इंगित करते हैं , C_a स्वायत्त उपभोग दर्शाता है, I_a स्वायत्त निवेश बतलाता है, c उपभोग सीमांत संभावना (MPC) के लिए आया है और v का अर्थ है पूँजी–उत्पादन अनुपात अथवा त्वरक।

उपर्युक्त समीकरण से यह सिद्ध होता है कि किसी अवधि t में उपभोग पूर्व अवधि,, Y_{t-1}, की आय का ही एक फलन है अर्थात् किसी अवधि का उपभोग निर्धारित करने के लिए आय हेतु एक अवधि विलंब की कल्पना की गई है। जहाँ तक कि अवधि t में उत्प्रेरित निवेश का प्रश्न है, इसे पूर्व अवधि में आय में परिवर्तन के रूप में लिया जाता है। इसका अर्थ है कि उत्प्रेरित निवेश निर्धारित करने के लिए आय में परिवर्तन दर्शाते दो अवधि अंतराल हैं।

ऊपर समीकरण (4.3) में, उत्प्रेरित निवेश $v\,(Y_{t-1} - Y_{t-2})$ के बराबर है। समीकरण (4.2) और (4.3) को समीकरण (4.1) में प्रतिस्थापित करने पर हमें प्राप्त होता है –

$$Y_t = C_a + c\,(Y_{t-1}) + I_a + v\,(Y_{t-1} - Y_{t-2}) \qquad \text{...(4.4)}$$

समीकरण (4.4) इंगित करता है कि आय में परिवर्तन किस प्रकार MPC के मान (c) और पूँजी–उत्पादन अनुपात v (यथा, त्वरक) पर निर्भर करते हैं। चर c और v के मानों के विभिन्न संयोजन चित्र 4.3 में दर्शाए गए हैं।

चित्र 4.3: चर c और v के मानों के संयोजन

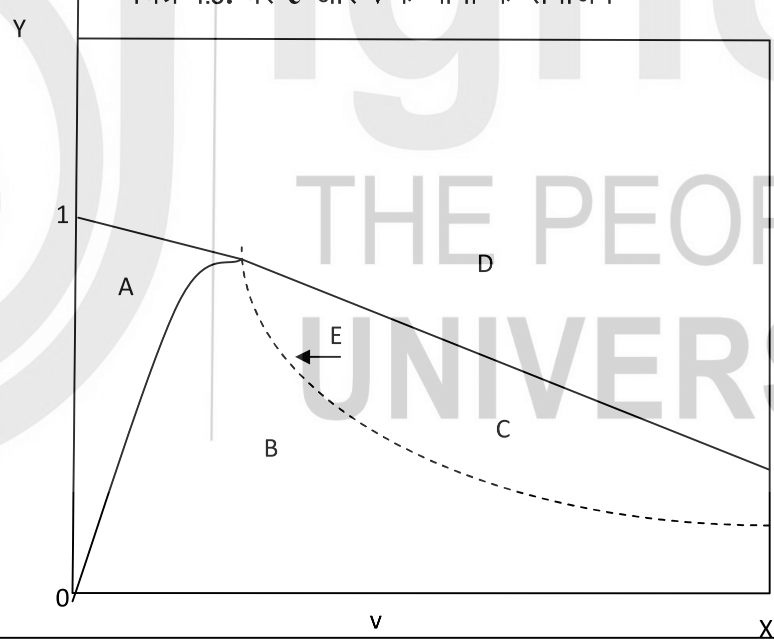

चित्र 4.3 वे चार मार्ग दर्शाता है जिनको उपभोग सीमान्त संभावना (c) और पूँजी–उत्पादन अनुपात (v) के मानों के संयोजनों पर निर्भर करते हुए आर्थिक क्रियाकलाप में अपनाया जा सकता है।

उत्पादन अथवा आय में संचलन के पाँच मार्ग अथवा प्रतिमान ज्ञात किया जाना चर c और v के मानों के संयोजनों पर निर्भर करेगा। इन मार्गों को हमने चित्र 4, खंड (a) से (e) तक, में दर्शाया है।

जब चर c और v के संयोजन A–अंकित क्षेत्र में दृष्टिगत होते हैं तो निवेश में कोई भी वृद्धि उत्पादन को एक ह्रासमान दर से बढ़ाएगी। अंततोगत्वा वह एक नयी साम्यावस्था में पहुँच जाता है, जैसा कि चित्र 4.4 के खंड (a) में दर्शाया गया है।

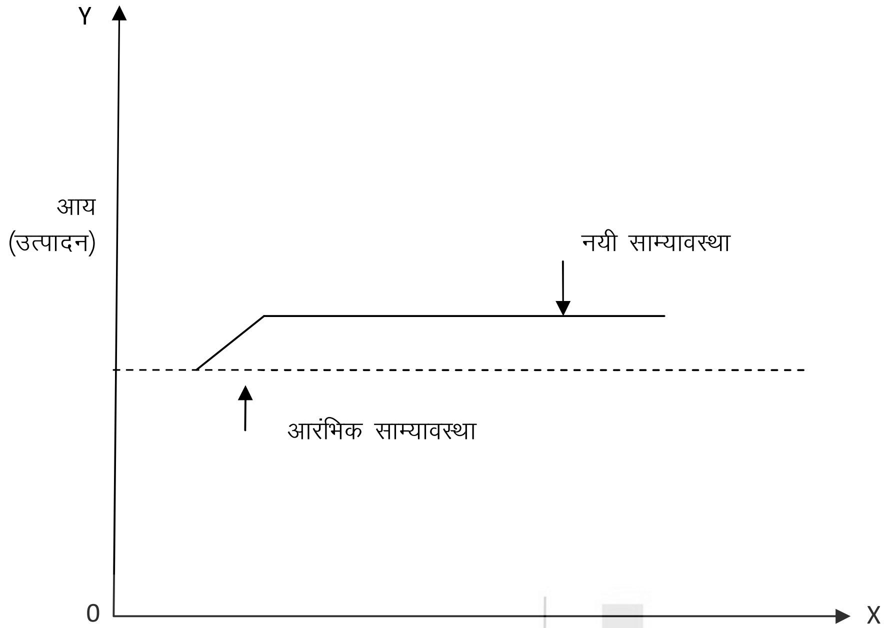

चित्र 4.4, खंड (a): आय एवं उत्पादन

यदि चर c और v के मान चित्र 4.3 के क्षेत्र B में अवस्थित हों तो निवेश में कोई परिवर्तन आय में ऐसे उतार–चढ़ाव दर्शाएगा जो किसी अवमंदित चक्रों की शृंखला का अनुसरण करते होंगे, जैसा कि चित्र 4 के खंड (b) में दर्शाया गया है। इसका अर्थ है कि किसी अवधि विशेष के दौरान चक्रों के अदृश्य होने तक विस्तीर्णता ह्रासोन्मुख ही रहती है।

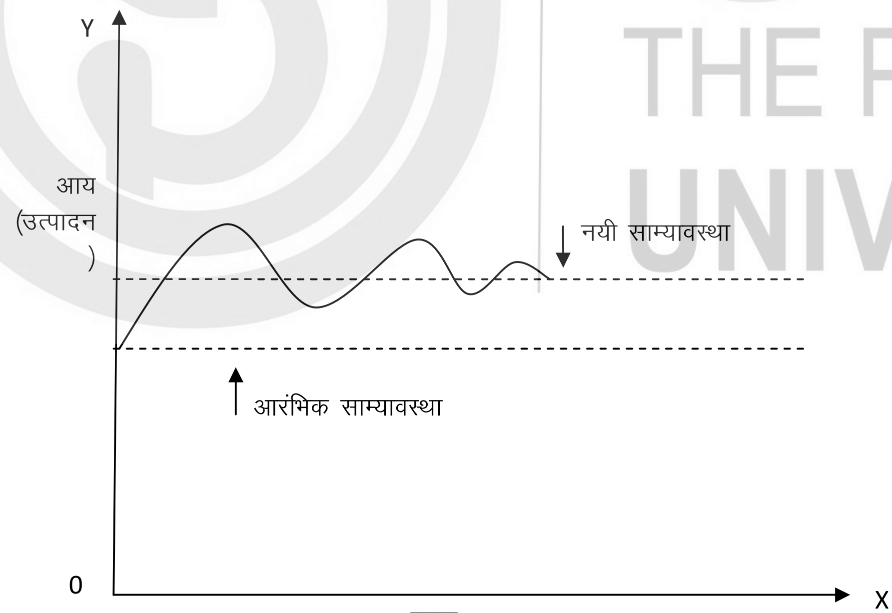

चित्र 4.4, खंड (b): आय एवं उत्पादन

आप देखेंगे कि चित्र नेरूपित करता है, जो कि क्षेत्र B के चरों की तुलना में कुछ अधिक ही मान दर्शाते हैं। गुणक एवं त्वरक के ऐसे मान विस्फोटक चक्रों को जन्म देते हैं, जैसा कि चित्र 4.4 के खंड (c) में दर्शाया गया है। इसका अर्थ है कि आय के उतार–चढ़ाव विस्तीर्णता में उत्तरोत्तर अधिक से अधिकतर होते जाएँगे।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

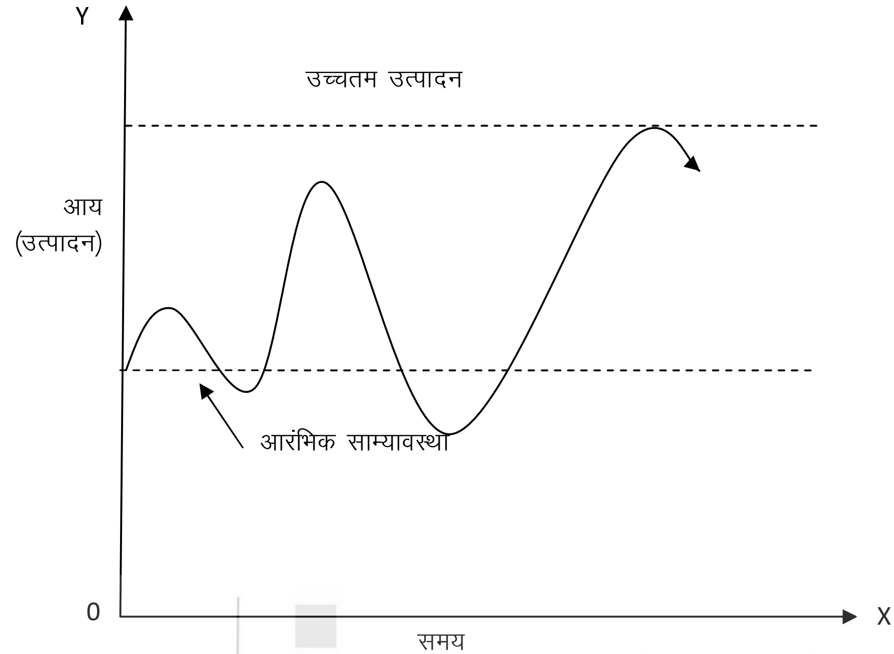

चित्र 4.4, खंड (c): आय एवं उत्पादन

चित्र 4.3 का क्षेत्र D चरों c और v के ऐसे संयोजनों की व्याख्या करता है जो आय को किसी वर्धमान दर से ऊर्ध्व अथवा अधो गति प्रदान करते हैं। इसे हमने चित्र 4.4 के खंड (d) में दर्शाया है।

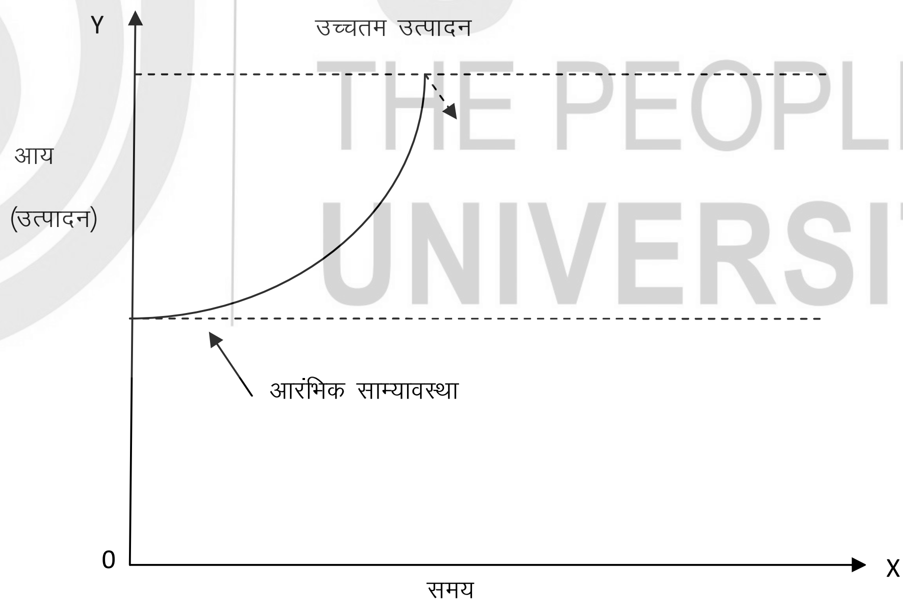

चित्र 4.4, खंड (d): आय एवं उत्पादन

किसी स्थिति विशेष में, जब चर c और v के मान चित्र 4.3 के क्षेत्र E में अवस्थित हों, ये निरंतर विस्तीर्णता वाली आय में उतार–चढ़ाव पैदा कर देते हैं, जो कि चित्र 4.4 के खंड (e) में दर्शाया गया है। आप देखेंगे कि उपर्युक्त पाँचों उदाहरण चक्रीय उतार–चढ़ावों अथवा व्यापार चक्रों बढ़ावा न देने वाले हैं। केवल क्षेत्र B, C एवं E के संयोजन ही व्यापार चक्रों को जन्म दिया करते हैं।

चित्र 4.4, खंड (e): आय एवं उत्पादन

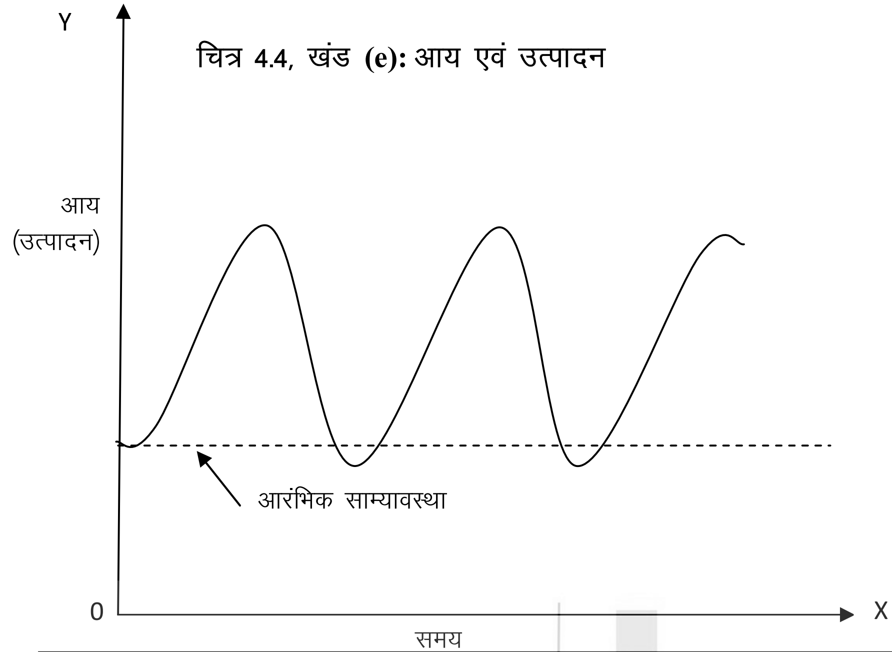

चित्र 4.4 के खंड (a) से (e) तक चर c एवं v के विभिन्न मानों के लिए आय (उत्पादन) संचलन के विभिन्न प्रतिमान दर्शाते हैं, जो कि क्रमशः गुणक एवं त्वरक की विस्तीर्णता निर्धारित करते हैं।

4.6.4 यथार्थ व्यापार चक्र सिद्धांत

यथार्थ व्यापार चक्र सिद्धांत के अनुसार, मौद्रिक आघात अथवा प्रत्याशा परिवर्तन किसी व्यापार चक्र में कोई भूमिका नहीं निभाते। यह वास्तविक व्यापार चक्र सिद्धांत इस मूल अवकल्पना को लेकर चलता है कि व्यापार चक्र का मूल कारण किसी अर्थव्यवस्था को पहुँचे वास्तविक आघात होते हैं। ये आघात या झटके आपूर्ति पक्ष की ओर से हो सकते हैं, जैसे प्रौद्योगिकी आघात (कुल उपादान उत्पादकता में परिवर्तन)। इन आघातों में नवप्रवर्तन, खराब मौसम, पहले से कड़े सुरक्षा विनियम, आदि शामिल होते हैं।

व्यापार चक्र मुख्यतः वास्तविक अथवा आपूर्ति पक्ष के आघातों की वजह से होते हैं, जिनमें प्रौद्योगिकी में होने वाले बहिर्जात वृहद यादृच्छिक परिवर्तन भी शामिल होते हैं। तकनीकी प्रगति के रूप में कोई भी आरंभिक आघात उत्पादन फलन को ऊर्ध्व गति प्रदान करता है। इसके फलस्वरूप उपलब्ध संसाधनों, निवेश, उपभोग एवं वास्तविक उत्पादन में वृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है। निवेश में वृद्धि के साथ ही पूँजी भंडार बढ़ता है, जो आगे वास्तविक उत्पादन, उपभोग एवं निवेश में वृद्धि करता है। कालांतर में प्रौद्योगिकी में बदलावों के कारण अर्थव्यवस्था की यह विस्तार प्रक्रिया अनियमित रूप से जारी रहती है।

प्रतिसरण के कारण क्या होते हैं, यह बात यथार्थ व्यापार चक्र सिद्धांत निम्नवत् स्पष्ट करता है– यथार्थ व्यापार चक्र में प्रतिसरण विस्तार के बिलकुल विपरीत होता है। नकारात्मक वास्तविक आघात उपलब्ध संसाधन घटा देता है, और उत्पादन फलन की अधो गति कर देता है, जिसके फलस्वरूप प्रदा मात्रा कम ही रहती है। नकारात्मक वास्तविक आघात के अनेक उदाहरण गिनाए जा सकते हैं, जैसे– प्रौद्योगिकी में ह्रास (यथा, तकनीकी अवनति), आगत कीमतों में अप्रत्याशित वृद्धि (कच्चा तेल संकट), अत्यल्प वर्षा (भीषण सूखा), इत्यादि। इससे निवेश, उपभोग, उत्पादन एवं रोजगार में गिरावट की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। परंतु यथार्थ व्यापार चक्र संबंधी प्रतिमान किसी प्रतिसरण या मंदी की व्याख्या नहीं कर पाते।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

बोध प्रश्न 3

1) व्यापार चक्रों को जन्म देने के लिए गुणक और त्वरक किस प्रकार अंतर्क्रिया करते हैं? स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

2) यथार्थ व्यापार चक्र सिद्धांत क्या है? स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

4.7 सार–संक्षेप

इस इकाई में हमने तीन मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित किया – व्यापार चक्र के अभिलक्षण, व्यापार चक्र के संसूचक, और व्यापार चक्र के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत। व्यापार चक्र को किसी ऐसे रुझान से आभासी विचलनों के रूप में देखा जाना चाहिए जिसमें अनेक आर्थिक चर एक साथ मिलकर काम करते हैं। ये उतार–चढ़ाव प्रतीकात्मकतापूर्वक अनियमित ढंग से परस्पर दूरी बनाये रखते हैं और भिन्न–भिन्न विस्तीर्णता एवं अवधि दर्शाते हैं। बहरहाल, इन उतार–चढ़ावों का एक बड़ा ही नियमित अभिलक्षण वह रीति है जिसमें कि ये चर एक साथ सक्रिय होते हैं। व्यापार चक्र को चार सोपानों से पहचाना जाता है, यथा विस्तार, प्रतिसरण, अवनमन एवं समुत्थान।

व्यापार चक्र की आनुभविक पहचान करने में एक बड़ी समस्या समग्र आर्थिक क्रियाकलाप के किसी एकल एवं सुसंगत मापदंड का अभाव है। इस दृष्टि से, किसी व्यापार चक्र के संक्रांति–बिंदुओं की पहचान करने के लिए अनेक संसूचकों में गतिविधियों पर विचार किया जाता है। इन चरों को अग्रणी, पश्चायित एवं संपाती वर्ग में रखने के लिए इनके समय–निर्धारण एवं फैलाव को मद्देनजर रखा जाता है।

व्यापार चक्रों के उक्त अभिलक्षण स्पष्ट करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत निम्नवत् हैं – (a) केन्जियन सिद्धांत जिसने दर्शाया कि कुल प्रभावी माँग के स्तर में परिवर्तन आय, उत्पादन एवं रोजगार के स्तर में उतार–चढ़ाव ला देते हैं; (b) व्यापार चक्र का सैम्युल्सन मॉडल जिसने दर्शाया कि गुणक एवं त्वरक के बीच अंतर्क्रिया आर्थिक क्रियाकलाप में चक्रीय घट–बढ़ पैदा करती है; तथा (c) यथार्थ व्यापार चक्र सिद्धांत, जिसके अनुसार व्यापार चक्र किसी अर्थव्यवस्था को पहुँचने वाले वास्तविक आघातों के फलस्वरूप चलते हैं।

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) व्यापार चक्र में बड़ी संख्या में विस्तार एवं संकुचन के पुनरावर्तक प्रत्यावर्ती सोपान होते हैं।

2) व्यापार चक्र आवधिक एवं सहकालिक होते हैं और एक बार किसी देश में प्रारंभ होने के बाद वे आपसी व्यापार संबंधों के सहारे अन्य देशों में भी फैल जाते हैं। विस्तृत विवरण के लिए पाठांश 4.2 देखें।

3) किसी भी व्यापार चक्र के चार चरण होते हैं, यथा विस्तार, प्रतिसरण, अवनमन और समुत्थान। विस्तृत विवरण के लिए पाठांश 4.3 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) कोई भी व्यापार चक्र संसूचक पाठांश 4.5 में वर्णित छह मापदंडों पर खरा उतरने वाला होना चाहिए।

2) किसी भी पश्चायित संसूचक का महत्व उसकी यह पुष्टि करने की क्षमता की वजह से कहलाता है कि कोई प्रतिमान विद्यमान है।

3) बेरोजगारी सर्वाधिक लोकप्रिय पश्चायित संसूचकों में एक माना जाता है। यदि बेकारी की दर बढ़ती है तो इसका संकेत यह होता है कि अर्थव्यवस्था की हालत खस्ता है।

बोध प्रश्न 3

1) समीकरण (4.4) स्पष्ट करें और चित्र 4.3 के आधार पर निष्कर्ष निकालें।
2) यथार्थ व्यापार चक्र सिद्धांत के अनुसार, आपूर्ति आघात व्यापार चक्रों को जन्म देते हैं। पाठांश 4.6.4 देखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 5 अंतर्कालिक चयन – I*

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 कुज्नेत्स पहेली

5.2.1 चिरकालिक गतिरोध परिकल्पना

5.2.2 कुज्नेत्स का आनुभविक कार्य

5.3 दो–आवधिक मॉडल में फिशर का उपभोग सिद्धांत

5.3.1 अंतर्कालिक बजट बाध्यता

5.3.2 उपभोक्ता अधिमान

5.4 उपभोक्ता की इष्टतमीकरण समस्या

5.4.1 इष्टतम उपभोग पर आय में परिवर्तन का प्रभाव

5.4.2 इष्टतम उपभोग पर ब्याज दर में परिवर्तन का प्रभाव

5.4.3 ऋण पर बाध्यता

5.5 सार संक्षेप

5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस स्थिति में होंगे कि –

- कुज्नेत्स पहेली की अवधारणा की व्याख्या कर सकें ;
- स्पष्ट कर सकें कि उपभोक्ता समय के साथ उपभोग पर किस प्रकार अनुकूलन करता है ;
- चिरकालिक गतिरोध की अवधारणा का वर्णन कर सकें ;
- अंतर्कालिक बजट बाध्यता की रचना कर सकें ;
- किसी अंतर्कालिक व्यवस्था में उपभोग पर आयवृद्धि के प्रभाव की व्याख्या कर सकें ; तथा
- कालांतर में उपभोग पर ब्याज दर में बदलाव के प्रभाव का विश्लेषण कर सकें।

5.1 प्रस्तावना

आपने पाठ्यक्रम BECC 101 के अंतर्गत व्यष्टि–अर्थशास्त्रीय सिद्धांत में यह जाना कि किसी परिवार अथवा व्यक्ति का उपभोग निर्णय वस्तुओं की कीमतों और बजट बाध्यता पर आधारित होता है। वस्तुतः व्यष्टि अर्थशास्त्र में किसी भी परिवार का चयन निर्णय किसी एकल समयावधि तक ही सीमित होता है। बहरहाल, जनसाधारण उपभोग, बचत, उधार आदि के संबंध में अपने विकल्प निरंतर चुनता ही रहता हैं। जब ये चयन समय के साथ होते हैं तो इन्हें 'अंतर्कालिक विकल्प निर्णय' कहा जाता है। इस इकाई में हम कालांतर में परिवारों के उपभोग निर्णय को ही अपनी चर्चा के केंद्र में रखेंगे। जैसा कि आप जानते हैं, उपभोग कुल माँग का एक बड़ा हिस्सा होता है, जो कि निवेश, राजकीय व्यय, निवल

* सुश्री वैशाखी मंडल, सहायक प्राध्यापक, इंद्रप्रस्थ महिला कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

निर्यात आदि अन्य सब क्षेत्रों को मिलाकर भी उनसे अधिक ही बैठता है। यद्यपि उपभोग में उतार–चढ़ाव जीडीपी के उतार–चढ़ाव (व्यापार चक्र में) के साथ ही अपना असर दिखाता है, यह परिमाण में जीडीपी के मुकाबले कुछ कम होता है। चूँकि वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग का जन–साधारण द्वारा व्युत्पन्न उपयोगिता पर सीधा प्रभाव पड़ता है, इसलिए कुल स्तर पर इसका प्रभाव अर्थव्यवस्था के लिए कल्याणकारी निहितार्थ रखता है।

कीन्स द्वारा *साइकोलॉजिकल लॉ ऑफ कन्जप्शन* अर्थात् 'उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम' प्रतिपादित किए जाने के कुछ समय पश्चात ही अर्थशास्त्रियों ने केन्जियन अनुमानों का अनुभवजन्य परीक्षण शुरू कर दिया। यद्यपि केन्जियन उपभोग फलन को शुरुआत में सफलता मिली, जल्द ही कीन्स के इस अनुमान के बारे में विसंगतियां पैदा हुईं कि आय बढ़ने पर उपभोग करने की औसत प्रवृत्ति का ह्रास होता है। अनेक अर्थशास्त्रियों ने उपभोग संबंधी अपने उन्नत सिद्धांतों के माध्यम से इन विसंगतियों को स्पष्ट करने की कोशिश की।

यहाँ इस इकाई और अगली इकाई में हम कीन्स, साइमन कुज्नेत्स, इरविंग फिशर, फ्रेंको मोदिग्लिआनी, मिल्टन फ्रीडमैन, डेविड रिकार्डो, रॉबर्ट बैरो, रॉबर्ट हॉल आदि कुछ प्रमुख अर्थशास्त्रियों के विचार प्रस्तुत करेंगे। तत्पश्चात हम किसी परिवार के अंतर्कालिक उपभोग निर्णय पर सरकार की ऋण–वित्तपोषण नीति के पड़ने वाले प्रभाव पर भी चर्चा करेंगे।

5.2 कुज्नेत्स पहेली

जैसा कि हमने पाठ्यक्रम BECC 103 में देखा था, केन्जियन उपभोग फलन के दो प्रमुख अभिलक्षण होते हैं। पहला, सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC = $\Delta c/\Delta y$) शून्य और एक के बीच होती है। दूसरा, आय बढ़ने पर औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC = c/y) में ह्रास देखा जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध (1939 – 1945) के दौरान कीन्स के विचार अनुभवजन्य प्रेक्षणों से भिन्न पाए गए।

5.2.1 चिरकालिक गतिरोध परिकल्पना

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान चूँकि अर्थव्यवस्था में निवेश के अवसर समाप्त हो गए थे, कीन्स की प्रस्थापना के पश्चात अर्थशास्त्रियों ने भविष्यवाणी की कि समय के साथ जब अर्थव्यवस्था की आय बढ़ेगी तो औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC) कम से कमतर होती जाएगी। साथ ही, बचत करने की औसत प्रवृत्ति (APS) उच्च से उच्चतर होती जाएगी, परंतु बचत को समाहित करने के लिए पर्याप्त लाभदायक निवेश अवसर नहीं होंगे। दूसरे शब्दों में, इन अर्थशास्त्रियों का पूर्वानुमान था कि जब तक सरकार कुल आय की तुलना में तेज दर से सरकारी व्यय में वृद्धि नहीं करेगी, अर्थव्यवस्था अनिश्चितकाल तक व्यापार मंदी झेलती ही रहेगी। इसे ही 'चिरकालिक गतिरोध परिकल्पना' कहा जाता है। इस परिकल्पना से उत्पन्न भय को वास्तविक रूप में निम्नलिखित कुल माँग समीकरण की सहायता से देखा जा सकता है –

$$\mathbf{y}_{\text{(वास्तविक आय)}} = \mathbf{c}_{\text{(वास्तविक उपभोग)}} + \mathbf{i}_{\text{(वास्तविक निवेश)}} + \mathbf{g}_{\text{(वास्तविक सरकारी व्यय)}}$$

दोनों पक्षों को 'y' से भाग देने पर हमें प्राप्त होता है –

$$\mathbf{1 = c / y + i / y + g / y} \qquad \ldots (5.1)$$

समीकरण (5.1) में आप देखेंगे दें कि c / y औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC) दर्शाता है। अतः कीन्स के अनुसार जैसे–जैसे समय के साथ y बढ़ता है, c / y गिरता जाता है, जबकि इसके विपरीत, बचत करने की औसत प्रवृत्ति (APS) = s / y बढ़ती ही रहती है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान लाभदायक निवेश के अवसरों की कमी के कारण यह सोचा

गया था कि जैसे–जैसे अर्थव्यवस्था सुधरेगी i / y नहीं बढ़ेगा। दूसरे शब्दों में, समीकरण (5.1) में, y के बढ़ने पर c / y गिर रहा है और i / y बढ़ नहीं रहा है।

उपर्युक्त का एक निहितार्थ यह भी होता है कि g / y को बढ़ाना है। इसमें वृद्धि का मतलब होगा –य (y) की तुलना में सरकारी व्यय तेज दर से बढ़ाना है। अन्यथा, अर्थव्यवस्था नहीं सुधरेगी, बल्कि वह गतिहीन हो जाएगी।

सौभाग्य से, द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद अर्थव्यवस्था को मंदी का कोई और दौर नहीं झेलना पड़ा। यद्यपि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की अवधि में अर्थव्यवस्था पहले से अधिक आय का लाभ उठा रही थी, इससे बचत दर (s / y) में कोई बड़ी वृद्धि नहीं हुई। अतः कीन्स का यह अनुमान कि आय बढ़ने पर औसत उपभोग प्रवृत्ति में ह्रास आएगा, सही सिद्ध नहीं हुआ। इसका तात्पर्य है कि चिरकालिक गतिरोध परिकल्पना बुरी तरह विफल रही।

5.2.2 कुज्नेत्स का आनुभविक कार्य

वर्ष 1946 में साइमन कुज्नेत्स ने अमेरिकी अर्थव्यवस्था के वर्ष 1836 से लेकर 1938 तक की एक काफी लंबी अवधि से जुड़े उपभोग और आय संबंधी आँकड़ों का अध्ययन किया। तत्पश्चात कुज्नेत्स ने प्रस्तुत आँकड़ों के माध्यम से दीर्घावधि उपभोग व्यवहार की दो महत्वपूर्ण विशेषताएँ सामने रखीं।

प्रथम, औसतन एक लंबी अवधि तक अभिभावी औसत उपभोग प्रवृत्ति (c / y) ने कोई अधोमुखी रुझान नहीं दिखाया जैसा कि कीन्स के उपभोग फलन द्वारा प्रतिपादित था। यह काफी लंबे समय तक काफी स्थिर बनी रही। इसका मतलब यह हुआ कि दीर्घ अवधि में MPC = APC अर्थात् सीमांत उपभोग प्रवृत्ति और औसत उपभोग प्रवृत्ति एक समान मान दर्शाते हैं। आपको याद होगा कि किसी भी केन्जियन उपभोग फलन पर हम औसत उपभोग प्रवृत्ति को उस सीधी सरल रेखा के ढ़लान द्वारा मापते है जो केंद्रबिंदु को उपभोग फलन के संबंधित बिंदु से जुड़ती है। इस प्रकार, आय बढ़ने पर औसत उपभोग प्रवृत्ति में ह्रास देखा जाता है। दूसरी ओर, हमने सीमांत उपभोग प्रवृत्ति को उपभोग फलन के ढ़लान के रूप में मापा। अब APC और MPC के बीच समानता तभी स्थापित की जा सकती है जब उपभोग फलन केन्द्रबिन्दु से होकर गुजरे (देखें चित्र 5.1)।

दूसरा, कुज्नेत्स के आँकड़ों के अनुसार, ऐसे किसी भी वर्ष जब औसत उपभोग प्रवृत्ति (= c / y) दीर्घावधि औसत c / y से नीचे रही हो तो इसे 'उत्कर्ष अवधि' कहा जाएगा। इसी प्रकार, ऐसे किसी भी वर्ष जब औसत उपभोग प्रवृत्ति (= c / y) दीर्घावधि औसत c / y से ऊपर रही हो तो इसे 'चरम मंदी' की अवधि कहा जाएगा। उपर्युक्त के पीछे की व्याख्या इस प्रकार है – किसी भी उत्कर्ष वर्ष में अर्थव्यवस्था की आय दीर्घावधि औसत आय से अधिक होती है।

केन्जियन उपभोग फलन के अनुसार औसत उपभोग प्रवृत्ति (c / y) में गिरावट तब आती है जब अर्थव्यवस्था विकसित होती है और उत्पादन उच्चतर स्तर पर पहुँच जाता है। इसे एक अन्य दृष्टि से देखें तो किसी वर्ष विशेष के लिए मान लीजिए कि c / y अनुपात औसत c / y अनुपात से कम है। इसका अर्थ है कि यह एक ऐसा वर्ष होना चाहिए जिसमें दीर्घावधि औसत y से अधिक आय हो और इस कारण उसे उत्कर्ष अवधि कहा जा सके। इसी प्रकार का तर्क चरम मंदी की अवधि के c / y को भी स्पष्ट करेगा।

कुज्नेत्स की इस आनुभविक खोज कि दशक–दर–दशक उपभोग और आय का अनुपात उल्लेखनीय रूप से स्थिर रहता है, ने कीन्स के इस अनुमान का खंडन किया कि आय बढ़ने के साथ औसत उपभोग प्रवृत्ति का ह्रास निश्चित ही होता है। कुज्नेत्स ने बताया कि महामंदी के वर्षों को छोड़कर, अमेरिकी अर्थव्यवस्था में औसत उपभोग प्रवृत्ति वर्ष

1836–1938 की अवधि में काफी स्थिर रहा था – यह 0.84 और 0.89 के बीच एक संकीर्ण सीमा में घटता–बढ़ता रहा। इस प्रकार, भले ही इस अवधि के दौरान आय में बहुत अधिक वृद्धि हुई हो, उपभोग आय के एक स्थिर अंश के रूप में ही कायम रहा। कुज्नेत्स की इस अनुभवजन्य खोज ने कीन्स के उपभोग सिद्धांत के केंद्रीय सिद्धांतों को असंगत करार दिया। मिल्टन फ्रीडमैन (1957) ने इस प्रतीयमानतः विरोधाभासी तथ्य को 'कुज्नेत्स पहेली' अथवा 'उपभोग पहेली' की संज्ञा दी।

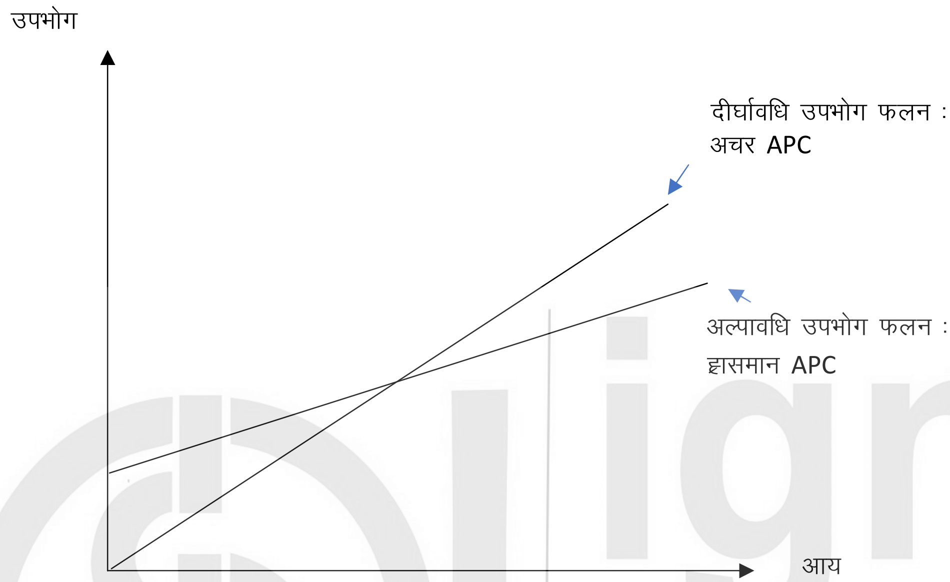

चित्र 5.1: कुज्नेत्स पहेली

दीर्घावधि उपभोग फलन और अल्पावधि उपभोग फलन आय y के साथ APC के प्रतीयमानतः अस्पष्ट अथवा असंगत संबंध को प्रदर्शित करते हैं।

चित्र 5.1 में आनुभविक साक्ष्य द्वारा सुझाए गए दो उपभोग फलन प्रस्तुत करता है। वह फलन जो केंद्रबिंदु से गुजर रहा है, दीर्घावधि उपभोग फलन है, जो कि कुल उपभोग व्यय और आय के दीर्घावधिक समय–शृंखला आँकड़ों के अध्ययन पर आधारित है। दीर्घावधि उपभोग फलन स्थिर औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC) का अस्तित्व दर्शाता है। दूसरी ओर, प्रतिनिध्यात्मक आँकड़ों और अल्पावधिक समय–शृंखला के आधार पर परिवारों का अल्पावधि उपभोग फलन है जो, दीर्घावधि उपभोग फलन की तुलना में अधिक समतल और जिसका धनात्मक अवरोधन है। अल्पावधि उपभोग फलन औसत उपभोग प्रवृत्ति में ह्रास का संकेत देता है।

केन्जियन उपभोग फलन अल्पावधि में कारगर सिद्ध हुआ है क्योंकि अल्पावधि उपभोग फलन ने औसत उपभोग प्रवृत्ति को ह्रासमान दर्शाया है, जैसा कि कीन्स ने अपने उपभोग सिद्धांत में प्रतिपादित किया था। बहरहाल, दीर्घावधिक समय–शृंखला के लिए दीर्घावधि उपभोग फलन स्थिर औसत उपभोग प्रवृत्ति दर्शाता प्रतीत हुआ। अतः, यदि हम इसमें समय आयाम जोड़ देते हैं तो आय के साथ औसत उपभोग प्रवृत्ति का संबंध परस्पर असंगत निकलता है। इसे ही प्रायः **कुज्नेत्स पहेली** के रूप में जाना जाता है। कुज्नेत्स की पहेली अर्थशास्त्रियों के समक्ष एक चुनौती पेश की, जिन्होनें यह समझाने की कोशिश की कि अलग–अलग समय आयामों के ये दो उपभोग फलन किस प्रकार एक दूसरे के अनुरूप हो सकते हैं।

सन 1940 के दशकांत तक यह स्पष्ट हो गया था कि उपभोग का कोई ऐसा सिद्धांत होना ही चाहिए जो तीनों देखी गई दृश्यघटनाओं का समाधान कर सके, यथा –

1. प्रतिनिध्यात्मक बजट अध्ययन (घरेलू उपभोग–आय डेटा) से पता चलता है कि जैसे–जैसे y बढ़ता है, c / y गिरता है, जिससे कि जनसंख्या के प्रतिनिधिक अंश में MPC < APC {केन्जियन उपभोग फलन के अनुरूप} हो।
2. व्यापार चक्र अथवा अल्पावधि संबंधी आँकड़े बताते हैं कि c / y अनुपात उत्कर्ष के दौरान औसत से कम होता है और चरम मंदी की अवधि में औसत से अधिक होता है। तदनुसार, अल्पावधि में जैसे–जैसे आय में उतार–चढ़ाव होता है, MPC < APC {केन्जियन उपभोग फलन के अनुरूप} हो जाता है।
3. दीर्घावधिक आँकड़े दर्शाते हैं कि जैसे–जैसे आय बढ़ती है, MPC = APC {केन्जियन उपभोग फलन के अननुरूप} हो जाता है।

कुज्नेत्स के इस निष्कर्ष को कि उपभोग आय का कोई फलन मात्र होने की बजाय अनुपात होता है, वर्ष 1946–उपरांत अवधि में उपभोग सिद्धांत को प्रतिमान के अनुसार ढालने की कोशिश में लगे अर्थशास्त्रियों ने समझाने की आवश्यकता समझी, साथ ही उपभोग निर्धारित करने में भी धन–संपत्ति / परिसंपत्ति के प्रतीयमान प्रभाव को स्पष्ट करने की भी।

5.3 दो–आवधिक मॉडल में फिशर का उपभोग सिद्धांत

केन्जियन उपभोग फलन ने वर्तमान उपभोग और वर्तमान आय के बीच संबंध पर बल दिया। ऊपर पाठांश 5.2 में हमने देखा कि केन्जियन उपभोग फलन दीर्घावधि उपभोग व्यवहार की व्याख्या नहीं कर सका। सहज रूप से यह समझना बहुत कठिन नहीं है। हर उपभोक्ता जानता है कि उसका वर्तमान उपभोग विकल्प न केवल वर्तमान आय पर निर्भर करता है बल्कि भावी उपभोग विकल्प, भावी आय और ऋणादान बाध्यता के प्रति उसकी प्राथमिकता पर भी निर्भर करता है। आज अधिक उपभोग का अर्थ होगा कि वह कल कम उपभोग करने में सक्षम होगा। यह एक समझौताकारी समन्वय होता है।

जब हम अपनी कार्रवाई चुनते हैं तो हम सभी जानबूझकर या अनजाने में इस समझौताकारी तालमेल से दो–चार होते हैं। उदाहरण के लिए, यदि आज कोई छात्र विशेष अपने खाली समय में नेटफ्लिक्स के माध्यम से टीवी पर बहुत सारे कार्यक्रम या सीरियल एक के बाद एक देखने का विकल्प चुनता है तो सेमेस्टर पास करने के लिए कल उसे अधिक घंटे अध्ययन करना होगा और उसके पास इत्मीनान से फुर्सत के पल बिताने के लिए बहुत कम समय होगा। आय–बचत समझौताकारी समन्वय के मामले में, यदि आप आज कम उपभोग करते हैं तो आप अधिक बचत करने में सक्षम होंगे। यदि आप अधिक बचत करते हैं तो आपको अपनी बचत पर अधिक ब्याज प्राप्त होगा और आपकी भावी आय में वृद्धि होगी। तदनुसार, आज कम खपत का अर्थ कल अधिक खपत होगा।

इरविंग फिशर ने उपभोक्ता व्यवहार का एक बहु–अवधि मॉडल विकसित किया जिसमें उन्होंने दर्शाया कि किस प्रकार एक विवेकशील, दूरंदेशी उपभोक्ता इस समझौताकारी समन्वय को समझता है और कालांतर में अपने उपभोग को इष्टतम रूप से विभाजित करता है।

5.3.1 अंतर्कालिक बजट बाध्यता

फिशर के अंतर्कालिक बजट निबाधों की व्याख्या करने के लिए हम केवल दो समयावधियाँ मानकर चलते हैं, यथा – वर्तमान और भविष्य। आगे हम यह मानकर चलते हैं कि हमारा प्रतिनिधि उपभोक्ता विवेकशील है और केवल दो समयावधियों के लिए ही जीता है।

हम यह भी मानकर चलते हैं कि वर्तमान समयावधि की शुरुआत में इस उपभोक्ता के पास कोई धन–संपत्ति / परिसंपत्ति नहीं है। यदि वह काम करता है तो उसे मजदूरी या श्रम आय प्राप्त होती है। चूँकि यह एक दो–अवधि मॉडल है, हमारे प्रतिनिधि उपभोक्ता की दूसरी समयावधि अर्थात् भविष्य की समयावधि के अंत में मृत्यु हो जाती है। अतः भावी पीढ़ी के लिए कोई वसीयत छोड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता – भविष्य की समयावधि के अंत में कोई भावी पीढ़ी होगी ही नहीं।

हम इस मॉडल की रचना के लिए निम्नलिखित संकेतन का उपयोग करते हैं –

Y_1 = उपभोक्ता की वर्तमान समयावधि की श्रम आय।
Y_2 = उपभोक्ता की भविष्य की समयावधि की श्रम आय, जो कि उपभोक्ता को ज्ञात है।
C_1 = वर्तमान समयावधि में उपभोग।
C_2 = भविष्य की समयावधि में उपभोग।

अतः उपभोक्ता के समक्ष समझौताकारी वर्तमान उपभोग (C_1) बनाम भावी उपभोग (C_2) है।

आइए, तालिका 5.1 में उपभोक्ता के चयन संबंधी शृंखला–समूह को सूचीबद्ध करें।

तालिका 5.1: उपभोक्ता का विकल्प चयन

उपभोक्ता का विकल्प	निहितार्थ
केस 1: यदि उपभोक्ता प्रत्येक समयावधि में अपनी पूरी आय उपभोग पर खर्च करने का विकल्प चुनता है	$C_1 = Y_1$ और $C_2 = Y_2$
केस 2: यदि उपभोक्ता अपनी सारी आय एक ऐसे बैंक में जमा करता है जो पहली समयावधि में वास्तविक ब्याज दर 'r' का भुगतान करता है	$C_1 = 0$ और $C_2 = Y_1(1 + r) + Y_2$
केस 3: यदि उपभोक्ता पहली समयावधि (वर्तमान समय) में अपनी आय में से कुछ को बचाने का विकल्प चुनता है	$C_1 = (Y_1 - S_1)$ और $C_2 = Y_2 + (1 + r) S_1$ (ध्यान दें कि $C_1 < Y_1$)
केस 4: यदि उपभोक्ता पहली (वर्तमान) समयावधि में अपनी आय से अधिक ब्याज दर 'r' पर उधार लेकर खर्च करता है	$-S_1 = C_1 - Y_1$ और $C_2 = Y_2 - S_1(1 + r)$ (ध्यान दें कि $C_1 > Y_1$)
केस 5: यदि उपभोक्ता भविष्य में अपनी आय से कम खर्च करने की योजना बना रहा हो	$C_1 = Y_1 + (Y_2 - C_2) / (1 + r)$ और $C_2 = (Y_2 - S_2)$ (ध्यान दें कि $C_2 < Y_2$)
केस 6: यदि उपभोक्ता दूसरी (भविष्य) समयावधि में कुछ भी खर्च नहीं करने की योजना बना रहा हो	$C_1 = Y_1 + Y_2 / (1 + r)$ और $C_2 = 0$

ऊपर दी गई तालिका 5.1 यह व्याख्या करती है कि हमारे प्रतिनिधि उपभोक्ता की आय किस प्रकार दोनों समयावधियों में उपभोग को अवरुद्ध करती है। आप देखेंगे कि हमने चर S का प्रयोग बचत और ऋणादान (कुछ न बचाना) के रूप में किया है। उपभोक्ता को तब उधार लेने की आवश्यकता होती है जब उसका उपभोग व्यय उसकी आय से अधिक हो जाता है और इस कारण ऋणात्मक बचत (–S) उधार लेने के बराबर होती है।

स्मरण करें कि r ही वास्तविक ब्याज दर है। सरलता के लिए हम मान लेते हैं कि ऋणदान (उधार दिए जाने से बचाई गई राशि) की दर और ऋणादान (उधार लेने) की दर (यथा, 'r') दोनों एक समान हैं।

बजट बाध्यता अवकलित करने के लिए, आइए, केस 3 (देखें तालिका 5.1) से आरंभ करें, जहाँ उपभोक्ता पहली अवधि में S_1 राशि [$S_1 = (Y_1 - C_1)$, चर C_1 का मान Y_1 से कम है] की बचत करता है, जो कि ब्याज दर ' r ' पर उधार दी जा रही है। अतः दूसरी अवधि में उपभोक्ता के पास दूसरी अवधि की आय Y_2 और पहली अवधि की संचित बचत उस बचत पर अर्जित ब्याज सहित, यथा

$S_1 (1 + r)$, उसके अधिकार में है। दूसरी अवधि के दौरान इस कुल आय का दूसरी अवधि में ही उपभोग किया जाना है, अर्थात् कोई वसीयत नहीं है (अपनी अवधारणा का स्मरण करें कि उपभोक्ता दूसरी अवधि के अंत में अपने पीछे कोई आय नहीं छोड़ता है)।

अतएव,

$C_2 = (1+r)\ S_1 + Y_2$

अथवा,

$C_2 = (1+r)\ (Y_1 - C_1) + Y_2$

इन पदों को पुनर्व्यवस्थित कर हम समीकरण को निम्नवत् लिख सकते हैं –

$$(1 + r)\ C_1 + C_2 = (1 + r)\ Y_1 + Y_2$$

उपर्युक्त समीकरण के दोनों पक्षों को $(1 + r)$ से विभाजित कर हमें प्राप्त होता है –

$$C_1 + \frac{C_2}{(1+r)} = Y_1 + \frac{Y_2}{(1+r)} \qquad \ldots (5.2)$$

समीकरण (5.2) दो समयावधियों के दौरान उपभोग और आय के बीच संबंध को दर्शाता है। यह किसी उपभोक्ता के अंतर्कालिक बजट बाध्यता को निरूपित करने का एक विशिष्ट तरीका है।

इस बजट बाध्यता का ढ़लान $(\mathbf{1 + r})$ है।

नीचे दिया गया चित्र 5.2 इस उपभोक्ता के अंतर्कालिक बजट बाध्यता को ही दर्शाता है –

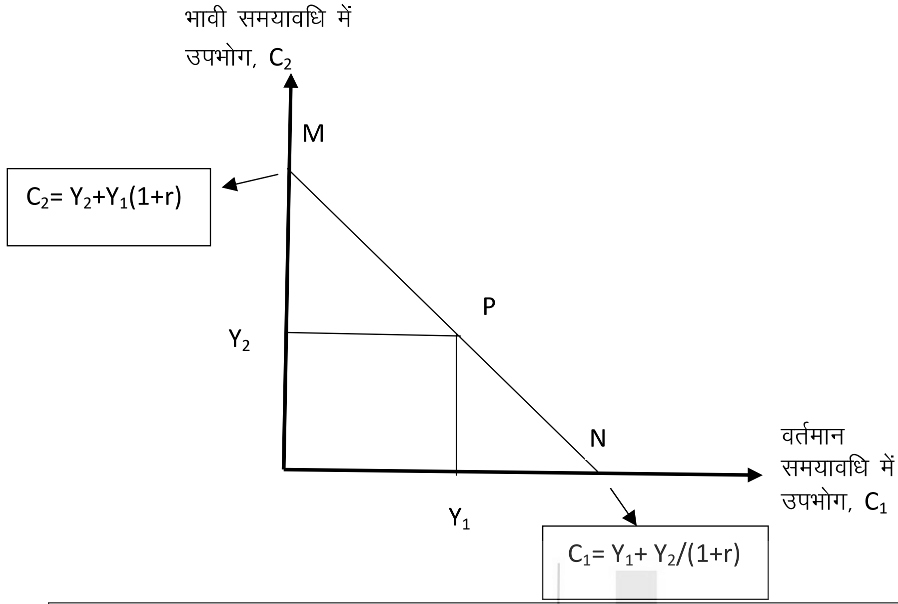

चित्र 5.2: अंतर्कालिक बजट बाध्यता

वर्तमान अवधि के अधिक उपभोग का अर्थ होगा – भावी समयावधि के उपभोग का कम होना। तदनुसार बजट बाध्यता ऋणात्मक ढ़लान होगा।

चित्र में 5.2 उपभोक्ता की दो–आवधिक आय को **बिंदु P** द्वारा दर्शाया गया है। यदि उपभोक्ता वर्तमान अवधि में उपभोग की 1 इकाई बचाता है तो वह वर्तमान अवधि के उपभोग की 1 इकाई से स्वयं को वंचित कर रहा है। यह बचाई गई राशि भविष्य के उपभोग की $(1 + r)$ इकाइयाँ बन जाती है। अतः वर्तमान उपभोग के संदर्भ में भविष्य के उपभोग की 1 इकाई का मान वर्तमान उपभोग का मात्र $1/(1+r)$ है। इसका अर्थ है कि भविष्य के उपभोग की 1 इकाई का वर्तमान मूल्य वर्तमान उपभोग का $1/(1+r)$ है। तदनुसार, भविष्य के उपभोग और भविष्य की आय को कारक $(1 + r)$ द्वारा छूट प्रदान की जाती है।

यदि उपभोक्ता के दो–आवधिक उपभोग का चयन **बिंदु P** का संपाती होता है, जो कि दो–आवधिक आय बिंदु भी है, तो उपभोक्ता किसी भी अवधि में न तो उधार ले रहा है और न ही बचत कर रहा है। अतः, $C_1 = Y_1$ और $C_2 = Y_2$ [**केस 1,** तालिका 5.1]।

केस 2 द्वारा बजट निबाध पर **बिंदु M** दर्शाया गया है (देखें तालिका 5.1)। यहाँ उपभोक्ता अपनी सारी वर्तमान आय बैंक में डालने का फैसला करता है, जबकि वर्तमान समयावधि में शून्य उपभोग (अर्थात् $C_1 = 0, S_1 = Y_1$) करता है। भविष्य की समयावधि में वह अपनी भावी समयावधि की आय Y_2 और बचत पर अर्जित संचित बचत एवं ब्याज, यथा $Y_1(1+r)$ का प्रयोग करता है। अतः, $C_2 = Y_1(1+r) + Y_2$ प्राप्त होता है।

यदि उपभोक्ता **बिंदु M** और **बिंदु P के बीच** ऐसा कोई भी बिंदु (बजट बाध्यता पर) चुनता हो जो C_1 और C_2 का उसका चयन प्रदर्शित करता हो तो वह पहली समयावधि में कम उपभोग कर रहा है और वह इस समयावधि में बचत भी कर रहा है **[केस 3,** तालिका 5.1]।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

दूसरी ओर, यदि उसकी पसंद का C_1 और C_2 का संयोजन बजट बाध्यता पर **बिंदु P** और **बिंदु N** के **बीच** हो जाता है तो उपभोक्ता पहली समयावधि में जितना कमा सकता है उससे कहीं अधिक का उपभोग कर रहा है। अतः, इसलिए वह पहली समयावधि में उधार ले रहा है **[केस 4,** तालिका 5.1]।

यदि उपभोक्ता बिंदु **P** और बिंदु **N** के बीच ऐसा कोई भी बिंदु (बजट निबाध पर) चुनता हो जो C_1 और C_2 का उसका चयन प्रदर्शित करता हो तो उपभोक्ता पहली समयावधि में Y_1 (यथा, ऋणादान) से अधिक का उपभोग कर रहा है और वह दूसरी समयावधि में Y_2 से कम उपभोग कर रहा है **[केस 5,** तालिका 5.1]।

बजट बाध्यता पर **बिंदु N** तालिका 5.1 के **केस 6** को दर्शाता है। यहाँ उपभोक्ता वर्तमान समयावधि में उपभोग कर सब कुछ समाप्त कर देता है और भविष्य की समयावधि में उसका उपभोग शून्य रहता है (अर्थात् $C_2 = 0$)। तदनुसार, उसकी भावी समयावधि की आय, Y_2, का वर्तमान मूल्य $Y_2/(1+r)$ हो जाता है। अतः, उसका वर्तमान समयावधि का उपभोग $C_1 = Y_1 + Y_2/(1+r)$ ज्ञात होता है।

5.3.2 उपभोक्ता अधिमान

किसी भी उपभोक्ता का अधिमान वर्तमान समयावधि और भावी समयावधि संबंधी उसके उपभोग स्तर पर निर्भर करता है। किसी भी व्यक्ति के उपयोगिता फलन से हम अंतर्कालिक अनधिमान वक्रों की एक शृंखला प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्येक अनधिमान वक्र कोई उपयोगिता स्तर इंगित करता है और उपभोक्ता वर्तमान अवधि के उपभोग और भविष्य की अवधि के उपभोग के विभिन्न संयोजनों के बीच उदासीन अर्थात् तटस्थ होता है। किसी भी अंतर्कालिक अनधिमान वक्र का ढ़लान वर्तमान उपभोग के लिए समय अधिमान की दर को दर्शाता है, जो कि भविष्य के उपभोग और वर्तमान उपभोग के बीच प्रतिस्थापन की सीमांत दर (MRS) के सिवा और कुछ नहीं होती।

यह हम पहले ही देख चुके हैं कि यदि उपभोक्ता आज अधिक उपभोग करने का फैसला करता है तो वह कम बचत कर पाएगा। फलतः, उसकी बचत पर ब्याज कम होगा और उस बचत पर अर्जित ब्याज (अथवा वह ऋण अधिक होगा जिसे भविष्य में चुकाने की आवश्यकता होगी) भी। साथ ही, भावी उपभोग के लिए उपलब्धता कम होगी। अतः, अन्तर्कालिक अनधिमान वक्र का ढ़लान ऋणात्मक होगा।

हम मानते हैं कि भविष्य और वर्तमान उपभोग के बीच प्रतिस्थापन की सीमांत दर घट रही है। इसका तात्पर्य यह है कि वर्तमान उपभोग की प्रत्येक समान उत्तरोत्तर अतिरिक्त राशि को भविष्य के उपभोग की पहले से कम मात्रा को छोड़कर मुआवजा दिया जाना चाहिए, ताकि उपभोक्ता उसी अनधिमान वक्र पर बना रहे। इन बातों को सरल व्यष्टि अर्थशास्त्र की शब्दावली में व्यक्त करने के लिए अंतर्कालिक अनधिमान वक्र मूल के प्रति उत्तल होते हैं।

वैयक्तिक उपभोक्ता की उपयोगिता : $U = U(C_1, C_2)$

जहाँ, $MRS_{C1,\ C2} = MU_{C1} / MU_{C2} < 0$ और ह्रासमान (घटता हुआ)

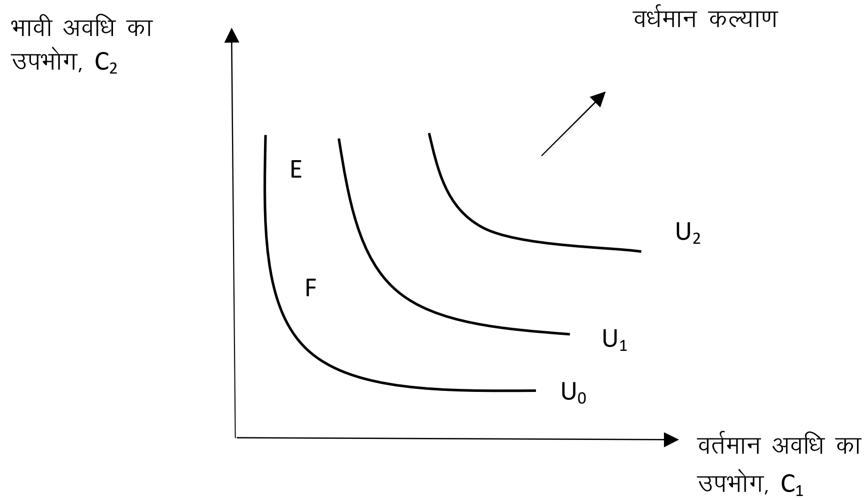

चित्र 5.3: अंतर्कालिक अनधिमान मानचित्र

अंतर्कालिक अनधिमान वक्रों की शृंखला पहली (वर्तमान) अवधि और दूसरी (भविष्य) अवधि के उपभोग पर उपभोक्ता की प्राथमिकताओं को दर्शाती है। अनधिमान वक्र जितना ऊँचा होगा, संतुष्टि अथवा कल्याण का स्तर भी उतना ही ऊँचा होगा।

यदि उपभोक्ता का एक अवधि का उपभोग बहुत अधिक है और दूसरी अवधि का उपभोग बहुत कम है तो वह अपर्याप्त या दुर्लभ वस्तु (उस अवधि का उपभोग जो उसके पास बहुत कम है) को अधिक महत्व देगा। अतः, वह अपर्याप्त या दुर्लभ वस्तु को थोड़ा और अधिक मात्रा में प्राप्त करने के लिए प्रचुर मात्रा वाली वस्तु (उस अवधि की वस्तु जो उसके पास बहुत अधिक थी) को छोड़ने के लिए तैयार हो जाएगा। यह स्पष्ट करता है कि बिंदु E और F के बीच अनधिमान वक्र इतना ढालू क्यों है।

बोध प्रश्न 1

1. प्रतिनिध्यात्मक आँकड़ों और समय–शृंखला आधारित आँकड़ों के बीच अंतर स्पष्ट करें।

   ……………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………

2. चिरकालिक गतिरोध परिकल्पना से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट करें।

   ……………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………

3. उपभोग पर प्रतिनिध्यात्मक आँकड़ों और समय–शृंखला आधारित आँकड़ों में किस प्रकार की विसंगति देखी जाती है? इसे कुज्नेत्स पहेली क्यों कहा जाता है?

....

....

....

....

....

4. मान लीजिए कि एक उपभोक्ता दो समयावधियों तक जीवित रहता है। दोनों समयावधियों में उसकी आय Y_1 और Y_2 है जबकि उसका उपभोग C_1 और C_2 है। एक अंतर्कालिक बजट बाध्यता आरेखित करें। उसके लिए उपलब्ध वैकल्पिक उपभोग स्तरों को दर्शाने के लिए एक तालिका भी प्रस्तुत करें।

....

....

....

....

....

....

5.4 उपभोक्ता की इष्टतमीकरण समस्या

केन्जियन उपयोग फलन, जो कि व्यापक प्रतिनिधित्व अध्ययन और अल्प समय–शृंखला में कारगर सिद्ध होता लगा, उपभोक्ताओं के व्यवहार संबंधी बारीकियों पर आधारित था। हालाँकि, जब केन्जियन उपभोग फलन कुज्नेत्स पहेली की व्याख्या नहीं कर सका, तो फ्रेंको मोदिग्लिआनी, मिल्टन फ्रीडमैन और रॉबर्ट हॉल जैसे अर्थशास्त्रियों ने दीर्घावधिक उपभोग फलन की प्रतीयमान सुगमता को स्पष्ट करने का प्रयास किया। उन्होंने कीन्स के व्यवहार संबंधी दृष्टिकोण को त्याग दिया और इष्टतमीकरण के मानक उपकरण का प्रयोग किया। वे इरविंग फिशर द्वारा प्रस्थापित उपभोक्ता व्यवहार के सिद्धांत पर बहुत अधिक निर्भर थे। इस तरह की इष्टतमीकरण समस्याओं में उपभोक्ता, वर्तमान उपभोग को केवल वर्तमान आय से संबद्ध मानने के विषय में अत्यंत अदूरदर्शी दृष्टिकोण रखने वाले कीन्स के उपभोक्ताओं के विपरीत दूरंदेशी एवं विवेकशील आर्थिक अभिकर्ता होते हैं।

अब जबकि हम अंतर्कालिक बजट बाध्यता और अंतर्कालिक अनधिमान वक्रों पर व्यापक चर्चा कर चुके हैं, अगला प्रश्न यह सामने आता है कि उपभोक्ता कितना उपभोग करे ताकि उसकी उपयोगिता उसके बजट निबाध के अधीन अधिकतम हो जाए? यदि हम अंतर्कालिक बजट बाध्यता और अनधिमान वक्रों को एक साथ रखते हैं तो हमें उपभोक्ता के इष्टतम उपभोग निर्णय का पूरा विश्लेषण प्राप्त हो जाता है। यह मानते हुए कि उपभोक्ता विवेकशील है और अपने कल्याण को अधिकतम करना चाहता है, वह पहली अवधि के उपभोग और दूसरी अवधि के उपभोग के ऐसे संयोजन को चुनना चाहेगा जो उसे उच्चतम

संभव अनधिमान वक्र पर रखे। यह चित्र 5.4 में दर्शाया गया है, जहाँ उपभोक्ता किफायती अंतर्कालिक उपभोग विकल्प चुनता है जो उसे अधिकतम कल्याण देता है।

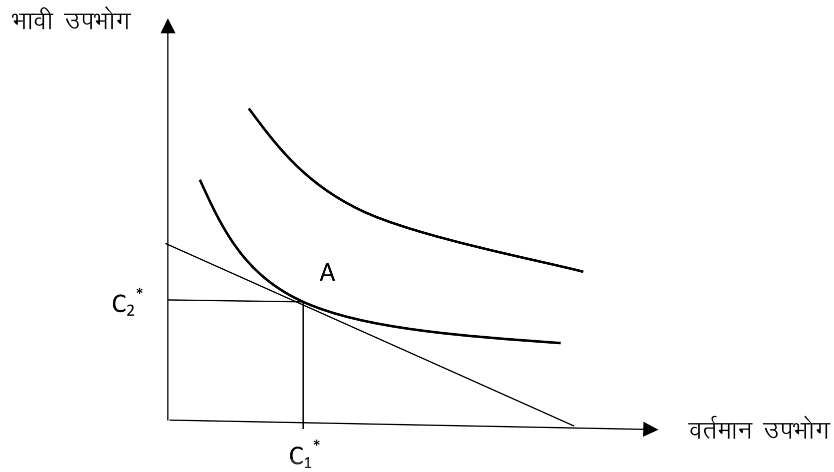

चित्र 5.4: उपभोक्ता का इष्टतम विकल्प

इष्टतम उपभोग स्तर बिंदु A पर है जहाँ एक अनधिमान वक्र अंतर्कालिक बजट लाइन को स्पर्श करता है।

उपभोक्ता उपभोग में अस्थिरता को नापसंद करते हैं – वे हर साल लगभग समान मात्रा में उपभोग पसंद करते है। यही **उपभोग समकरण** कहलाता है। इसके कारण उपभोक्ता संतुलन अनधिमान वक्र के किसी भी सिरे पर नहीं दिखाई पड़ती। निस्सन्देह, यदि उपभोक्ता वर्तमान अवधि के उपभोग का पुरजोर समर्थन करता हो तो उसकी संतुलन बजट रेखा के निचले खंड पर दिखाई पड़ेगी और इसका विपरीत भी सत्य है। इरविंग फिशर के मॉडल की एक विशिष्ट विशेषता यह है कि आर्थिक अभिकर्ता न केवल प्रतिक्रियाशील होते हैं और वर्तमान आय (केन्जियन उपभोग सिद्धांत से भिन्न) से बँधे होते हैं, वे भविष्य की आय के प्रति पूर्णतः दूरदर्शी भी होते हैं। वस्तुतः, उपभोक्ता वर्तमान अवधि का उपभोग तय करते समय भविष्य की आय को ध्यान में रखते हैं।

5.4.1 इष्टतम उपभोग पर आय में परिवर्तन का प्रभाव

अब इस बात पर चर्चा करेंगे कि कोई उपभोक्ता आय में किसी अस्थाई एकमुश्त वृद्धि के प्रति कैसे प्रतिक्रिया दिखाता है। आइए, बजट निबाध के समीकरण का स्मरण करें।

$$C_1 + C_2/(1+r) = Y_1 + Y_2/(1+r)$$ बजट बाध्यता समीकरण

यहाँ Y_1 अथवा Y_2 में कोई भी वृद्धि (ह्रास) बजट बाध्यता को बाहर की ओर (अंदर की ओर) खिसका देगी। कोई भी उच्च बजट बाध्यता उपभोक्ता को उच्च अनधिमान वक्र तक पहुँचने देता है। चित्र 5.5 उस प्रकरण की व्याख्या करता है जहाँ हम आय में वृद्धि (किसी भी अवधि की) के कारण अंतर्कालिक बजट बाध्यता का कोई बाहर की ओर खिसकाव देखते हैं। उपभोक्ता अपने उपभोग को संशोधित करता है और वर्तमान उपभोग एवं भावी उपभोग दोनों में से अधिक का चयन करता है।

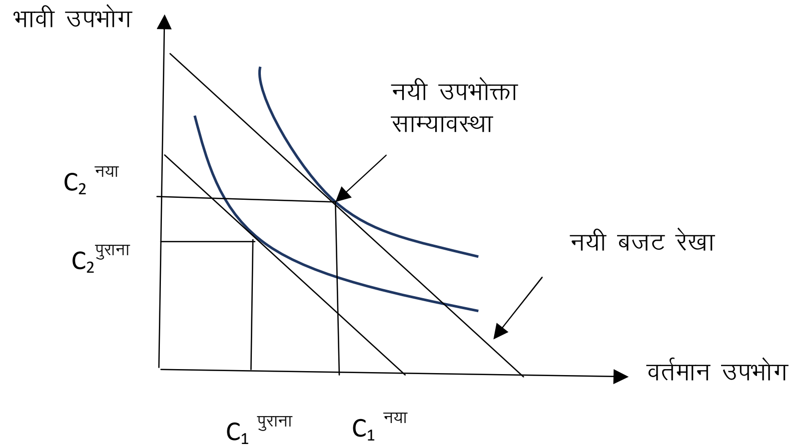

चित्र 5.5: इष्टतम उपभोग पर आय में वृद्धि का प्रभाव

वर्तमान अवधि अथवा भविष्य की अवधि की आय में वृद्धि के कारण बजट रेखा बाहर की ओर खिसक गई है। उपभोक्ता अब दोनों ही समयावधियों में अधिक उपभोग करता है।

यहाँ चित्र 5.5 में अनधिमान वक्र यह मानकर खींचे गए हैं कि दोनों अवधियों में उपभोग **सामान्य वस्तु** (अर्थात् ऐसी वस्तु जो उपभोक्ताओं की आय में वृद्धि के कारण अपनी माँग में वृद्धि का अनुभव करती है) है। यह अभिकथन बहुत सरल है, जैसा कि आरेख से स्पष्ट है, यथा – जब भी किसी अवधि की आय बढ़ती है तो सभी अवधियों का उपभोग बढ़ जाता है। इस तरह दोनों अवधियों में उपभोग पर बढ़ी हुई आय का प्रसार, इस बात की परवाह किए बिना कि किस अवधि की आय में वृद्धि होती है, उपभोग समकरण कहलाता है। ऐसा इसलिए हो रहा है कि यहाँ केन्जियन उपभोग सिद्धांत से भिन्न, उपभोक्ता दूरंदेशी है और आय में किसी भी अवधि की वृद्धि का आय के वर्तमान मूल्य पर वार्धिक प्रभाव पड़ता है। जिससे दोनों ही अवधियों में उपभोग पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।

आय का वर्तमान मूल्य = $Y_1 + Y_2 / (1+r)$

इसी प्रकार, उपभोग का वर्तमान मूल्य = $C_1 + C_2/ (1+r)$

अतः, फिशर के अंतर्कालिक मॉडल से ज्ञात होता है कि उपभोग का वर्तमान मूल्य आय प्रवाह के वर्तमान मूल्य पर निर्भर करता है। इससे हमें सिद्धांत का सामान्य संरूपण निम्नवत् प्राप्त होता है –

$$C_t = f(PV_t);\ f' > 0 \qquad \ldots (5.3)$$

ऊपर दिया गया समीकरण (5.3) दो या दो से अधिक समयावधियों के लिए अंतर्कालिक बजट बाध्यता को फिर से लिखने के सिवा और कुछ नहीं है। यहाँ चर t समयावधि को इंगित करता है। इसलिए किसी भी समयावधि का उपभोग, C_t, केवल समयावधि t की आय पर ही निर्भर नहीं करता, बल्कि वह उपभोक्ता के भावी आय–प्रवाह (जीवन भर की आय), के वर्तमान मूल्य PV_t पर भी निर्भर करता है। आप देखेंगे कि हर उपभोक्ता भावी उपभोग से उत्पन्न होने वाली भविष्य की संतुष्टि को मानसिक रूप से छूट देता है। जिस दर पर वह भविष्य की संतुष्टि को छूट देता है वह व्यक्तिपरक होती है और उपभोक्ता की प्रकृति पर निर्भर करती है।

कुछ उपभोक्ता अधीर होते हैं – वे भविष्य की समयावधि की प्रतीक्षा नहीं करना चाहते। ऐसे उपभोक्ताओं का समय अधिमान अधिक होता है और वे भविष्य की आय पर उच्चतर

छूट दर (r) लागू करते हैं। जब दोनों में से किसी भी समयावधि की आय में वृद्धि होती है तो चूँकि दोनों समयावधियों का उपभोग 'सामान्य वस्तु' है, उपभोक्ता अपनी वार्धिक आय को दोनों अवधि के उपभोग पर फैला देता है।

बहरहाल, यदि हम यह मान लें कि उपभोक्ता अधीर है तो वह वर्तमान उपभोग पर अपनी वार्धिक आय का *उच्चतर* अंश और भावी उपभोग पर निम्नतर अंश आवंटित करेगा। दूसरी ओर, यदि उपभोक्ता द्वारा दी जाने वाली भविष्य में छूट की दर शून्य हो और दोनों में से किसी भी अवधि में आयवृद्धि होती हो तो उपभोक्ता अपनी वार्धिक आय को दोनों ही अवधियों के उपभोग पर *समान रूप से* आवंटित कर देता है।

5.4.2 इष्टतम उपभोग पर ब्याज दर में परिवर्तन का प्रभाव

अंतर्कालिक इष्टतमीकरण में ब्याज दर उपभोग के स्तर पर एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उपभोग पर ब्याज दर का प्रभाव, बहरहाल, कुछ जटिल होता है। फिशर के मॉडल से पता चलता है कि उपभोक्ता के अधिमानों के आधार पर वास्तविक ब्याज दर में परिवर्तन उपभोग बढ़ा अथवा घटा सकता है।

वर्तमान समय अवधि में उपभोक्ता दो प्रकार के होते हैं –

1. वह जो अपनी वर्तमान समयावधि की आय की तुलना में वर्तमान समयावधि में अधिक खर्च करता है (अर्थात् वर्तमान अवधि में उस पर कुछ उधार है), और
2. वह जो वर्तमान समयावधि में अपनी आय से कम खर्च करता है (अर्थात् चालू अवधि में कुछ बचत करता है)।

तदनुसार, पहले मामले में वह एक *वास्तविक ऋणग्राही* है और दूसरे मामले में वह एक *वास्तविक ऋणदाता* है।

हम यहाँ चर्चा के लिए दूसरे उदाहरण को लेंगे, यथा जहाँ उपभोक्ता एक वास्तविक ऋणदाता है। प्रथम उदाहरण (वास्तविक ऋणग्राही) एक असाइनमेंट मानकर आप स्वयं हल करने का प्रयास करें।

आइए, एक बार फिर से अंतर्कालिक बजट बाध्यता पर नजर डालें –

$$C_1 + C_2/(1+r) = Y_1 + Y_2/(1+r) \qquad \ldots (5.2)$$

चलिए, उस उदाहरण को लेते हैं जहाँ वास्तविक ब्याज दर में वृद्धि हुई है। बजट रेखा का ढ़लान

$(1 + r)$ है, इसलिए ढ़लान में वृद्धि होती है (पहली अवधि में बचत की समान राशि के साथ उपभोक्ता अब अधिक ब्याज अर्जित करता है, जिससे दूसरी अवधि में उसका उपभोग बढ़ जाता है)।

याद रखें कि किसी भी अवधि की आय में कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है – केवल ब्याज दर में वृद्धि हुई है। अब आय प्रवाह (Y_1, Y_2) वाले किसी व्यक्ति पर विचार करें। यदि उसका उपभोग (Y_1, Y_2) हो तो वह चित्र 5.6 में बिंदु P पर होगा। बहरहाल, जैसा कि हमने माना है, वह वास्तविक ऋणदाता है। अतः, नई बजट रेखा चित्र 5.6 में बिंदु P से होकर गुजरेगी और ब्याज दर में वृद्धि नई बजट रेखा का ढ़लान बढ़ाएगी। अंतर्कालिक बजट निबाध बिंदु P से दाई ओर घूमता है।

चित्र 5.6 में उपभोक्ता वर्तमान समयावधि में एक वास्तविक ऋणदाता है। इसका सीधा–सा मतलब है कि उसकी वर्तमान अवधि का उपभोग (C_1) उसकी वर्तमान अवधि की आय (Y_1) से कम है।

ब्याज दर में वृद्धि उक्त दोनों समयावधियों में उसके उपभोग को कैसे प्रभावित करेगी? कुल प्रभाव को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, यथा – आय प्रभाव और प्रतिस्थापन प्रभाव।

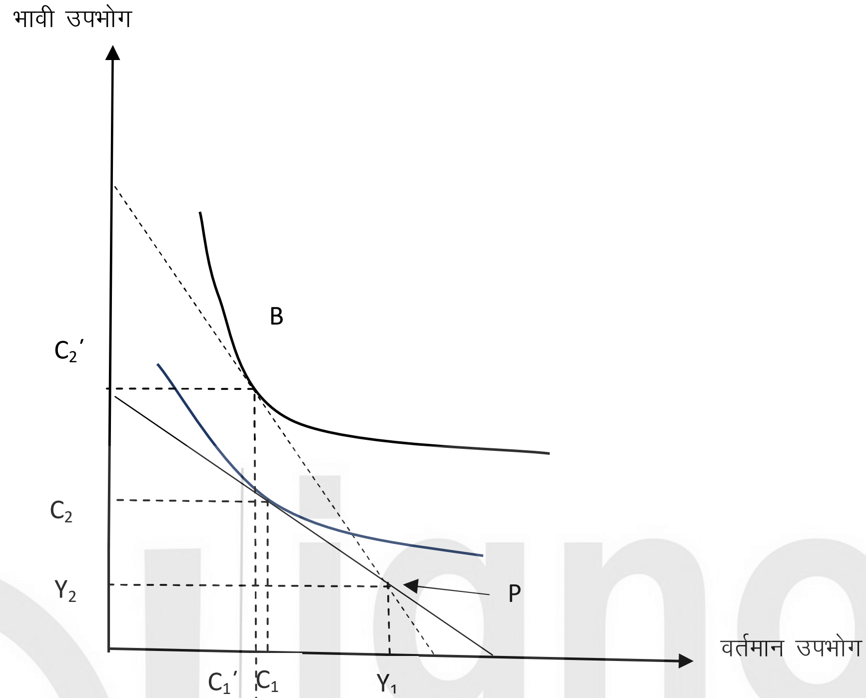

चित्र 5.6: ब्याज दर में वृद्धि का प्रभाव

जब उपभोक्ता वर्तमान समयावधि में एक वास्तविक ऋणदाता होता है तो ब्याज दर में वृद्धि से उसकी वर्तमान अवधि का उपभोग कम हो जाता है और उसकी भावी अवधि का उपभोग बढ़ जाता है।

प्रतिस्थापन प्रभाव : प्रतिस्थापन प्रभाव उपभोग में उस परिवर्तन को कहा जाता है जो दोनों ही समयावधियों में उपभोग के सापेक्ष मूल्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता है। जब ब्याज की दर बढ़ जाती है तो प्रत्येक इकाई जो वह बचाता है, उसे भावी अवधि में पहले की तुलना में अधिक उपभोग करने में सक्षम बनाती है। इसी कारण वर्तमान उपभोग की अवसर लागत अथवा वर्तमान उपभोग की सापेक्ष कीमत, जो कि $(1 + r)$ है, बढ़ गई है। इसी तर्क के अनुसार भविष्य के उपभोग का सापेक्ष मूल्य, $1/(1+r)$ नीचे चला गया है। प्रतिस्थापन प्रभाव उपभोक्ता को वर्तमान अवधि का उपभोग कम करने और भावी अवधि का उपभोग बढ़ाने के लिए प्रभावित करेगा।

आय प्रभाव : उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के कारण दोनों ही समयावधियों में उपभोग में आने वाला परिवर्तन आय प्रभाव कहलाता है। यहाँ यद्यपि न तो Y_1 में और न ही Y_2 में वृद्धि हुई है, फिर भी ध्यान रखें कि उपभोक्ता एक वास्तविक ऋणदाता अथवा बचतकर्ता है। अतः जब ब्याज की दर बढ़ती है तो उसकी बचत पर ब्याज आय में वृद्धि होती है। साथ ही, उसकी जीवन भर की आय के प्रवाह में भी वृद्धि हुई है। चूँकि हम मानकर चले हैं कि उपभोग एक सामान्य वस्तु है, आय प्रभाव दोनों ही अवधियों में उपभोगवृद्धि करेगा।

उपभोक्ता का चयन आय प्रभाव और प्रतिस्थापन प्रभाव दोनों पर निर्भर करती है। दोनों प्रभावों का भावी अवधि के उपभोग पर वार्धिक प्रभाव पड़ता है। अतः, स्पष्ट रूप से भावी अवधि के उपभोग में वृद्धि होगी। बहरहाल, वर्तमान अवधि के उपभोग के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता है। चित्र 5.6 में हमने उस उदाहरण को दर्शाया है जिसमें प्रतिस्थापन

प्रभाव आय प्रभाव पर हावी है। तदनुसार, उच्चतर ब्याज दर उपभोक्ता के वर्तमान अवधि के उपभोग को कम कर देती है।

उसी उपमान को लागू करते हुए हम उपभोक्ता के वास्तविक ऋणग्राही होने के उदाहरण का विश्लेषण कर सकते हैं। हम उपभोग पर ब्याज दर में कमी के प्रभाव का भी विश्लेषण कर सकते हैं। इन्हें अभ्यास के रूप में छोड़ दिया गया है, जो कि आप स्वयं करेंगे।

5.4.3 ऋणादान बाध्यता

हम यह मानकर चले थे कि उपभोक्ता वर्तमान समयावधि में वास्तविक ऋणदाता (बचतकर्ता) अथवा वास्तविक ऋणग्राही हो सकता है। जब वह एक वास्तविक ऋणग्राही होता है तो वह अपने भविष्य का कुछ उपभोग वर्तमान समयावधि में ही कर लेता है। परंतु वास्तव में, एक सीमा होती है जहाँ तक उपभोक्ता उधार ले सकता है। इसे ही 'ऋणादान बाध्यता' कहा जाता है। अतः, अंतर्कालिक बजट निबाध के अतिरिक्त उपभोक्ता को निम्नलिखित ऋणादान बाध्यता का भी सामना करना पड़ता है –

$$C_1 \leq Y_1 \qquad \dots (5.4)$$

उपर्युक्त दोनों बाध्यता, समीकरण (5.2) और (5.4), उपभोक्ता की चयन समूह को छोटा करते हैं। चित्र 5.7 का छायांकित क्षेत्र उपभोक्ता की इसी सीमित चयन समूह को दर्शाता है।

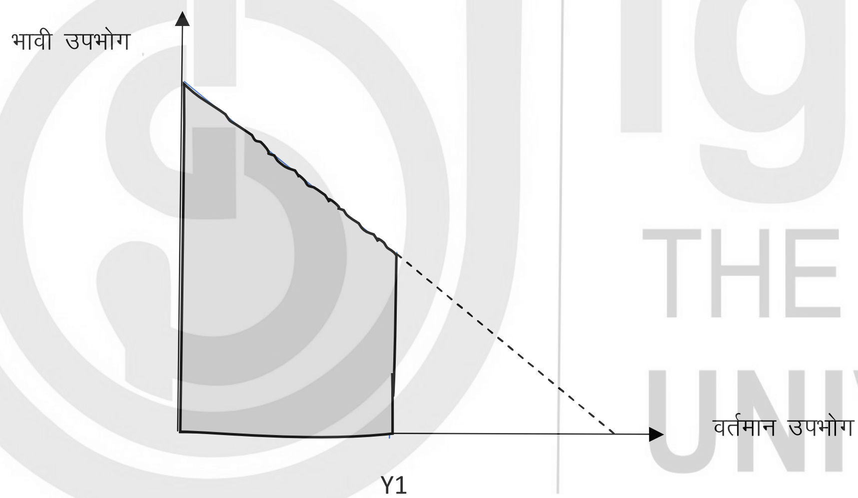

चित्र 5.7: ऋणादान बाध्यता के अनुसार उपभोग चयन समूह

ऋणादान निबाध का सामना कर रहे उपभोक्ता के पास दोनों अवधियों के लिए उपभोग के अपने विकल्पों के रूप में छायांकित क्षेत्र होगा।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, उपभोक्ता दो प्रकार के होते हैं – वास्तविक बचतकर्ता और वास्तविक ऋणग्राही। इनमें से पहले प्रकार का उपभोक्ता वर्तमान समयावधि में अपनी आय से कम खपत करता है। दूसरी ओर, दूसरे प्रकार का उपभोक्ता वर्तमान समयावधि में अपनी आय से अधिक का उपभोग करता है। ऋणादान बाध्यता दोनों प्रकार के उपभोक्ताओं पर समान रूप से लागू होता है। इनमें एकमात्र अंतर यह है कि जब उपभोक्ता वास्तविक बचतकर्ता होता है तो उसे ऋणादान बाध्यता का आघात नहीं सहना पड़ता और उसके संतुलन बिंदु में कोई बदलाव नहीं होता। तदनुसार, ऋणादान बाध्यता वास्तविक बचतकर्ता पर बाध्यकारी नहीं होता (देखें चित्र 5.8)। दूसरी ओर, यदि उपभोक्ता एक वास्तविक ऋणग्राही है तो वह पहली अवधि में अपनी आय से अधिक का उपभोग करना चाहेगा, किंतु वह ऋणादान बाध्यता के कारण ऐसा नहीं कर सकता है। अतः, वह

पहली अवधि की आय से अपनी पहली अवधि के उपभोग को सीमित करने के लिए बाध्य होगा। इस प्रकार, ऋणादान बाध्यता वास्तविक ऋणग्राही पर बाध्यकारी होता है (देखें चित्र 5.9)।

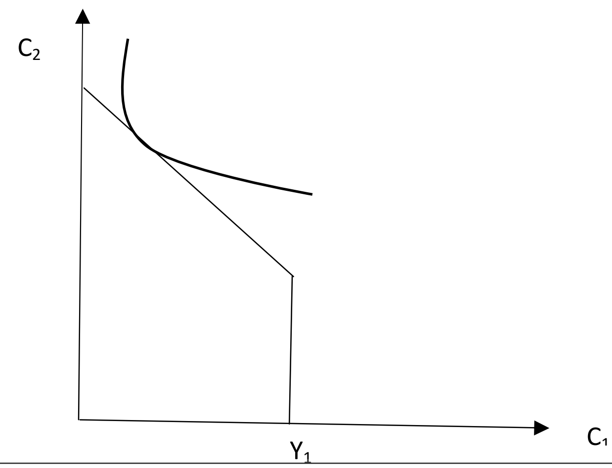

चित्र 5.8: ऋणादान बाध्यता बाध्यकारी नहीं है
उपभोक्ता पहली अवधि के उपभोग को आय से कम रखने का विकल्प चुनता है। इसलिए, ऋणादान बाध्यता उस पर बाध्यकारी नहीं होगा और संतुलन उपभोग अप्रभावित रहेगा।

एक बहुत ही रोचक तथ्य पर ध्यान दें। जब उपभोक्ता वास्तविक बचतकर्ता होता है तो ऋणादान निबाध उसके सामने होता है, परंतु यह बाध्यकारी नहीं होता। अतः उसे पहले की तरह केवल अंतर्कालिक बजट बाध्यता का ही सामना करना पड़ता है। इसी कारण दोनों अवधियों का उसका उपभोग उसकी आजीवन आय के वर्तमान मूल्य अर्थात् $Y_1+Y_2/(1+r)$ पर निर्भर करता है। दूसरी ओर, जब उपभोक्ता पहली अवधि में वास्तविक ऋणग्राही होता है तो ऋणादान निबाध उसके लिए बाध्यकारी होता है। इस स्थिति में ऋणादान निबाध की विद्यमानता के कारण उपभोक्ता को अपनी वर्तमान खपत को अपनी वर्तमान आय तक सीमित रखने के लिए बाध्य किया जाता है। अतः उसका उपभोग फलन $C_1 = Y_1$ और $C_2 = Y_2$ के रूप में लिखा जाएगा। यह बिल्कुल केन्जियन उपभोग फलन जैसा दिखता है, जहाँ उपभोग वर्तमान आय पर निर्भर करता है।

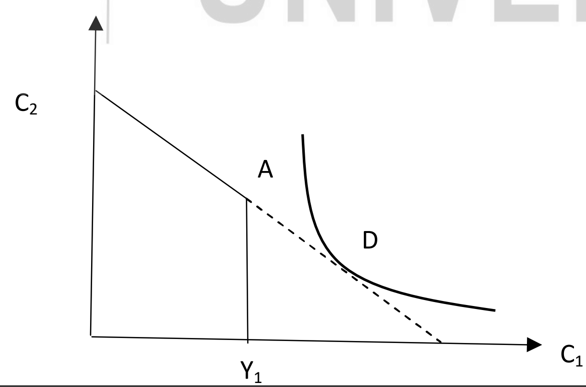

चित्र 5.9: ऋणादान निबाध बाध्यकारी है
उपभोक्ता अपनी आय से अधिक उपभोग करना चाहता है और संतुलन बिंदु D चुन लेता है। परंतु ऋणादान बाध्यता के कारण वह बिंदु A पर पहली अवधि के सर्वोत्तम उपलब्ध उपभोग अर्थात् पहली अवधि की आय को चुनने के लिए मजबूर है। अतः ऋणादान बाध्यता उस पर बाध्यकारी है।

बोध प्रश्न 2

1. फिशर के दो–आवधिक मॉडल में यह मान लिया जाता है कि उपभोग एक 'सामान्य वस्तु' है और उपभोक्ता एक वास्तविक ऋणग्राही है। यदि ब्याज दर में वृद्धि होती है तो दोनों समयावधियों के उपभोग पर इसके प्रभाव का विश्लेषण कीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

2. मान लीजिए कि फिशर के दो–आवधिक मॉडल में उपभोक्ता पहली अवधि में एक वास्तविक ऋणग्राही है। यदि ब्याज दर घटती है तो दोनों समयावधियों में आय और उपभोग पर प्रतिस्थापन प्रभावों की चर्चा कीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

5.5 सार संक्षेप

इस इकाई में हमने उपभोग सिद्धांत की पारंपरिक केन्जियन अवधारणा से विचलन का अध्ययन किया। मूल केन्जियन मॉडल में उपभोग वर्तमान आय पर निर्भर करता है और सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC) का मान औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC) से कम होता है।

केन्जियन मॉडल मुख्य रूप से एक अल्पावधिक मॉडल है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, अमेरिकी अर्थव्यवस्था पर लंबे समय के आँकड़ो पर किए गए कुज्नेत्स के उपभोग सिद्धांत ने केन्जियन प्रस्थापना को अमान्य घोषित कर दिया। यह अर्थशास्त्रियों और नीति–निर्माताओं के लिए एक पहेली अथवा विरोधाभास के रूप में सामने आया।

कुज्नेत्स की पहेली का उत्तर खोजने की कोशिश में फ्रेंको मोदिग्लिआनी, अल्बर्ट एंडो, रिचर्ड ब्रमबर्ग, मिल्टन फ्रीडमैन और रॉबर्ट हॉल जैसे अनेक अर्थशास्त्रियों ने उपभोग फलन की विशेषताओं का अध्ययन करने के लिए उपभोक्ता व्यवहार के फिशर मॉडल का इस्तेमाल किया। फिशर ने एक नयी अवधारणा प्रस्तुत की, जहाँ उपभोक्ता अंतर्कालिक बजट निबाध के अधीन अपने आजीवन उपयोगिता फलन को इष्टतम करते हैं। फिशर के अनुसार, उपभोग व्यक्ति की आजीवन आय पर निर्भर करता है।

5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1. समय–शृंखला आधारित आँकड़े आमतौर पर असतत और समान दूरी वाले समय अंतरालों पर एकत्र किए गए अवलोकनों का एक समूह होता है। यह समय की अवधि में आँकड़ो का समूह कहा जा सकता है। दूसरी ओर, प्रतिनिध्यात्मक आँकड़े ऐसे अवलोकन होते हैं जो किसी एक ही समय–बिंदु पर अलग–अलग व्यक्तियों या समूहों से आते हैं।

2. केन्जियन उपभोग फलन के अनुसार, आय बढ़ने पर उपभोक्ता की औसत प्रवृत्ति (APC) में गिरावट आती है। इसके परिणामस्वरूप, बचत करने की औसत प्रवृत्ति (APS) बढ़ेगी। यह प्रवृत्ति निवेश के अवसरों में गिरावट के साथ आती है, जिससे उत्पादन में गतिरोध देखा जाएगा। पाठांश 5.2.1 का अध्ययन करें और उत्तर दें।

3. प्रतिनिध्यात्मक आँकड़ों के अनुसार $MPC < APC$ होता है। दीर्घावधिक आँकड़ों के अनुसार $MPC = APC$ होता है। इसे ही कुज्नेत्स पहेली कहा जाता है क्योंकि इसे सबसे पहले साइमन कुज्नेत्स ने सामने रखा था। विस्तृत विवरण के लिए पाठांश 5.2 देखें।

4. देखें चित्र 5.2 व तालिका 5.1 और विश्लेषण करें।

बोध प्रश्न 2

1. यहाँ उपभोक्ता एक वास्तविक ऋणग्राही है और ब्याज दर में वृद्धि हुई है। ब्याज दर में वृद्धि से उपभोक्ता की आजीवन आय का प्रवाह कम हो जाएगा (चूँकि भविष्य की आय का वर्तमान मूल्य कम है, यह छूटप्राप्त है)। चूँकि हम मानते हैं कि उपभोग एक 'सामान्य वस्तु' है, आय प्रभाव के कारण दोनों समयावधियों में उपभोग में सापेक्ष गिरावट आएगी। प्रतिस्थापन प्रभाव के परिणामस्वरूप वर्तमान अवधि उपभोग घट जाएगा और भावी अवधि के उपभोग में वृद्धि होगी। आय प्रभाव के कारण दोनों ही अवधियों का उपभोग घट जाएगा। यदि प्रतिस्थापन प्रभाव आय प्रभाव से अधिक मजबूत होगा तो वर्तमान अवधि के उपभोग में स्पष्ट रूप से गिरावट आएगी और भावी अवधि के उपभोग में वृद्धि होगी। आरेख चित्र 5.6 के अनुसार बनाएँ।

2. यदि उपभोक्ता वर्तमान समयावधि में वास्तविक ऋणग्राही है तो उसका वर्तमान उपभोग व्यय वर्तमान अवधि की आय से अधिक है। जैसे–जैसे ब्याज की दर घटती है, वर्तमान उपभोग की अवसर लागत कम होती जाती है और भविष्य के उपभोग की सापेक्ष कीमत बढ़ जाती है। प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण उपभोक्ता वर्तमान अवधि में पहले की तुलना में अधिक और भविष्य की अवधि में पहले की तुलना में कम उपभोग करेगा। चूँकि उपभोक्ता एक वास्तविक ऋणग्राही है, ब्याज दर में कमी उसे अमीर बनाती है। इस प्रकार, आय प्रभाव के कारण भविष्य के उपभोग और वर्तमान उपभोग दोनों में ही वृद्धि हो सकती है। यदि प्रतिस्थापन प्रभाव आय प्रभाव से अधिक मजबूत है तो वर्तमान उपभोग में वृद्धि होगी और भावी उपभोग में गिरावट आएगी। दूसरी ओर, यदि आय प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव से अधिक मजबूत है तो वर्तमान उपभोग और भावी उपभोग दोनों में ही वृद्धि होगी। यह निश्चय ही बेहतर होगा कि यदि आप इसी के लिए आरेख बनाने का प्रयास करें और उसका प्रभाव स्वयं देखें।

इकाई 6 अंतर्कालिक चयन – II*

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 जीवन–चक्र परिकल्पना
   6.2.1 परिकल्पना वर्णन
   6.2.2 परिकल्पना का गणितीय विवेचन
   6.2.3 परिकल्पना की कमियाँ
6.3 स्थायी आय परिकल्पना
   6.3.1 परिकल्पना वर्णन
   6.3.2 परिकल्पना के निहितार्थ
   6.3.3 परिकल्पना की कमियाँ
6.4 सार–संक्षेप
6.5 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस स्थिति में होंगे कि–

- विभिन्न देशों में बचत दर में भिन्नता के कारण स्पष्ट कर सकें;
- उपभोग के निर्धारक तत्व पहचान सकें;
- उपभोग और आय के बीच गतिशील/गत्यात्मक संबंध पर प्रकाश डाल सकें;
- जीवन–चक्र परिकल्पना के मुख्य अभिलक्षण बता सकें; तथा
- स्थायी आय परिकल्पना के मुख्य अभिलक्षण बता सकें।

6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में यह बताया गया था कि प्रतिनिध्यात्मक आँकड़ों पर आधारित उपभोग फलन की आकृति समय–शृंखला आँकड़ों के आधार पर आकलित उपभोग फलन से भिन्न होती है। किसी भी समय–बिंदु पर परिवार संबंधी सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि MPC < APC अर्थात् सीमांत उपभोग प्रवृत्ति का मान औसत उपभोग प्रवृत्ति के मान से कम होता है। हालाँकि, दीर्घावधिक समय–शृंखला आँकड़ों से पता चलता है कि MPC = APC अर्थात् उक्त दोनों मान बराबर होते हैं। तदनुसार, दीर्घावधिक समय–शृंखला आँकड़ों के आधार पर किया गया विश्लेषण कीन्स के उपभोग संबंधी मौलिक मनोवैज्ञानिक नियम के अनुरूप नहीं होता। इस विसंगति को 'कुज्नेत्स पहेली' के रूप में जाना जाता है क्योंकि इसे सर्वप्रथम अमेरिकी अर्थशास्त्री साइमन कुज्नेत्स द्वारा प्रस्तुत किया गया था। अब तक अल्पावधिक उपभोग फलन और दीर्घावधिक उपभोग फलन की आकृतियों के बीच असंगति को दूर करने के अनेक प्रयास किए जा चुके हैं। इस इकाई में हम दो परिकल्पनाओं पर चर्चा करेंगे, यथा –

1. जीवन–चक्र परिकल्पना, और
2. स्थायी आय परिकल्पना।

* सुश्री वैशाखी मंडल, सहायक प्राध्यापक, इंद्रप्रस्थ महिला कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

6.2 जीवन–चक्र परिकल्पना

अमेरिकी अर्थशास्त्री इरविंग फिशर के दो–आवधिक अंतर्कालिक मॉडल (1930) के अनुरूप सन 1950 के दशक में फ्रेंको मोदिग्लिआनी, रिचर्ड ब्रमबर्ग और अल्बर्ट एंडो ने अपने अध्ययनों की शृंखला के माध्यम से 'लाइफ साइकिल हाइपोथिसिस' (LCH) नामक एक मॉडल विकसित किया जिसे हम 'जीवन–चक्र परिकल्पना' के रूप में समझेंगे। इस परिकल्पना के अनुसार, सभी व्यक्ति अपनी आजीवन उपयोगिता को अधिकतम करते हैं। इस मॉडल में हम किसी ऐसे प्रतिनिधि उपभोक्ता पर विचार करते हैं जो विवेकशील और दूरदर्शी है। वह अपने जीवनकाल के संसाधनों (श्रम आय के वर्तमान मूल्य और वसीयत, यदि कोई हो) के आधार पर किसी भी समयावधि में उपभोग पर अपने संसाधनों को इष्टतम रूप से आवंटित करता है, अपनी आय के वर्तमान स्तर पर बिल्कुल भी नहीं। जीवन–चक्र परिकल्पना बताती है कि *'बचत के महत्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक सेवानिवृत्ति के लिए प्रावधान करने की आवश्यकता होती है'*। आपको ध्यान से देखने पर ज्ञात होगा कि आय लोगों के जीवनकाल में लगातार भिन्न–भिन्न होती है। लोग उच्च आय के चरण के दौरान बचत करते हैं ताकि वे जीवन भर अपने उपभोग पथ को सुचारु बनाए रख सकें।

6.2.1 परिकल्पना वर्णन

वह आधारभूत (अपेक्षाकृत अधिक नियमनिष्ठ संस्करण) मॉडल जो बचत और धन के जीवन–चक्र पथ का वर्णन करता है, उपभोक्ता के अवसरों और अधिमानों के विषय में विभिन्न शैलीगत अवधारणाएँ प्रस्तुत करता हैं। ये अवधारणाएँ निम्नवत् हैं –

1. प्रतिनिधि उपभोक्ता की आय उसकी सेवानिवृत्ति तक स्थिर रहती है और उसके बाद शून्य हो जाती है।
2. उपभोक्ता विवेकशील और दूरदर्शी होता है। उसका एक सीमित जीवनकाल होता है।
3. उपभोक्ता जीवन भर स्थिर उपभोग करना पसंद करता है।
4. उपभोक्ता वसीयत के उद्देश्य से कुछ भी नहीं छोड़ता है।

किसी भी व्यक्ति के लिए सेवानिवृत्ति को आय विभिन्नता/परिवर्तन के प्रमुख स्रोतों में एक गिना जाता है। अधिकांश लोग रिटायर होने पर आय में गिरावट की उम्मीद करते हैं (हमारे मूल मॉडल में यह गिरकर शून्य हो जाती है)। फिर भी वे उपभोग के लिहाज से लगभग एक ही जीवन शैली (हमारे मूल मॉडल में यह पूर्णतः वही है) बनाए रखना चाहते हैं। सेवानिवृत्ति के बाद उसी जीवन शैली को बनाए रखने का एकमात्र तरीका उनके काम के वर्षों के दौरान बचत करना होता है। इस तरह की बचत को 'ककुद बचत' या 'हम्प सेविंग' कहा जाता है अर्थात् ऐसी बचत जो जीवन के किसी बाद के चरण में खर्च करने में सक्षम होने के लिए की जाती है।

मान लीजिए कि हमारे प्रतिनिधि उपभोक्ता ने 20 वर्ष की आयु में काम करना शुरू कर दिया और 65 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्त हो गया। साथ ही, मान लें कि उसके 85 वर्ष तक जीवित रहने की आशा है और वह सेवानिवृत्त होने तक प्रति वर्ष Y (श्रम आय) अर्जित करने की अपेक्षा करता है। जब उसने 20 वर्ष की आयु में काम शुरू किया तो उनके पास W संपत्ति थी।

उसके कामकाजी जीवन की अवधि = $(65 - 20) = 45 = WL$

आजीवन संसाधन = कामकाजी जीवन अवधि × औसत श्रम आय = $WL \times Y$

20 वर्ष की आयु से गिनते हुए, वह कितनी अवधि जीवित रहता है

$= NL = (85 - 20) = 65$ वर्ष

व्यक्ति को अपने जीवनकाल (NL) में अपने आजीवन संसाधनों (WL × Y) का प्रसार करना चाहिए ताकि वह स्वयं को वार्षिक उपभोग C = (WL × Y) / NL की अनुमति दे सके।

इन परिस्थितियों में उपभोक्ता को अपने जीवन के पहले हिस्से में धन की कुछ पूँजी (सेवानिवृत्ति बीमा) जमा करने के लिए औसतन बचत करनी चाहिए, जो कि अंततः उसके जीवन के बाद के हिस्से में निर्बचत अर्थात् ऋणात्मक बचत के माध्यम से उपभोग का वहन करने के लिए उपयोग किया जाएगा।

नीचे दिए गए चित्र 6.1 में हमने उपभोक्ता की उसके जीवनकाल में आय, उपभोग और धन–संपत्ति का निरूपण किया है। इस आकृति में चटक नारंगी रेखा आय के प्रवाह को इंगित करती है, जो कि सेवानिवृत्ति पर रुक जाती है। उपभोक्ता काम के वर्षों के दौरान बचत करता है ताकि वह जीवन भर उपभोग (फीकी नारंगी रेखा) का स्थिर स्तर बनाए रखे।

अवर्धमान जनसंख्या की अवधारणा यह दर्शाती है कि युवा जनसंख्या का आकार लगभग वृद्ध जनसंख्या के समान ही है। उपर्युक्त का निहितार्थ यह है कि बचत की कुल दर शून्य होगी क्योंकि अपेक्षाकृत युवा परिवारों की सकारात्मक बचत सेवानिवृत्त परिवारों की निर्बचत से प्रतिसंतुलित होगी। धन–संपत्ति कुल मिलाकर स्थिर रहेगी, हालाँकि इसे अबचतकर्ताओं से बचतकर्ताओं को लगातार हस्तांतरित किया जा रहा है। अब मान लेते हैं कि उपभोक्ता के जीवन को तीन चरणों में बाँटा गया है, यथा – युवा, मध्यम आयु और वृद्धावस्था (मॉडल के गणितीय निरूपण में, अगले पाठांश में, हम इसे आगे t समयावधि तक बढ़ाएँगे)।

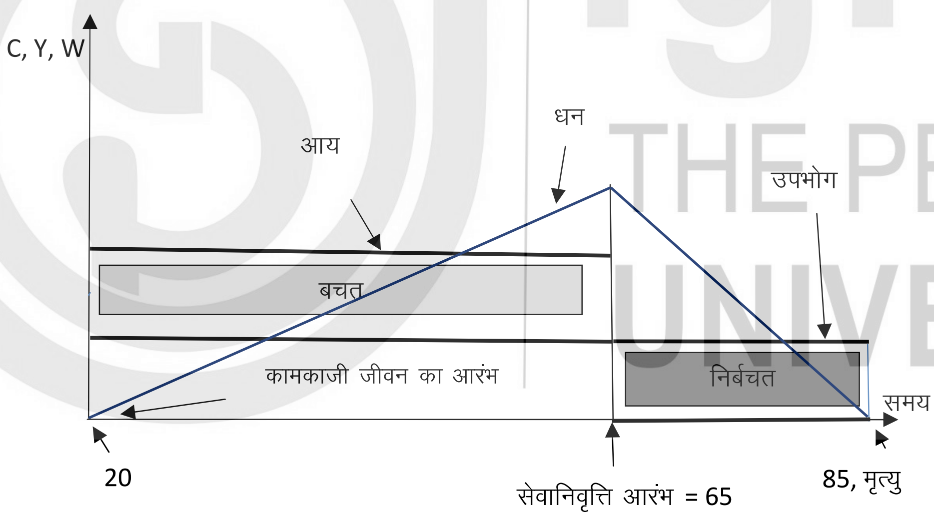

चित्र 6.1: अपने जीवन–चक्र पर उपभोक्ता का धन संचय
उपभोक्ता जीवन भर समकृत (नियत) उपभोग करना पसंद करता है। वह अपने काम के वर्षों के दौरान धन बचाता और जमा करता है। वह अपनी सेवानिवृत्ति के वर्षों के दौरान बिना किसी वसीयत के शून्य बचत के साथ सारा धन समाप्त कर देता है।

अब (चित्र 6.2) उपभोक्ता पहले दो चरणों के दौरान काम करता है और तीसरे चरण के दौरान एक सेवानिवृत्त जीवन व्यतीत करता है। युवावस्था में, जब उपभोक्ता ने अभी–अभी काम शुरू किया है, उसकी आय कम है। जैसा कि वह जानता है कि वह अपनी मध्यम आयु के दौरान अधिक कमाएगा, वह युवावस्था के दौरान बचत न (निर्बचत)करने की प्रवृत्ति रखेगा। मध्यम आयु के वर्षों में उसकी आय चरम पर पहुँच जाती है और व्यक्ति अपने पहले के ऋणों को चुकाने और सेवानिवृत्ति के वर्षों के लिए बचत करता है। जब कोई व्यक्ति अपने जीवन के सेवानिवृत्ति चरण में पहुँचता है तो उसकी आय (पेंशन, जो कि उसे

अपने पिछले काम के कारण प्राप्त होती है) में काफी गिरावट आती है और वह इसे काम के वर्षों के दौरान की गई बचत से पूरा करता हैं। अतएव, निर्बचत की दो अवधियाँ होती हैं यथा –

1. प्रारंभिक कार्य वर्ष (युवावस्था चरण) और
2. सेवानिवृत्ति चरण।

इसका तात्पर्य है कि बचत का केवल एक चरण होता है, यथा मध्यम आयु। इसीलिए, किसी भी व्यक्ति की बचत जीवन–चक्र में उसके चरण से निर्धारित होती है।

चलिए, मान लेते हैं कि भविष्य की उपयोगिता का वर्तमान मूल्य जो प्रतिनिधि उपभोक्ता को भविष्य के उपभोग से प्राप्त होना चाहिए, उसे δ दर पर छूट दी गई है। जब कोई उपभोक्ता वर्तमान उपभोग की कोई इकाई छोड़ देता है तो वह इकाई बचत हो जाती है। बचत से प्राप्त प्रतिफल 'r' होता है और यह उपभोक्ता को भविष्य के उपभोग की r इकाइयों का आनंद लेने की अनुमति देता है।

यदि $\delta < r$ तो अंतर्कालिक उपभोग संबंध से पता चलता है कि अपने भावी उपभोग के लिए बचत करना लाभकर होता है। इस प्रकार, व्यक्तिगत उपभोक्ता का उपभोग पथ समय के साथ बढ़ा हुआ रहेगा।

नीचे दिए गए चित्र 6.2 में हम उपभोग, आय और धन को y-अक्ष पर मापते हैं, जबकि x-अक्ष समय को दर्शाता है। हम एक धनात्मक ढ़लान वाली उपभोग रेखा का भी चित्रण करते हैं। आय रेखा उल्टे-U आकार की लाल रेखा द्वारा दर्शायी जाती है। आप देखेंगे कि पहले और तीसरे चरण में उपभोग रेखा आय रेखा से ऊपर है। तदनुसार, यहाँ निर्बचत दृष्टिगत होती है। इसके विपरीत, दूसरे चरण में आय उपभोग से अधिक है। तदनुसार, यहाँ बचत नजर आती है।

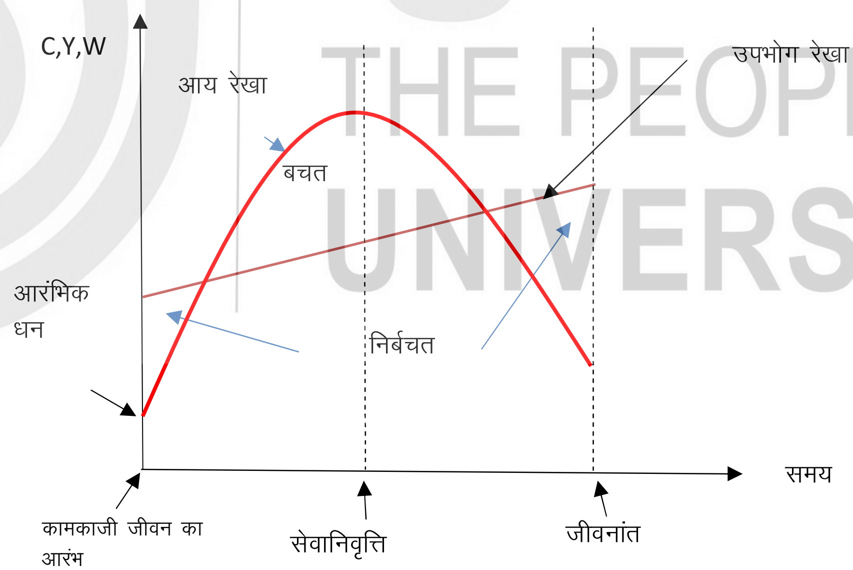

चित्र 6.2: किसी व्यक्ति के जीवन–चक्र में उपभोग, बचत और आय
प्रत्येक समय–बिंदु पर किसी व्यक्ति का उपभोग और बचत निर्णय, उसकी बाध्यताओं के अधीन समग्र जीवन–चक्र पर उपभोग के अपने पसंदीदा वितरण को प्राप्त करने के लिए उसके सचेत प्रयास को दर्शाता है।

किसी भी स्थिर अर्थव्यवस्था में शून्य निवल कुल बचत की मूल अवधारणा का अर्थ होता है कि धन का कुल पूँजी कालांतर में स्थिर रहेगा। मान लीजिए कि हम अर्थव्यवस्था की जनसंख्या को बढ़ने देते हैं, परंतु बिना किसी वसीयत के जीवन भर स्थिर आय और उपभोग की मूल अवधारणाओं को कायम रखते हैं। ऐसी स्थिति में, संचय चरण में युवा

जनसंख्या का अनुपात, निर्बचत चरण में वृद्ध जनसंख्या की तुलना में अधिक रहेगा। यह बचत के सकारात्मक निवल कुल प्रवाह को जन्म देगा, साथ ही, धन के भंडार में भी वृद्धि होगी।

अब मान लेते हैं कि जनसंख्या वृद्धि नहीं हुई है, परंतु उत्पादकता में वृद्धि के कारण समय के साथ आय में वृद्धि हुई है। फलतः, एक के बाद एक सहगण (आयु वर्ग) पिछले वाले की तुलना में अधिक आय अर्जित करेंगे। इस प्रकार, प्रत्येक क्रमिक सहगण पहले के सहगण की तुलना में उच्चतर स्तर पर उपभोग का आनंद लेगा (हालाँकि उपभोग स्तर उस सहगण के पूरे जीवन में स्थिर रहता है)। परिणामतः, किसी भी सक्रिय सहगण का लक्ष्य वर्तमान सेवानिवृत्त सहगण के उपभोग स्तर की तुलना में अपने लिए एक अधिक उपभोग पथ रखना होगा।

उपभोग के उक्त अधिक स्तर को बनाए रखने के लिए सक्रिय परिवारों को वर्तमान सेवानिवृत्त परिवारों के निर्बचत से अधिक के पैमाने पर बचत करनी होगी। इसका मतलब यह है कि भले ही हमारे पास स्थिर जनसंख्या हो, अर्थव्यवस्था में निवल सकारात्मक कुल बचत और धन का वर्धमान भंडार दृष्टिगत होंगे। वास्तव में, यदि आय किसी स्थिर दर से बढ़ती है तो बचत और धन दोनों एक ही दर से बढ़ते हैं, जिसका अर्थ है – एक स्थिर बचत–आय और धन–आय अनुपात।

6.2.2 परिकल्पना का गणितीय विवेचन

हमने इकाई 5 के पाठांश 5.3 में देखा कि फिशर के दो–आवधिक मॉडल में यदि उपभोग तुच्छ (inferior) वस्तु नहीं होता तो भी जब कभी किसी अवधि की आय बढ़ती है तो सभी अवधियों में उपभोग बढ़ जाता है। चलिए, इस विश्लेषण को एक बहु–आवधिक प्राधार तक विस्तारित करते हैं।

इस मॉडल का निहितार्थ यह है कि वर्तमान अवधि का उपभोग वर्तमान अवधि की आय पर निर्भर नहीं करता, बल्कि वह उपभोक्ता के संपूर्ण आय–प्रवाह के वर्तमान मूल्य पर निर्भर करता है। आय प्रवाह के वर्तमान मूल्य और वर्तमान उपभोग के बीच यही संबंध हमें उपभोग फलन का प्रथम सामान्य संरूपण देता है [पिछली इकाई से समीकरण (5.3) याद करें]।

$C_t = f(PV_t); \; f' > 0$

जहाँ PV_t समय t पर चालू एवं भावी आय का वर्तमान मूल्य है। इसे निम्नवत् दर्शाया जा सकता है –

$$PV_t = \sum \frac{y_t}{(1+r)^t}$$

यहाँ $t^{वीं}$ अवधि के लिए आय का वर्तमान मूल्य, y_t, भिन्न $\frac{y_t}{(1+r)^t}$ से दर्शाया जाता है। हम सभी समयावधियों के लिए आय के प्रवाह को जोड़ते हैं, यथा $t = 0$ से T अवधियों तक।

उपभोक्ता के उपयोगिता फलन को निम्नवत् लिखा जा सकता है –

$$U = U(C_0, C_1, C_2, \ldots, C_T) \qquad \ldots (6.1)$$

जहाँ उपभोक्ता अपने कामकाजी जीवन के वर्षों (जिन्हें यहाँ '0' माना जाता है) से आरंभ कर T अधिक अवधियों तक जीवित रहता है। किसी बहु–आवधिक मॉडल में, चलिए, मान लेते हैं कि अंतर्निहित उपयोगिता फलन लघुगणकीय है, उसे कालांतर में योगात्मक रूप से अलग किया जा सकता है, और भविष्य की उपयोगिताओं को बट्टा दर δ पर छूट दी जाती

है। हमें प्रतिनिधि उपभोक्ता के लिए बजट बाध्यता $\sum \frac{C_t}{(1+r)^t} = \sum \frac{y_t}{(1+r)^t}$ के अधीन उपयोगिता अधिकतमकरण की प्रथम कोटि दशा ज्ञात करनी होगी।

उपभोक्ता i के लिए यदि PV_t^i बढ़ता है तो उसके सभी C_t^i लगभग आनुपातिक रूप से बढ़ेंगे।
अतएव, किसी व्यक्तिगत उपभोक्ता i के लिए हम उसके उपभोग फलन को निम्नवत् लिख सकते हैं –

$$C_t^i = k^i(PV_t^i);\ 0 < k^i < 1 \qquad \dots (6.2)$$

यहाँ k^i प्रतिनिधि उपभोक्ता i की आय के वर्तमान मूल्य का अनुपात है, जो कि वह वर्तमान अवधि के उपभोग पर खर्च करता है।

यदि आयु और आय के आधार पर जनसंख्या वितरण अपेक्षाकृत स्थिर रहे और वर्तमान भावी उपभोग (अनधिमान वक्रों का आकार) के बीच अभिरुचि कालांतर में स्थिर रहे तो हम सभी व्यक्तिगत उपभोग फलनों को समीकरण (6.2) में एक स्थिर कुल उपभोग के रूप में जोड़ सकते हैं, यथा –

$$C_t = k(PV_t) \qquad \dots (6.3)$$

एंडो और मोदिग्लिआनी ने समीकरण (6.3) में आय के PV पद को श्रम आय (y_t^L) और संपत्ति आय (y_t^P) में विभाजित किया। हम ब्याज दर r द्वारा इन दोनों ही प्रकार की आय में छूट देते हैं। चलिए, अब '0' को अपनी वर्तमान अवधि के रूप में लेते हैं, यथा –

$$PV_0 = \sum_{t=0}^{T} \frac{y_t^L}{(1+r)^t} + \sum_{t=0}^{T} \frac{y_t^P}{(1+r)^t} \qquad \dots (6.4)$$

इस प्रकार, आय प्रवाह का वर्तमान मूल्य श्रम आय का वर्तमान मूल्य धन संपत्ति आय का वर्तमान मूल्य होता है।

यदि हम यह मानकर चलें कि संपत्ति बाजार यथोचित रूप से कुशल और स्थिर है तो संपत्ति की आय का वर्तमान मूल्य स्वयं संपत्ति का मूल्य ही होगा, यथा –

$$\sum_{t=0}^{T} \frac{y_t^P}{(1+r)^t} = a_0$$

अतः, समीकरण (6.4) को निम्नवत् लिखा जा सकता है –

$$PV_0 = y_0^L + \sum_{t=1}^{T} \frac{y_t^L}{(1+r)^t} + a_0 \qquad \dots (6.5)$$

अब आप देखेंगे कि समीकरण (6.5) में श्रमिक की वर्तमान (चालू) आय (y_0^L) सुस्पष्ट है और संपत्ति आय a_0 सुस्पष्ट भी है और उपभोक्ता को ज्ञात भी। किंतु भविष्य की आय $y_1^L \cdots y_T^L$ सुस्पष्ट नहीं है और उसका अधिक से अधिक अनुमान ही लगाया जा सकता है। अब यह उपभोक्ता के लिए बहुत कठिन होगा कि वह भविष्य के प्रत्येक वर्ष की आय का अनुमान लगाए। मान लीजिए कि समय '0' में औसत प्रत्याशित श्रम आय y_0^e (भावी आय के विषय में '0' समय में जन्मी प्रत्याशा) है।

इसलिए वर्तमान अवधि '0' को छोड़कर, भावी ($T-1$ अवधियाँ) आय का वर्तमान मूल्य [समीकरण (6.5) का दूसरा पद] $(T-1)y_0^e$ के बराबर होगा। अतएव, समीकरण (6.5) को निम्नवत् लिखा जा सकता है –

$$PV_0 = y_0^L + (T-1)y_0^e + a_0 \quad \dots (6.6)$$

आइए, अब देखते हैं कि औसत प्रत्याशित श्रम आय y_0^e का मान कैसे निर्धारित किया जाता है। एंडो और मोदिग्लिआनी का कहना है कि औसत प्रत्याशित श्रम आय वर्तमान श्रम आय का एक गुणक मात्र होती है, यथा –

$$y_0^e = \beta y_0^L \quad \dots (6.7)$$

जहाँ β गुणक ही है जो शून्य से अधिक है।

उपर्युक्त अवधारणा का अर्थ है कि यदि वर्तमान आय बढ़ती है तो लोग भावी आय के लिए अपनी प्रत्याशाओं को ऊपर की ओर समायोजित करते हैं। फलतः, आय प्रवाह के वर्तमान मूल्य में ऊपर की ओर खिसकाव देखा जाता है। चूँकि वर्तमान उपभोग आय प्रवाह के वर्तमान मूल्य (समीकरण 6.5) पर निर्भर करता है, वर्तमान उपभोग भी बढ़ जाता है। इस तर्क–शृंखला के माध्यम से हम कह सकते हैं कि चालू अवधि की आय में बदलाव लोगों के आय प्रवाह के वर्तमान मूल्य को काफी हद तक बदल सकता है (क्योंकि β बड़ा हो सकता है)। वर्तमान उपभोग पर इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ सकता है।

समीकरण (6.6) में $y_0^e = \beta y_0^L$ प्रतिस्थापित करने पर हमें प्राप्त होता है –

$$PV_0 = [1+\beta(T-1)]\, y_0^L + a_0 \quad \dots (6.8)$$

उपर्युक्त मानों को समीकरण (6.3) में प्रतिस्थापित करने पर हमें प्राप्त होता है –

$$C_0 = k\,[1+\beta(T-1)]\, y_0^L + k a_0 \quad \dots (6.9)$$

समीकरण (6.9) दीर्घावधिक उपभोग परिकल्पना (LCH) से प्राप्त एंडो–मोडिग्लिआनी उपभोग फलन है। आप देखेंगे कि किसी भी समयावधि t के लिए इस उपभोग फलन में अवरोधन ka_t और सकारात्मक ढ़लान $k\,[1+\beta(T-1)]$ नजर आते हैं। उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति (यथा, उपभोग फलन का ढाल) ही y_t^L का गुणांक अर्थात् $k\,[1+\beta(T-1)]$ कहलाती है।

वार्षिक अमेरिकी आँकड़ों पर एंडो–मोदिग्लिआनी के शोध के आधार पर समीकरण (6.9) का एक प्रतिनिधिक सांख्यिकीय आकलन निम्नवत् दर्शाया जाता है –

$$c_t = 0.7y_t^L + 0.06a_t \quad \dots (6.10)$$

इस प्रकार, उक्त आकलन के अनुसार श्रम आय में से और संपत्ति में से सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC) के मान क्रमशः 0.7 और 0.06 हैं। याद रखें कि आगे हम इस निष्कर्ष पर तब वापस आएँगे जब खंड 6.3 में फ्रीडमैन की स्थायी आय परिकल्पना पर चर्चा की जाएगी।

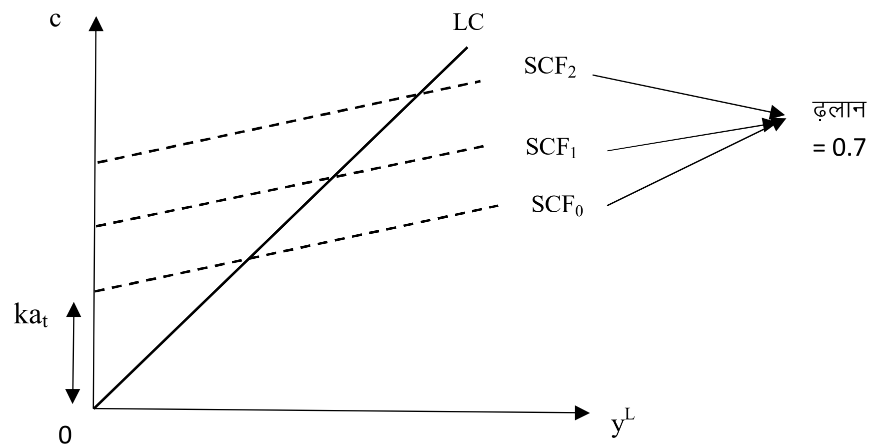

चित्र 6.3: एंडो एवं मोदिग्लिआनी का उपभोग फलन

आय में वृद्धि के साथ बचत और परिसंपत्ति में वृद्धि होती है। यह अल्पावधि उपभोग फलन (SCF) को ऊपर की ओर खिसकता है। इन अल्पावधि उपभोग फलनों का अनुरेखण करके हमें दीर्घावधि उपभोग फलन (LCF) प्राप्त होता है। अल्प अवधि में एंडो–मोडिग्लिआनी का उपभोग फलन केन्जियन उपभोग फलन जैसा दिखता है, जहाँ आय बढ़ने पर औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC) का मान गिर जाता है, जबकि दीर्घ अवधि में यह मान कीन्स के विपरीत स्थिर रहता है।

दीर्घावधिक उपभोग परिकल्पना (LCH) के अनुसार उपभोग और वर्तमान आय के बीच संबंध गैर–आनुपातिक होता है जैसा कि अल्पावधिक समय–शृंखला आकलन (समीकरण 6.10) में होता है।

समीकरण (6.10) में उपभोग फलन का अवरोधन परिसंपत्ति, a_t के स्तर से निर्धारित किया जाता है। अल्पावधि में परिसंपत्तियों के साथ चक्रीय उतार–चढ़ाव काफी स्थिर रहता है। इसीलिए अल्पावधि उपभोग फलन सकारात्मक अवरोधन, ka_t के साथ एक सकारात्मक ढलान वाली रेखा के रूप में नजर आता है।

याद रखें कि अवरोधन कालांतर में स्थिर नहीं रहता है। दीर्घ अवधि में जैसे–जैसे बचत बढ़ती है, वैसे–वैसे परिसंपत्तियों (a_t) में भी वृद्धि होती है। तदनुसार, उपभोग फलन ऊपर की ओर खिसकता है, जैसा कि चित्र 6.3 में दर्शाया गया है।

इसी चित्र में दर्शाए गए अनुसार, खिसकते अल्पावधि उपभोग फलन किसी दीर्घावधि उपभोग फलन का ही अनुसरण करते हैं। इस चित्र में अल्पावधि उपभोग फलन (SCF) प्रवणता 0.7 के साथ, जबकि दीर्घावधि उपभोग फलन (LCF) मूलबिंदु से गुजरता हुआ दर्शाया गया है।

यदि हम समीकरण (6.10) के दोनों पक्षों को कुल वास्तविक आय, y_t से विभाजित करते हैं तो हमें प्राप्त होता है –

$$\frac{c_t}{y_t} = 0 \cdot 7\frac{y_t^L}{y_t} + 0.06\frac{a_t}{y_t} \qquad \dots (6.11)$$

उक्त समीकरण (6.11) में औसत c / y दो अनुपातों का योग है, यथा –

(i) कुल आय में श्रम आय का हिस्सा $(\frac{y_t^L}{y_t})$, और

(ii) पूँजी उत्पादन अनुपात का हिस्सा $(\frac{a_t}{y_t})$ ।

यदि उक्त दोनों अनुपात स्थिर रहते हैं तो c / y भी स्थिर रहता है। अमेरिकी आँकड़ों पर एंडो–मोडिग्लिआनी के अनुभवजन्य शोध ने पुष्टि की कि c / y दीर्घ अवधि में स्थिर रहता है।

एंडो–मोडिग्लिआनी का उपभोग फलन (देखें चित्र 6.3) तीन स्पष्ट दृश्यघटनाओं की पुष्टि करता है, यथा –

(i) यह प्रतिनिध्यात्मक बजट अध्ययनों के $MPC < APC$ परिणाम की व्याख्या करता है;

(ii) यह औसत उपभोग प्रवृत्ति की दीर्घावधिक स्थिरता की व्याख्या करता है; और

(iii) यह उपभोग निर्णय में व्याख्यात्मक चर स्वरूप परिसंपत्तियों को शामिल मानकर चलता है।

6.2.3 परिकल्पना की कमियाँ

जीवन–चक्र की परिकल्पना इस अर्थ में कुछ आकर्षक है कि यह फिशर के मूल अंतर्कालिक इष्टतमीकरण से निकटता दर्शाती है। यह अपने विश्लेषण में अनेक महत्वपूर्ण कारकों जैसे जनसंख्या वृद्धि, उत्पादकता वृद्धि, आय वृद्धि, सामाजिक सुरक्षा उपायों, बचत योजनाओं आदि को सामने लाता है। यह परिकल्पना अर्थव्यवस्था के लिए निवल कुल बचत प्रवाह पर इन कारकों के और अर्थव्यवस्था के धन भंडार के प्रभाव पर चर्चा करती है। हालाँकि, जीवन–चक्र परिकल्पना की कुछ आधारों पर आलोचना भी की गई है।

जनसंख्या के आयु प्राधार और अर्थव्यवस्था में कुल बचत के बीच संबंध एक विवाद का विषय रहा है। दो–आवधिक मॉडल में, यदि जनसंख्या में वृद्धि होती है तो अबचतकर्ताओं की संख्या बचतकर्ताओं की संख्या से अधिक हो जाएगी। इससे ऐसी स्थिति पैदा हो सकती है जहाँ अर्थव्यवस्था में नकारात्मक निवल बचत दिखाई दे। इसके अलावा, यह मान लेना अवास्तविक ही होगा कि सेवानिवृत्त लोगों की आय शून्य है। सेवानिवृत्त लोगों के लिए वृद्धावस्था पेंशन जैसे विभिन्न सामाजिक सुरक्षा उपाय विद्यमान हैं।

यदि हम समीकरण (6.10) को शाब्दिक रूप से लें तो वर्तमान श्रम आय में समग्र वृद्धि से वर्तमान उपभोग में 70 प्रतिशत तक की वृद्धि होगी, जो कि कुछ हद तक अधिक है। यह निष्कर्ष एंडो–मोडिग्लिआनी के वर्तमान श्रम आय और औसत प्रत्याशित श्रम आय के बीच संबंध के सन्निकटन के कारण संभव हुआ था (याद करें $y_0^e = y_0^L$)।

साधारण जीवन–चक्र परिकल्पना वृद्ध जन के अबचतकारी व्यवहार की पूरी तरह से व्याख्या नहीं कर सकती है। अनेक अध्ययनों के अनुसार, बुजुर्ग लोग इतनी जल्दी निर्बचत नहीं अपनाते जितना कि यह परिकल्पना बतलाती है। व्यय की अप्रत्याशितता और वसीयत छोड़ने की इच्छापूर्ति हेतु अपने सरोकार के कारण वृद्ध जन अपनी धन–संपत्ति को इतनी जल्दी नहीं घटाते जितना कि यह मॉडल कहता है।

बोध प्रश्न 1

1) मान लीजिए कि कोई व्यक्ति 20 साल की उम्र में अपना कामकाजी जीवन शुरू करता है। अपनी योजना के अनुसार वह 65 साल की आयु तक काम करेगा और 80 साल की आयु में मर जाएगा। उसकी वार्षिक श्रम आय रुपये 30,000 है। वह अपने जीवन भर की कमाई को जीवन के वर्षों की संख्या में फैलाता है। उसका वार्षिक उपभोग व्यय कितना होगा? उसकी सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC) भी ज्ञात करें।

……………………………………………………………………

……………………………………………………………………

……………………………………………………………………

……………………………………………………………………

……………………………………………………………………

2) मान लीजिए कि कोई व्यक्ति 4 अवधियों तक जीवित रहता है और पहले तीन अवधियों में ₹ 30, ₹ 60 व ₹ 90 कमाता है और चौथी अवधि में जब वह सेवानिवृत्त होता है तो ₹ 0 कमाता है।
मान लें कि ब्याज दर शून्य है। वह अपने पूरे जीवन चक्र में स्थिर उपभोग प्रवाह बनाए रखना चाहता है। निर्धारित करें कि वह किस अवधि में सबसे अधिक बचत करता है।
व्यक्ति को पहली अवधि के अंत में अप्रत्याशित रूप से ₹ 15 का धन प्राप्त होता है। यदि वह पुनर्गणना करता है तो दूसरी अवधि के बाद उसके उपभोग व्यय में कितना परिवर्तन होगा?

……………………………………………………………………

……………………………………………………………………

……………………………………………………………………

……………………………………………………………………

……………………………………………………………………

6.3 स्थायी आय परिकल्पना

मिल्टन फ्रीडमैन ने वर्ष 1957 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'ए थ्योरी ऑफ कंजम्पशन फंक्शन' में स्थायी आय परिकल्पना (PIH) विकसित की। इस परिकल्पना का मूल तर्क यह है कि लोग अपने वर्तमान उपभोग की योजना अपने जीवनकाल में अपनी औसत प्रत्याशित आय के आधार पर बनाते हैं, न कि उनकी वर्तमान अवधि की आय के आधार पर।

स्थायी आय परिकल्पना बताती है कि किसी परिवार का उपभोग और बचत का निर्णय उसकी स्थायी आय में परिवर्तन से किस प्रकार प्रभावित होता है। इस परिकल्पना ने कुज्नेत्स की उपभोग पहेली के लिए एक व्याख्या प्रस्तुत की। इसके अलावा, इस परिकल्पना ने माँग प्रबंधन संबंधी कुछ केन्जियन अवधारणाओं पर सवाल भी उठाया।

फ्रीडमैन के अनुसार, आय के दो घटक होते हैं, यथा – स्थायी और अस्थायी।

उक्त परिकल्पना के अनुसार, यदि परिवार यह मानता है कि आय में परिवर्तन अस्थायी अथवा क्षणिक है तो वह अपने उपभोग प्रतिमान में बदलाव नहीं करता है।

6.3.1 परिकल्पना वर्णन

'स्थायी आय' और 'स्थायी उपभोग' संबंधी अवधारणाएँ स्थायी आय परिकल्पना के सैद्धांतिक विश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये दोनों ही अवधारणाएँ व्यक्तिगत उपभोक्ता इकाई, यथा परिवार, के लिए सुस्पष्ट नहीं होतीं।

मान लीजिए y किसी समयावधि, माना एक वर्ष, के दौरान किसी उपभोक्ता की मापी गई आय है। फ्रीडमैन ने इस मापित आय को दो घटकों के योग के रूप में लिया, यथा – स्थायी आय (y_p) और अस्थायी आय (y_t)।

$$y = y_p + y_t \qquad \ldots (6.12)$$

स्थायी आय आमदनी का वह घटक है जो उपभोक्ता की संचित बचत, उसके कौशल, उसकी क्षमता, व्यवसाय, आर्थिक क्रियाकलाप के स्थान आदि अनेक कारकों पर निर्भर करता है। दूसरी ओर, आय के अस्थायी घटक की व्याख्या आकस्मिक, अप्रत्याशित और अननुमेय के रूप में की जा सकती है। अस्थायी आय घटक को जन्म देने वाले कुछ कारक व्यक्तिगत उपभोक्ता–विशिष्ट होते हैं (उदाहरण के लिए, बीमारी, गलत अनुमान, आदि)। अस्थायी आय के पीछे समूह–विशिष्ट कारक भी हो सकते हैं (उदाहरण के लिए, किसी इलाके में अनावृष्टि का प्रभाव, प्रवासी श्रमिकों पर किसी वायरस का सर्वव्यापी प्रभाव, आदि)।

यदि हम व्यक्तिगत विशिष्ट कारकों पर विचार करते हैं तो यादृच्छिक उपभोक्ताओं के समूह के लिए परिणामी अस्थायी घटक औसत ही होगा और समूह की औसत मापी गई आय, आय के औसत स्थायी घटक के बराबर होगी। इसका अर्थ है कि औसत अस्थायी आय शून्य होगी।

इसी प्रकार, c उपभोक्ता के मापे गए उपभोग को निरूपित करता है और दो भागों से बना होता है, यथा –

(i) स्थायी घटक (c_p) और

(ii) अस्थायी घटक (c_t)।

समीकरण के रूप में इन भागों को निम्नवत् दर्शाया जाता है –

$$c = c_p + c_t \qquad \ldots (6.13)$$

पूर्व की ही भाँति, अस्थायी घटक उपभोग को जन्म देने वाले कुछ कारक व्यक्तिगत उपभोक्ता–विशिष्ट होते हैं (जैसे अचानक बीमारी), और कुछ समूह–विशिष्ट होते हैं (जैसे दीर्घकालिक कड़ाके की सर्दी अथवा भरपूर फसल)।

पहले मामले में अस्थायी घटक औसत होगा (इसका अर्थ है कि समूह का अस्थायी उपभोग शून्य होगा) और बाद के मामले में स्थिति के आधार पर औसत अस्थायी उपभोग या तो सकारात्मक होगा या फिर नकारात्मक।

आप देखेंगे कि व्यक्तिगत उपभोक्ता से यह अपेक्षा नहीं की जाती है वह 'स्थायी' शब्द के सटीक अर्थ से जुड़े ही। सिद्धांततः स्थायी और अस्थायी के बीच के अंतर करने का अभिप्राय अपनी व्याख्या वास्तविक उपभोग और उपभोक्ता के व्यवहार के अनुरूप आय संबंधी आँकड़ों द्वारा किए जाने से होता है।

एंडो–मोडिग्लिआनी के साथ–साथ फ्रीडमैन भी यह मानकर चलते हैं कि उपभोक्ता अपने जीवनकाल में अपने उपभोग को समकृत करना चाहता है। यह उस समीकरण को जन्म देता है जो स्थायी आय और स्थायी उपभोग के बीच संबंध का वर्णन करता है, जहाँ किसी भी उपभोक्ता का स्थायी उपभोग उसकी स्थायी आय के समानुपाती होता है, यथा –

$$c_p^i = k^i y_p^i \qquad \ldots (6.14)$$

समीकरण (6.14) में मूर्धक्षर i व्यक्तिगत उपभोक्ता को निरूपित करता है।

यहाँ चर k^i निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करता है –

(i) ब्याज की वह दर जिस पर व्यक्तिगत उपभोक्ता उधार देता है अथवा उधार लेता है,

(ii) वह आपेक्षिक महत्व जो व्यक्तिगत उपभोक्ता संपत्ति और गैर–संपत्ति आय को देता है, और

(iii) बचत की तुलना में उपभोग की दिशा में व्यक्ति की अभिरुचियाँ और प्राथमिकताएँ।

यदि हम यह मान लें कि ये कारक उपभोक्ता के आय स्तर पर निर्भर नहीं करते हैं तो हम सभी आय वर्गों के k^i का औसत $\bar{k}$ के रूप में ले सकते हैं। अतएव, किसी भी आय वर्ग के औसत स्थायी उपभोग ($\bar{c_p^i}$) और आय वर्ग की औसत स्थायी आय ($\overline{y_p^i}$) के बीच यही संबंध निम्नवत् लिखा जा सकता है –

$$\bar{c_p^i} = \overline{k y_p^i} \qquad \ldots (6.15)$$

समीकरण (6.15) में मूर्धक्षर i व्यक्तिगत उपभोक्ता को निरूपित करता है।

फ्रीडमैन ने अस्थायी घटक की विशेषताओं को निर्दिष्ट करते हुए अपनी परिकल्पना प्रस्तुत की। इस परिकल्पना के अनुसार, आय और उपभोग के अस्थायी घटक एक दूसरे के साथ और तदनुरूप स्थायी घटकों के साथ संबंधित नहीं होते हैं। इस प्रस्थापना को गणितीय पदों में निम्नवत् लिखा जा सकता है –

$$\rho_{y_t y_p} = \rho_{c_t c_p} = \rho_{y_t c_t} = 0 \qquad \ldots (6.16)$$

समीकरण (6.16) में हम पादाक्षरों से दर्शाए गए चरों के बीच सहसंबंध गुणांक के लिए प्रतीक ρ का उपयोग करते हैं। प्रथम दो गुणांक इन चरों की परिभाषा के अनुसार स्वयं व्याख्यात्मक हैं। वे केवल अस्थायी और स्थायी घटकों की परिभाषा का भाषांतरण एवं संपूरण कर रहे हैं। अंतिम गुणांक, जो अस्थायी आय और अस्थायी उपभोग के बीच सहसंबंध शून्य होने को दर्शाता है, समझना थोड़ा मुश्किल है।

फ्रीडमैन के अनुसार, उपभोग दीर्घावधिक सरोकारों से निर्धारित होता है। अस्थायी आय में कोई भी वृद्धि (माना, कोई अप्रत्याशित लाभ) मुख्य रूप से बचत में वृद्धि (परिसंपत्ति निर्माण अथवा पहले से संचित शेष राशि का उपयोग) की ओर ले जाती है, उपभोग में वृद्धि की ओर नहीं।

आखिरकार, व्यक्ति अपने उस अप्रत्याशित लाभ को उपभोग पर खर्च क्यों नहीं करता जो कि उसकी समकृत उपभोग–प्रवृत्ति रेखा से कहीं ऊपर है? वह संपूर्ण अप्रत्याशित लाभ को अपने जमा धन में ही जोड़ लेने की संभावना क्यों रखता है? इसके कुछ अंश का उपयोग उपभोग में क्यों नहीं किया जाता?

फ्रीडमैन ने अपनी अवधारणा के पक्ष में **तीन** तर्क प्रस्तुत किए हैं, जहाँ आय के अस्थायी घटक और उपभोग के अस्थायी घटक असंबद्ध नजर आते हैं, यथा –

(i) सामान्य प्रथा के विपरीत, फ्रीडमैन ने उपभोग व्यय के हिस्से के रूप में उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं पर खर्च को शामिल नहीं किया है। उसके अनुसार, उपभोग की परिभाषा सेवाओं के मूल्य के संदर्भ में होती है। उपभोग की इस परिभाषा ने उक्त अवधारणा को अनुभवजन्य आँकड़ों के प्रति कहीं अधिक व्यवहार्य बना दिया।

(ii) अस्थायी आय के साथ अप्रत्याशित लाभ यथातथ्य नहीं होता है। यदि अप्रत्याशित लाभ की आशा है तो इसे पहले से ही स्थायी आय की गणना में शामिल किया जा रहा है, सिवाय इसके कि उपभोक्ता इस अपेक्षित अप्रत्याशित लाभ के एवज में उधार लेने में असमर्थ था। उस स्थिति में अस्थायी उपभोग में कोई परिवर्तन नहीं होता। दूसरी ओर, यदि अप्रत्याशित लाभ अनपेक्षित है और यह उपभोक्ता के जीवन के अंतिम वर्ष में हो रहा है तो इससे अंतिम वर्ष के उपभोग व्यय में ही वृद्धि होगी, चालू वर्ष के उपभोग व्यय में नहीं।

(iii) यदि आय में अस्थायी वृद्धि अस्थायी उपभोग में वृद्धि कर सकती तो ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ यह अस्थायी उपभोग को कम कर सकती है (उदाहरण के लिए, लंबे समय तक काम करने के घंटे, किसी छोटे शहर या गाँव में तबादला हो जाना, आदि)। इस तरह के नकारात्मक और सकारात्मक सहसंबंध एक दूसरे को प्रतिसंतुलन करते हैं। फ्रीडमैन ने स्वीकार किया कि अस्थायी आय और अस्थायी उपभोग अवधारणा के बीच शून्य सहसंबंध जरूरी नहीं कि किसी सशक्त और कठोरतर सहसंबंध के रूप में नजर आए ही, जैसा कि प्रस्थापना में कहा गया है। इसका उद्देश्य उपभोक्ता व्यवहार से निष्पक्ष रूप से गहन सन्निकटता दर्शाना होता है।

ऊपर दिए गए तीसरे तर्क के अनुसार, चर, c_t अन्य चरों c_p और y_t के आसपास एक यादृच्छिक भिन्नता मात्र है। इसका अर्थ है कि आय स्तरों के अनुसार वर्गीकृत जनसंख्या के किसी भी यादृच्छिक नमूने के हिसाब से प्रत्येक आय वर्ग ' i ' के लिए औसत अस्थायी उपभोग शून्य ही होता है। इसका निहितार्थ है कि किसी भी समूह (या वर्ग) का औसत स्थायी उपभोग उस समूह (या वर्ग) के औसत मापे गए उपभोग के बराबर ही होता है।

$$\bar{c}_{ti} = 0 \qquad \ldots (6.17)$$

$$\bar{c}_i = \bar{c}_{pi} \qquad \ldots (6.18)$$

समीकरण (6.15) और (6.18) को एक साथ हम निम्नवत् लिख सकते हैं –

$$\bar{c}_i = \bar{c}_{pi} = \bar{k}\bar{y}_{pi} \qquad \ldots (6.19)$$

समीकरण (6.19) सभी आय वर्गों के लिए सत्य है, चाहे वे औसत आय वर्ग से ऊपर ($\bar{y}_{ti} > 0$ और $\bar{y}_i > \bar{y}_{pi}$) हों अथवा या औसत आय वर्ग से नीचे ($\bar{y}_{ti} < 0$ और $\bar{y}_i < \bar{y}_{pi}$) हों।

किसी भी औसत आय वर्ग से ऊपर के लिए –

(i) औसत मापित उपभोग $\bar{c}_i$ का मान पद $\bar{k}\bar{y}_{pi}$ के बराबर होता है;

(ii) उस वर्ग की औसत आय $\bar{y}_i$ के बराबर होती है; और

(iii) पद $\bar{y}_i$ का मान पद $\bar{y}_{pi}$ से अधिक अर्थात् $\bar{y}_i > \bar{y}_{pi}$ होता है।

अतएव, इसकी मापित औसत उपभोग प्रवृत्ति का मान अर्थात् $\frac{\bar{c}_i}{\bar{y}_i}$ पद $\bar{k}$ से कम होगा क्योंकि $\frac{\bar{y}_{p_i}}{\bar{y}_i} < 1$ होता है। इसी प्रकार, औसत से कम आय वर्ग के लिए मापित औसत उपभोग प्रवृत्ति का मान अर्थात् $\frac{\bar{c}_i}{\bar{y}_i}$ पद $\bar{k}$ से अधिक होगा।

आइए, अब इन परिणामों को चित्र 6.4 में दर्शाते हैं –

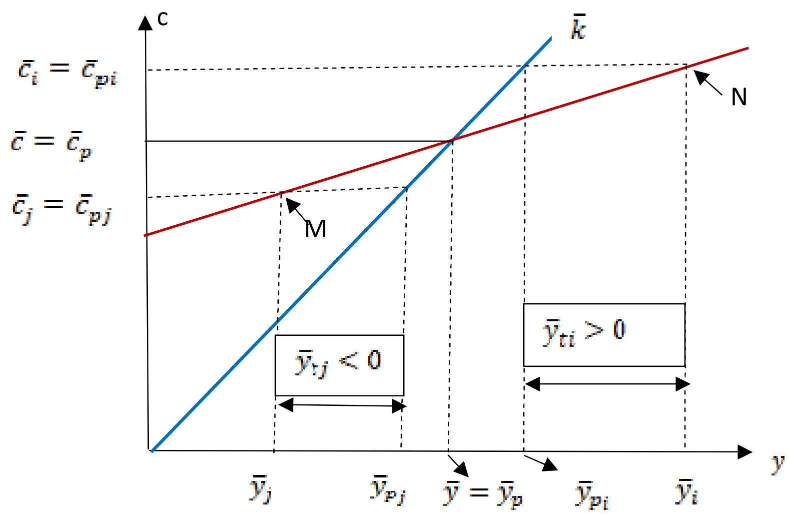

चित्र 6.4 फ्रीडमैन का प्रतिनिध्यात्मक उपभोग फलन

यह प्रतिनिध्यात्मक उपभोग फलन M और N जैसे बिंदुओं को जोड़कर बनाया गया है। यह फलन (लाल रेखा) स्वयं में अंतर्निहित स्थायी फलन (नीली रेखा) की तुलना में कम ढ़लान दर्शाता है। किसी भी प्रतिनिध्यात्मक बजट अध्ययन में हम सीमांत उपभोग प्रवृत्ति MPC $< APC$ देखे जाने की अपेक्षा करते हैं, बशर्ते फ्रीडमैन की स्थायी आय परिकल्पना सही हो।

चित्र 6.4 में दो आय वर्ग लिए गए हैं, यथा –

(i) j[वां] वर्ग, जिसकी औसत आय कुल जनसंख्या की औसत आय की तुलना में कम है, और

(ii) i[वाँ] वर्ग, जिसकी औसत आय कुल जनसंख्या की औसत आय से अधिक है।

तदनुसार, निम्न–औसत आय समूह की औसत अस्थायी आय ऋणात्मक है, जबकि उच्च–औसत आय समूह के लिए यह सकारात्मक है।

इसके अलावा, हमें आरेख में समीकरण (6.19) से ज्ञात होता है कि –

(i) i[वें] समूह के लिए $\bar{c}_i = \bar{c}_{pi} = \bar{k}\bar{y}_{pi}$ सिद्ध होता है, और

(ii) j[वें] समूह के लिए $\bar{c}_j = \bar{c}_{pj} = \bar{k}\bar{y}_{pj}$ सिद्ध होता है।

यह संबंध हमें बिंदु M देता है जो $\bar{c}_j$ और $\bar{y}_j$ को जोड़ता है, और बिंदु N देता है जो $\bar{c}_i$ और $\bar{y}_i$ को जोड़ता है। बिंदु M और N को जोड़कर हमें प्रतिनिध्यात्मक बजट अध्ययन उपभोग फलन प्राप्त होता है। यह फलन स्वयं में अंतर्निहित स्थायी फलन $(\bar{k})$ की अपेक्षा कम ढ़लान दर्शाता है। इसलिए, यदि हम फ्रीडमैन की स्थायी आय परिकल्पना को सही मानकर चलें तो प्रतिनिध्यात्मक बजट अध्ययन के लिए यह अपेक्षा की जाएगी कि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति का मान औसत उपभोग प्रवृत्ति के मान से कम अर्थात् MPC < APC हो।

दीर्घावधिक समय–शृंखला उपभोग फलन के बीच संबंध को स्पष्ट करने के लिए हमें व्यापार चक्र की कार्यप्रणाली को समझना होगा। किसी राष्ट्र का उत्पादन कालांतर में व्यापार चक्र के साथ बढ़ता तो है परंतु किसी स्थिर दर से नहीं। वह उत्कर्ष काल में अपने चरम पर पहुँच जाता है और चरम मंदी की अवधि में अपने निम्नतम बिंदु पर नजर

आता है। इस बीच में ही आते हैं – मंदी और पुनरुत्थान चरण। आय के इस उतार–चढ़ाव को स्थायी आय परिकल्पना की सहायता से समझाया जा सकता है।

किसी समयावधि में स्थायी आय की व्याख्या दीर्घावधिक प्रवृत्ति आय के रूप में की जा सकती है। किसी भी अवधि में यदि सकल घरेलू उत्पाद अथवा आय दीर्घावधिक स्थायी आय से कम हो तो हम कह सकते हैं कि उस अवधि में अस्थायी आय ऋणात्मक है और वर्ष में जब आय दीर्घावधिक प्रवृत्ति स्थायी आय से अधिक हो तो हम कहेंगे कि उस अवधि की अस्थायी आय सकारात्मक है। अतः, उत्कर्ष के वर्ष में अस्थायी आय सकारात्मक होती है और मंदी के वर्ष में अस्थायी आय नकारात्मक होती है।

चूँकि स्थायी आय परिकल्पना के अनुसार आय के अस्थायी घटक अस्थायी उपभोग और स्थायी उपभोग दोनों से संबंधित नहीं होते हैं, यह स्थायी उपभोग के आसपास एक यादृच्छिक घटक मात्र होता है और अस्थायी आय की सीमांत उपभोग प्रवृत्ति शून्य अथवा अति नगण्य होती है। यही कारण है कि परिवार अपनी दीर्घावधिक स्थायी उपभोग योजना में बदलाव नहीं करते हैं, भले ही वे अर्थव्यवस्था के उत्कर्ष काल अथवा कठिन दौर से गुजर रहे हों।

इस चक्रीय गति को चित्र 6.5 में फ्रीडमैन के समय–शृंखला उपभोग फलन आरेख के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

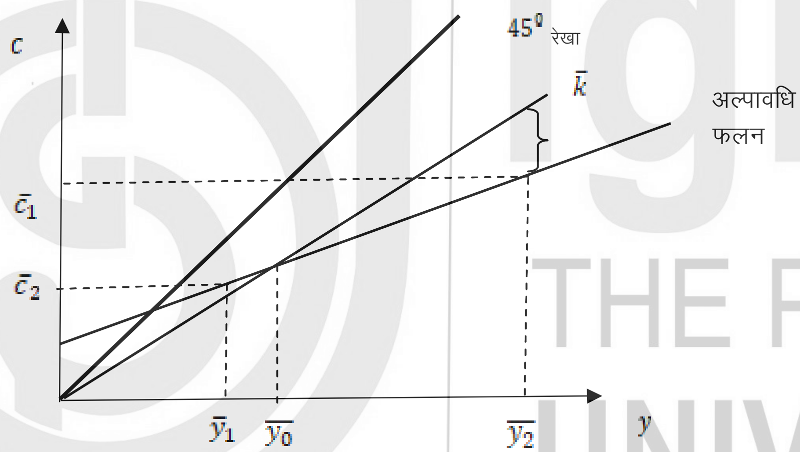

चित्र 6.5: फ्रीडमैन का समय–शृंखला उपभोग फलन

दीर्घावधिक समय–शृंखला उपभोग फलन ($\bar{k}$) में 45° रेखा की तुलना में कम ढ़लान है। इसलिए c/y अनुपात, जो कि दीर्घावधिक उपभोग फलन के साथ काफी स्थिर है, 1 से भी कम है। यह उपभोक्ताओं के उपभोग को समकृत करने संबंधी व्यवहार की व्याख्या करता है और यह भी दर्शाता है कि उपभोग में उतार–चढ़ाव आय में उतार–चढ़ाव की तुलना में कम है।

कालांतर में जब अर्थव्यवस्था और राष्ट्रीय औसत स्थायी आय प्रवृत्ति के साथ बढ़ती है, प्रतिनिध्यात्मक उपभोग फलन (देखें चित्र 6.4 में बिन्दुओं की रेखा) में बदलाव होता है। यहाँ चित्र 6.5 में वर्ष 1 उत्कर्ष की अवधि है। उस वर्ष देश की आय, $\overline{y_1}$ दीर्घावधिक प्रवृत्ति आय से अधिक रही। इसीलिए वर्ष 1 में जनसंख्या की औसत अस्थायी आय सकारात्मक है। दूसरी ओर, वर्ष 2 वह समयावधि है जब देश की आय, $\overline{y_2}$ प्रवृत्ति आय से कम रही। इसीलिए, वर्ष 2 में जनसंख्या की औसत अस्थायी आय ऋणात्मक है। इन दोनों ही वर्षों में देश की मापित औसत उपभोग न तो वर्ष 1 की सकारात्मक अस्थायी आय से और न ही वर्ष 2 की नकारात्मक अस्थायी आय से प्रभावित होता है।

दरअसल, यह उक्त दोनों ही वर्षों के वास्तव में मापित उपभोग से निर्धारित देश की स्थायी आय का $\bar{k}$ *अनुपात* है क्योंकि दोनों वर्षों का औसत अस्थायी उपभोग शून्य है, जिससे $\bar{c} = \bar{c}_p = \bar{k} \cdot \bar{y}_p$ होगा।

इस प्रकार, औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC), जो कि मापित आय से विभाजित मापित उपभोग के सिवा और कुछ नहीं है, की व्याख्या निम्नवत् की जा सकती है –

वर्ष 1 के लिए : $APC = \frac{\bar{c}_1}{\bar{y}_1} - \frac{\bar{c}_{p1}}{\bar{y}_1} - \frac{\bar{k}\,\bar{y}_{p1}}{\bar{y}_1}$; और $\bar{y}_{p_1} < \bar{y}_1$

तदनुसार, वर्ष 1 के लिए औसत उपभोग प्रवृत्ति का मान, जबकि y का मान प्रवृत्ति के मान से ऊपर है, $\bar{k}$ से कम ही होगा।

वर्ष 2 के लिए : $APC = \frac{\bar{c}_2}{\bar{y}_2} = \frac{\bar{c}_{p2}}{\bar{y}_2} = \frac{\bar{k}\,\bar{y}_{p2}}{\bar{y}_2}$; और $\bar{y}_{p_2} > \bar{y}_2$

तदनुसार, वर्ष 2 के लिए औसत उपभोग प्रवृत्ति का मान, जबकि y का मान प्रवृत्ति के मान से कम है, $\bar{k}$ से अधिक ही होगा।

इस प्रकार, अल्पावधिक उपभोग फलन का ढ़लान दीर्घावधिक उपभोग फलन की तुलना में कम होता है। इसके अलावा, अल्पावधिक चक्रीय उतार–चढ़ाव पर हम पाते हैं कि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति का मान औसत उपभोग प्रवृत्ति के मान से कम अर्थात् $MPC < APC$ होता है, जबकि दीर्घावधिक अवलोकन के लिए आप पाएँगे कि $APC = MPC$ अर्थात् ये दोनों मान बराबर होते हैं।

6.3.2 परिकल्पना के निहितार्थ

स्थायी आय परिकल्पना सरकार की राजकोषीय स्थिरीकरण नीतियों के लिए महत्वपूर्ण निहितार्थ रखती है। यह अस्थायी राजकोषीय प्रोत्साहन उपायों (जैसे कर कटौती एवं हस्तांतरण आय) के माध्यम से अर्थव्यवस्था को मंदी के दौरान व्यापार आदि में घाटे से उबरने के लिए सरकार की क्षमता को सीधे चुनौती देता है। इस प्रक्रिया में यह मॉडल अस्थायी केन्जियन माँग प्रबंधन तकनीक की विफलता की व्याख्या करता है।

किसी भी सरल केन्जियन प्राधार में सीमांत उपभोग प्रवृत्ति स्थिर रहती है। इसीलिए कोई भी कर–कटौती नीति अपने गुणक प्रभाव के माध्यम से उपभोग की माँग पर बड़ा प्रोत्साहक प्रभाव डाल सकती है। स्थायी आय परिकल्पना, बहरहाल, इंगित करती है कि करों में कोई भी अप्रत्याशित अस्थायी कटौती केवल उपभोक्ताओं की प्रयोज्य आय के अस्थायी घटक को बढ़ाएगी। चूँकि आय में अस्थायी वृद्धि का उपभोग माँग पर कोई महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है, इससे उपभोक्ताओं की बचत में वृद्धि होगी। इस प्रकार, इस स्वभाव की राजकोषीय नीति विफल होने की प्रबल संभावना होती है।

स्थायी आय परिकल्पना की एक सशक्त व्याख्या यह पहले से ही बतलाकर चलती है कि सामाजिक सुरक्षा उपाय (जैसे बेरोजगारी भत्ता) और कर–कटौती नीति समतुल्य परिणाम देने वाले साबित होंगे। इन उपायों से अस्थायी आय होती है और इस कारण ये परिवारों के उपभोग व्यय को प्रभावित नहीं करते हैं। हालाँकि, यह देखा गया कि अक्टूबर 2013 में संयुक्त राज्य अमेरिका की संघीय सरकार द्वारा 16–दिवसीय कामबंदी की वजह से विनियोग विधेयक के रुकने के परिणामस्वरूप 66 लाख कार्य–दिवसों का नुकसान हुआ और देश में सरकारी कर्मचारियों के बीच कुल उपभोग व्यय में भी काफी गिरावट दर्ज की गई।

यद्यपि इस कामबंदी का असर उन सरकारी कर्मचारियों की जीवन भर की अपेक्षित आय पर नहीं पड़ना चाहिए था (क्योंकि वे जानते थे कि काम के नुकसान के लिए उन्हें बाद में भुगतान कर दिया जाएगा), उनके उपभोग व्यय में गिरावट आई।

अधिकांश श्रमिकों ने स्थायी आय परिकल्पना के विपरीत अपने खर्च में कटौती करके अल्पावधिक आय आघात पर प्रतिक्रिया दी।

स्थायी आय परिकल्पना से सहज और भूलवश जो निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, उनमें से एक अधिकांश अर्थव्यवस्थाओं में चिरकालिक रूप से बढ़ती असमानता है। यह सिद्धांत बतलाता है कि प्रतिनिध्यात्मक बजट अध्ययनों में उच्च–आय समूहों की तुलना में निम्न–आय समूह औसत नकारात्मक अस्थायी आय दर्शाते हैं। समकृत उपभोग कायम रखने के लिए स्थायी उपभोग स्थायी आय पर निर्भर करता है। इसी कारण निम्न–आय समूहों में नकारात्मक बचत देखी जाती है जबकि उच्च–आय समूहों में सकारात्मक बचत। यह कालांतर में आय असमानता को बढ़ाता है।

इस संदर्भ में फ्रीडमैन ने स्पष्ट किया कि यदि आय की परिभाषा मापित आय के अनुसार ही हो तो शायद यह निहितार्थ सत्य हो सकता है। उसके अनुसार, बहरहाल, यदि आय की परिभाषा को नियमनिष्ठतः स्थायी आय के रूप में लिया जाता है तो स्थायी आय परिकल्पना आय की असमानता के चिरकालिक व्यवहार पर कोई सबूत नहीं दे पाती है। इसके अलावा, मापित आय को धन का एक निकृष्ट सूचकांक माना जाता है।

6.3.3 परिकल्पना की कमियाँ

फ्रीडमैन की स्थायी आय परिकल्पना की मुख्य रूप से निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है –

- यह मॉडल आय और उपभोग चरों को स्थायी और अस्थायी घटकों में विघटित करता है। यद्यपि सैद्धांतिक रूप से इसके घटकों को आनुभविक कार्य के लिए नहीं लिया जा सकता।
- स्थायी आय के अंतर्निहित अनुमान में संपत्ति आय की अवधारणा को ध्यान में रखा जाता है। संपत्ति की आय का महत्व अथवा उपभोग व्यवहार पर संपत्ति बाजार में उतार–चढ़ाव का प्रभाव इस मॉडल में स्पष्ट रूप से नहीं बताया गया है।
- तीसरे, और स्थायी आय परिकल्पना की संभवतः सर्वाधिक विवादास्पद अवधारणा अर्थात् अस्थायी आय और अस्थायी उपभोग के बीच कोई संबंध नहीं होता, का समर्थन करने के लिए फ्रीडमैन ने उपभोग व्यय के हिस्से के रूप में उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं पर खर्च को ध्यान में नहीं रखा।
- अनेक अर्थशास्त्री फरीडमैन के इस विचार पर आपत्ति जताते हैं कि वह अस्थायी आय से उपभोग करने की सीमांत प्रवृत्ति शून्य मानते हैं। जबकि अनुभवजन्य रूप से कुछ प्रमाण यह दर्शाते हैं कि अस्थायी आय से उपभोग करने की सीमांत प्रवृत्ति शून्य से अधिक होती है। किसी भी कम आय वाले गरीब व्यक्ति के लिए अप्रत्याशित अनपेक्षित लाभ से उपभोग करने की सीमांत प्रवृत्ति निश्चित रूप से सकारात्मक होगी। यहाँ तक कि बाध्यकारी उधार बाध्यता के मामले में भी ऐसा ही होता है।
- कुछ अर्थशास्त्री आय वर्ग की परवाह किए बिना निरंतर औसत उपभोग प्रवृत्ति संबंधी फ्रीडमैन के विचार का विरोध करते हैं। उनके अनुसार, अमीर लोगों की तुलना में गरीब लोग अपनी स्थायी आय का अधिक हिस्सा खर्च करने के लिए

अधिक दबाव महसूस करते हैं। स्थायी आय से औसत उपभोग प्रवृत्ति का मान बढ़ती आय के साथ घटना चाहिए।

बोध प्रश्न 2

1. मान लीजिए कि एक सॉफ्टवेयर इंजीनियर पिछले तीन महीनों से कोविड–19 लॉकडाउन अवधि के दौरान घर से काम कर रहा है और कंपनी ने उसे ₹ 10,000 का इनाम दिया है। स्थायी आय परिकल्पना के अनुसार, क्या वह इस बोनस का अधिकांश हिस्सा खर्च करेगा यदि –

   (a) वह जानता हो कि उसे हर 3 महीने में बोनस की यह राशि प्राप्त होगी, और

   (b) वह जानता हो कि यह मात्र एक बार का बोनस है?

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

2. कारण बताएँ कि अस्थायी आय और अस्थायी उपभोग के बीच कोई संबंध क्यों नहीं होता।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

3. मान लीजिए कि वर्ष 0 के अंत तक सरकार एक संतुलित बजट चला रही थी, जिस दौरान $T = G = 0$ दर्ज किया गया। वर्ष 1 में सरकार ने करों में 1 तक की कटौती करने का निर्णय लिया। इस घाटे को सरकार ऋण के माध्यम से वित्तपोषित कर रही है, जिसका निर्णय सरकार ने वर्ष 2 में चुकाने के लिए किया है। यह भी मान लीजिए कि सरकार को अपने व्यय पथ को अपरिवर्तित रखना है। विश्लेषण करें कि यह कर–कटौती नीति वास्तविक ब्याज दर 0.05 रहने पर उपभोक्ता के उपभोग और बचत को कैसे प्रभावित करेगी।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

4. उपर्युक्त समस्या में मान लीजिए कि वर्ष 1 के अंत में उपभोक्ता की मृत्यु होनी है और उसे अपनी आने वाली पीढ़ी की परवाह नहीं है। उक्त कर कटौती से उसका उपभोग कैसे प्रभावित होगा?

....

....

....

....

....

6.4 सार–संक्षेप

एंडो और मोदिग्लिआनी ने अपने 'लाइफ साइकिल हाइपोथिसिस' में इस बात पर प्रकाश डाला कि यद्यपि व्यक्तियों की आय उनके जीवनकाल में काफी भिन्न–भिन्न होती है, वे जीवनकाल में एक समकृत उपभोग पथ बनाए रखते हैं। उपभोक्ता अपने उपभोग पथ को समकृत करने के लिए उधार और बचत का उपयोग करते हैं। नीति–निर्माताओं के लिए बचत दर में अंतर्देशीय अंतर और धन की वृद्धि पर उसके प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए इस मॉडल का सशक्त निहितार्थ था।

फ्रीडमैन ने स्थायी आय अस्थायी आय की अवधारणा को पेश करके व्यक्ति की आजीवन आय में भिन्नता को समझाया। उसकी स्थायी आय परिकल्पना ने बताया कि आय और उपभोग के अस्थायी घटकों के बीच कोई संबंध नहीं होता। उपभोग मुख्य रूप से स्थायी आय पर निर्भर करता है। इस मॉडल ने अल्पावधिक राजकोषीय प्रोत्साहन उपायों के केन्जियन नीति–निर्धारण की प्रभावशीलता पर सवाल उठाया।

6.5 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) उपभोक्ता की आजीवन आय = कार्य वर्ष × वार्षिक श्रम आय
$= (65 - 20) \times 30{,}000 = 1{,}350{,}000.$

वार्षिक औसत उपभोग व्यय = आजीवन आय / जीवनकाल
$= 1{,}350{,}000 / (80-20) = 22500$

आपको निम्नलिखित विधि से भी वही परिणाम प्राप्त होंगे –

$\frac{65-20}{80-20} \times 30000 = 22500$

$MPC = \frac{65-20}{80-20} = 0.75$

2) उसका वार्षिक उपभोग व्यय $= (30 + 60 + 90 + 0) / 4 = 45$

अतः प्रथम अवधि में बचत $= (30 - 45) = -15$

दूसरी अवधि में बचत $= (60 - 45 - 15) = 0$ (उसने पहली अवधि की निर्बचत को चुकता कर दिया)

तीसरी अवधि में बचत $= (90 - 45) = 45$

चौथी अवधि में बचत = $(0 - 45) = -45$ (उसने अपनी तीसरी अवधि की बचत का उपयोग किया) पहली अवधि में व्यक्ति ₹ 15 की निर्बचत (उधार) करता है।

पहली अवधि के अंत में उसे ₹ 15 की संपत्ति प्राप्त हुई, वह उससे अपना कर्ज चुकाएगा। वह फिर से अपने सम उपभोग प्रवाह की पुनर्गणना करेगा

= (60 + 90 + 0) / 3 = ₹ 50

पहले उसका उपभोग व्यय था = ₹ 45

दूसरी अवधि के बाद उपभोग व्यय में परिवर्तन

= (50−45) = 5

बोध प्रश्न 2

1) पहले मामले में व्यक्ति को पता था कि उसे हर 3 महीने में बोनस मिलने वाला है, इसलिए यह उसकी जीवन भर की आय में स्थायी वृद्धि है। स्थायी आय परिकल्पना के अनुसार, उपभोग स्थायी आय पर निर्भर करता है। अतः, जैसे–जैसे स्थायी आय बढ़ेगी, उपभोक्ता इस बोनस आय को अधिकाधिक खर्च करेगा।

   दूसरे मामले में, उपभोक्ता जानता था कि बोनस केवल एक बार था, इसलिए यह अस्थायी है। स्थायी आय परिकल्पना के अनुसार, अस्थायी उपभोग और अस्थायी आय के बीच संबंध नगण्य या शून्य होता है। अतः, इस मामले में उपभोक्ता अपनी बोनस राशि खर्च नहीं करेगा।

2) फ्रीडमैन ने अस्थायी आय और अस्थायी खपत के बीच कोई संबंध न होने के तीन कारण बताए हैं। पाठांश 6.4.1 का अध्ययन करें और उत्तर दें।

3) वर्ष 1 में चूँकि सरकारी व्यय पथ पूर्ववत रहता है, $G_1 = 0$ और वर्ष 1 में कर कटौती भी होती है, इसलिए $T_1 = -1$ होगा। तदनुसार, वर्ष 1 में सरकारी घाटे का आकार = $(G_1 - T_1) = 1$ होगा। अतः, वर्ष 1 में ऋण की राशि, $B_1 = 1$ (क्योंकि पिछले वर्ष 0 से कोई संचित ऋण नहीं था)।
   वर्ष 2 में सरकारी ऋण की राशि = $B_2 = B_1 \times (1 + r)$
   $= 1 \times (1 + 0.05) = 1.05$
   यदि सरकार को उक्त ऋण वर्ष 2 में चुकाया जाना है तो सरकार को ऋण B_2 की राशि का प्राथमिक अधिशेष बनाना होगा। यदि सरकार को भी उसी सरकारी व्यय पथ (अर्थात् $G_2 = 0$) को बनाए रखने की आवश्यकता लगती हो तो इस प्राथमिक अधिशेष को बनाने का एकमात्र तरीका वर्ष 2 में 1.05 तक की करवृद्धि करना होगा।

   इसे पूर्ण दूरदर्शिता के साथ जानते हुए उपभोक्ताओं को पता है कि वर्ष 1 में 1 तक की कर कटौती वर्ष 2 में करों में 1.05 तक की वृद्धि के बराबर होगी। अतः वर्ष 1 में, यद्यपि कर कटौती के कारण उपभोक्ताओं की प्रयोज्य आय में वृद्धि होती है, उपभोग की माँग यथावत रहेगी और प्रयोज्य आय में पूरी वृद्धि बचत के लिए जाएगी। वर्ष 2 में वर्ष 1 की बचाई गई राशि और उस पर अर्जित ब्याज की दर का उपयोग वर्ष 2 में बढ़े हुए कर के भुगतान के लिए किया जाएगा, इसलिए, वर्ष 2 में, उपभोग की माँग और बचत यथावत देखी जाएँगी।

4) उपभोक्ता के वर्ष 1 के अंत में मरने का अनुमान है और उसे भावी पीढ़ी की परवाह नहीं है। कर कटौती के कारण उपभोक्ता की प्रयोज्य आय 1 अवधि में बढ़ जाती है। वह इस बढ़ी हुई प्रयोज्य आय का उपयोग बचत के बजाय अतिरिक्त उपभोग व्यय पर करेगा क्योंकि भविष्य में उच्च करों का भुगतान आने वाली पीढ़ियों द्वारा किया जाएगा।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 7 निवेश फलन*

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 व्यापार स्थिर निवेश
  7.2.1 निवेश का नियोक्लासिकल मॉडल और इष्टतम पूँजी भंडार
  7.2.2 पूँजी भंडार की समायोजन गति
  7.2.3 शेयर बाजार और टोबिन का क्यू–सिद्धांत
7.3 आवासीय निवेश
  7.3.1 सैद्धांतिक संरचना
  7.3.2 चित्रात्मक विश्लेषण
  7.3.3 मॉडल के निहितार्थ
7.4 माल–सूची निवेश
  7.4.1 माल–सूची रखने का उद्देश्य
  7.4.2 माल–सूची, वास्तविक ब्याज दर और व्यापार चक्र
7.5 सार–संक्षेप
7.6 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि –

- निवेश को प्रेरित करने वाले कारकों की पहचान कर सकें;
- निवेश की दर पर मौद्रिक नीति और राजकोषीय नीति के प्रभाव की व्याख्या कर सकें;
- वास्तविक पूँजी भंडार के इष्टतम पूँजी भंडार में समायोजन की गति का वर्णन कर सकें;
- निवेश में उतार–चढ़ाव और शेयर बाजार में उतार–चढ़ाव के बीच संबंध को पहचान सकें;
- समझा सकें कि गृह ऋण और कर नीतियाँ आवासीय परियोजनाओं पर निवेश के घर खरीदारों के निर्णय को कैसे प्रभावित करते हैं; तथा
- उत्पादन के एक भाग को माल–सूची के रूप में अलग रखने के पीछे के उद्देश्यों की पहचान कर सकें।

7.1 प्रस्तावना

पिछली दो इकाइयों में हमने किसी परिवार के उपभोग विकल्पों का विश्लेषण किया। अब इस इकाई में हम निवेश निर्णय के सैद्धांतिक पहलुओं का विश्लेषण करेंगे। जैसा कि आप जानते हैं, निजी निवेश दीर्घावधिक विकास के साथ–साथ व्यापार में अल्पावधिक उतार–चढ़ाव के संदर्भ में भी कुल माँग का एक महत्वपूर्ण घटक होता है।

---

* सुश्री वैशाखी मंडल, सहायक प्राध्यापक, इंद्रप्रस्थ महिला कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

विकास की दृष्टि से उपभोग में समाज के संसाधनों का आवंटन और विभिन्न प्रकार का निवेश (भौतिक पूँजी, वित्तीय पूँजी, मानव पूँजी और अनुसंधान एवं विकास के रूप में) दोनों ही किसी भी अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पाद के आकार निर्धारण और स्थिरावस्था संवृद्धि के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं।

इस इकाई में हम तीन प्रकार के निवेश पर चर्चा करेंगे, यथा –

(i) व्यापार स्थिर निवेश,
(ii) आवासीय निवेश, और
(iii) माल–सूची निवेश।

निवेश व्यय कुल माँग का सबसे अस्थिर घटक होता है और तदनुसार आर्थिक गतिविधियों के उतार–चढ़ाव का एक प्रमुख स्रोत भी, जो कि प्रायः व्यापार चक्र की ओर ले जाता है।

निवेश के महत्व को उस वित्त बाजार के माध्यम से भी उजागर किया जा सकता है जो अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है। इस इकाई में हम निवेश और वित्त बाजार के बीच दोतरफा संबंधों की जाँच भी करेंगे।

7.2 व्यापार स्थिर निवेश

व्यापार स्थिर निवेश उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए फर्मों द्वारा किए जाने वाले व्यय को निरूपित करता है। परंपरागत रूप से इसे निम्नवत् विघटित किया जाता है –

(i) उपकरण (कंप्यूटर, मशीन आदि),
(ii) प्राधार (भूमि, संयंत्र, गोदाम आदि), और
(iii) बौद्धिक संपदा (सॉफ्टवेयर, अनुसंधान एवं विकास, आदि)

निवेश के तीन महत्वपूर्ण सिद्धांत बताए जाते हैं, यथा –

(i) नियोक्लासिकल सिद्धांत,
(ii) त्वरक सिद्धांत, और
(iii) क्यू–सिद्धांत।

प्रथम, नियोक्लासिकल अथवा नवशास्त्रीय सिद्धांत, जो कि अधिकांशतः डेल डब्ल्यू. जोर्गेनसन द्वारा विकसित किया गया था, किसी भी अर्थव्यवस्था में इष्टतम पूँजी भंडार के माध्यम से उत्पादन और कीमतों के निर्धारण में मदद करता है।

द्वितीय, त्वरक सिद्धांत पूँजी भंडार के स्तर में समायोजन की प्रक्रिया का विश्लेषण करता है।

तृतीय, जेम्स टोबिन का क्यू–सिद्धांत समायोजन लागत को शामिल करने के लिए नियोक्लासिकल सिद्धांत का विस्तार करता है। इस सिद्धांत के अनुसार फर्में उस निवेश स्तर का चयन करती हैं जहाँ किसी फर्म का अपेक्षित वर्तमान मूल्य अधिकतम हो।

आगे हम इन सिद्धांतों पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

7.2.1 निवेश का नियोक्लासिकल मॉडल और इष्टतम पूँजी भंडार

निवेश का नियोक्लासिकल मॉडल एक भली भाँति काम करने वाली और कुशलता से समन्वय करने वाली बाजार प्रणाली की कल्पना करता है। डेल डब्ल्यू. जोर्गेन्सन ने नियोक्लासिकल निवेश सिद्धांत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह सिद्धांत इस अवधारणा पर आधारित है कि फर्में अधिकतम लाभ प्राप्त करती हैं और पूँजी भंडार के इष्टतम स्तर तक पहुँचने के लिए लागत–लाभ विश्लेषण का उपयोग करती हैं।

हमारे मॉडल में एक विशिष्ट लाभ अधिकतम करने वाली फर्म अपने उत्पादन Y का उत्पादन करने के लिए श्रम (L) और पूँजी (K) को नियोजित करती है। उत्पादन कार्य इस संबंध को निम्नवत् निर्दिष्ट करता है –

$$Y = F(L, K) \qquad \ldots (7.1)$$

यह एक विशिष्ट नियोक्लासिकल उत्पादन फलन है जहाँ यह उत्पादन के कारक की घटती सीमांत उत्पादकता को प्रदर्शित करता है।

हम यह मानकर चलते हैं कि माल बाजार और आगत बाजार दोनों में ही पूर्ण प्रतिस्पर्धा है ताकि कोई भी फर्म अपने उत्पाद को दी गई कीमत P पर बेच सके। यह फर्म चालू मजदूरी दर w पर श्रमिक काम पर लगाती है।

चलिए, मान लेते हैं कि P_K वह आपूर्ति कीमत है जिस पर फर्म द्वारा पूँजीगत वस्तु की एक इकाई खरीदी जा सकती है।

अब यह तय करने के लिए कि फर्म कितनी पूँजी का उपयोग करेगी, व्यष्टि अर्थशास्त्र से मूल इष्टतमीकरण सिद्धांत को याद करें।

फर्म अधिकतम लाभ के सिद्धांत के अनुसार कार्य करेगी, यथा –

$Max\ \Pi$ = (कुल राजस्व – कुल लागत) = [$P \cdot F(L, K)$ – (श्रम लागत + कुल पूँजी लागत)] …(7.2)

कुल श्रम लागत = w.L

कुल पूँजी लागत = पूँजी की एक इकाई की उपयोगकर्ता लागत × K

फर्म लाभ को अधिकतम करने के सिद्धांत के अनुसार काम करेगी। अतः हमें प्रति इकाई पूँजी की इस **उपयोगकर्ता लागत** को परिभाषित करने की आवश्यकता है। इसके तीन घटक होते हैं –

1. फर्म बाजार से ब्याज दर (i) पर अथवा अपने स्वयं के संसाधनों से उधार लेकर पूँजीगत माल खरीद सकती है। यदि पूँजी उधार लेकर खरीदी जाती है तो पूँजी की एक इकाई की उधार लागत $P_K.i$ होगी। यदि फर्म ने अपने ही संसाधनों के उपयोग से पूँजी खरीदी है तो वह इस पैसे को इसके बदले उधार दे सकती थी और $P_K.i$ अर्जित कर सकती थी। दूसरी स्थिति में यह पूँजी की **अवसर लागत** कहलाती है। वित्तपोषण के दोनों ही तरीकों में $P_K.i$ पूँजी की ब्याज लागत होगी।

2. आप जानते हैं कि पूँजीगत वस्तुएँ टिकाऊ होती हैं, लेकिन वे मूल्यह्रास (यथा, टूट–फूट, और अप्रचलन भी) के अधीन होती हैं। मान लीजिए δ मूल्यह्रास की दर है। अतएव, मूल्यह्रास की मौद्रिक लागत $P_K.\delta$ होगी।

3. यदि पूँजीगत वस्तुओं की कीमत, P_K घटती है, तो पूँजी का मूल्य कम हो जाता है। इस हानि की लागत $-\Delta P_K$ होती है, जहाँ प्रतीक Δ परिवर्तन को इंगित करता है और ऋण चिह्न (–) हमारी लागत के मान को दर्शाता है, लाभ को नहीं।

इस प्रकार, फर्म द्वारा खरीदी गई पूँजी की एक इकाई की उपयोगकर्ता लागत (मात्रिक पदों में) होगी –

$$= P_K.i + \delta.P_K - \Delta P_K = P_K\left(i + \delta - \left(\frac{\Delta P_K}{P_K}\right)\right) \qquad \ldots (7.3)$$

इसे सरल बनाने के लिए, चलिए, मान लेते हैं कि पूँजीगत वस्तुओं की कीमत में वृद्धि अन्य वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि के ही समान है।

तब, $$\frac{\Delta P_K}{P_K} = \text{मुद्रास्फीति दर} = \pi.$$

इस मान को समीकरण (7.2) में प्रतिस्थापित करने पर हमें पूँजी की एक इकाई की उपयोगकर्ता लागत प्राप्त होती है, यथा –

$$= P_K(i + \delta - \pi)$$

चूँकि नाममात्र ब्याज दर (i) - मुद्रास्फीति दर (π) = वास्तविक ब्याज दर (r), हमें निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होते हैं –

पूँजी की उपयोगकर्ता लागत $= P_K(r + \delta)$ … (7.4)

और,

कुल पूँजी लागत $= P_K(r + \delta) \times K$ … (7.5)

फर्म की इष्टतमीकरण निर्मेय (समीकरण 7.2) में पूँजीगत लागत (समीकरण 7.5) का मान रखने पर, हमें यह समीकरण प्राप्त होता है –

$$\text{Max}\ \Pi = [P \cdot \text{F}(\text{L}, \text{K}) - w.L - P_K(r + \delta) \times K] \quad \dots (7.6)$$

उक्त फर्म क्रमशः श्रम (L) और पूँजी (K) के संबंध में अपने उद्देश्य फलन (समीकरण 7.6) को अधिकतम करेगी। पूँजी के संदर्भ में प्रथम कोटि शर्त निम्नवत् लिखी जाती है –

$$\frac{\partial \Pi}{\partial K} = PF_k - P_K(r + \delta) = 0$$

$$\Rightarrow P.MP_k = P_K(r + \delta)$$

[**नोट** : $F_k = MP_k =$ पूँजी का सीमांत उत्पाद]

$\Rightarrow$ पूँजी के सीमांत उत्पाद का मूल्य $= P_K(r + \delta)$ … (7.7)

समीकरण (7.7) पूँजी के लिहाज से फर्म के लाभ अधिकतमकरण की स्थिति है। इसका अर्थ है कि पूँजी की एक अतिरिक्त इकाई की लागत $P_K(r + \delta)$ होगी और पूँजी की अतिरिक्त इकाई MP_k इकाइयों में वृद्धि करेगी, जिससे राजस्व $P.MP_k$ उत्पन्न होता है।

अतः पूँजी निवेश की मात्रा तब तक बढ़ाई जाएगी जब तक कि अतिरिक्त राजस्व (लाभ) पूँजी भंडार जोड़ने के लिए अतिरिक्त उपगत लागत से अधिक न हो जाए है और इसका विपरीत भी सत्य है। इष्टतम पूँजी भंडार उस बिंदु पर निर्धारित किया जाएगा जहाँ अतिरिक्त राजस्व अतिरिक्त लागत के बराबर हो।

समीकरण (7.7) को इस प्रकार लिखा जा सकता है –

$$MP_k = \frac{P_K}{P}.(r + \delta) = rc \quad \dots (7.8)$$

यहाँ, पद $\frac{P_K}{P}.(r + \delta) =$ *पूँजी की वास्तविक किराया लागत* $= rc$

यदि पूँजी का सीमांत उत्पाद पूँजी की वास्तविक किराया लागत से अधिक होता है तो फर्म को अपने पूँजी भंडार में वृद्धि लाभदायक लगती है, $\Delta K > 0$ होगा। चर K के लिए समीकरण (7.8) को हल करने से पूँजी K^* का इष्टतम अथवा वांछित भंडार प्राप्त होगा।

वांछित पूँजी भंडार, K^* पूँजी की किराया लागत rc और उत्पादन के स्तर के बीच सामान्य संबंध द्वारा निम्नवत् दर्शाया जाता है –

$$K^* = f(rc, Y) \quad \ldots (7.9)$$

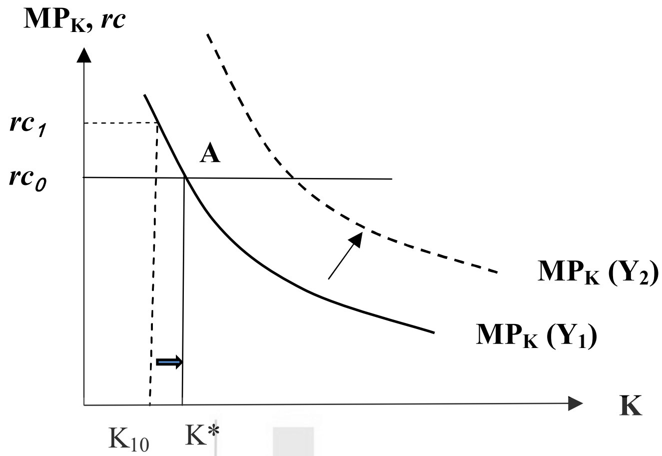

चित्रः 7.1: पूँजी का इष्टतम स्टॉक

इष्टतम पूँजी स्टॉक K^* पूँजी का वह स्तर है जिस पर MP_K rc_0 के बराबर है। यहाँ MP_K मूल्य–सूची को उत्पादन Y_1 के किसी दिए गए स्तर के लिए तैयार किया गया है। उत्पादन में वृद्धि MP_K मूल्य–सूची को ऊपर की ओर दाईं तरफ खिसका देती है।

समीकरण (7.9) में किराया लागत में वृद्धि से पूँजी भंडार का इष्टतम अथवा वांछित स्तर घट जाता है। इसके अलावा, सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि से पूँजी भंडार का इष्टतम स्तर बढ़ जाता है।

हमने उक्त संबंध को चित्र 7.1 में दर्शाया है। यहाँ जब किराया लागत rc_0 है तो वांछित पूँजी भंडार K^* है। किराया लागत में rc_1 तक की कोई भी वृद्धि वांछित पूँजी भंडार को घटाकर K_1 पर ले आती है। उत्पादन में Y_1 से लेकर Y_2 तक की कोई भी वृद्धि MPK वक्र को दाईं ओर ऊपर खिसका देगी। परिणामतः, संतुलन पूँजी भंडार में वृद्धि होगी।

इस प्रकार, व्यापार स्थिर निवेश पूँजी के सीमांत उत्पाद, ब्याज की वास्तविक दर और मूल्यह्रास दर पर निर्भर करता है। वास्तविक ब्याज दर में कमी से पूँजी की लागत कम हो जाती है। पूँजी का स्वामी होने से लाभ बढ़ता है और अधिक संचय करने के लिए प्रोत्साहन बढ़ जाता है (अर्थात् निवेश में वृद्धि) और इसका विपरीत भी सत्य है। अतएव, समीकरण (7.8) ब्याज दर और निवेश के बीच व्युत्क्रम संबंध को दर्शाता है।

7.2.2. पूँजी भंडार की समायोजन गति

यदि वास्तविक पूँजी भंडार किसी भी समयबिंदु पर इष्टतम पूँजी भंडार से भिन्न होता है तो फर्म किस गति से अपने पूँजी भंडार को इष्टतम स्तर की ओर समायोजित करने के बारे में सोचेगी? आइए, जानें।

इस समायोजन गति का पता लगाने में हमारी मदद करता है – **लोचदार त्वरक मॉडल** (जिसे *क्रमिक त्वरक मॉडल* भी कहा जाता है)। चलिए, मान लेते हैं कि अवधि $(t - 1)$ के अंत में वास्तविक पूँजी भंडार K_{t-1} है और इष्टतम पूँजी भंडार K^* है।

फर्म प्रत्येक अवधि में इष्टतम और वास्तविक पूँजी भंडार के बीच के अंतर के एक अंश, λ, को बंद करने की योजना बना रही है।

अतएव, $t^{वीं}$ अवधि का पूँजी भंडार, K_t निम्नवत् नजर आएगा –

$$K_t = K_{t-1} + \lambda(K^* - K_{t-1}) \qquad \ldots (7.10)$$

उक्त $t^{वीं}$ अवधि के निवल निवेश को निम्नवत् लिखा जा सकता है –

$$I_t = K_t - K_{t-1} = \lambda(K^* - K_{t-1}) \qquad \ldots (7.11)$$

इसी प्रकार, $(t+1)^{वीं}$ अवधि के निवल निवेश को निम्नवत् लिखा जाएगा –

$$I_{t+1} = K_{t+1} - K_t = \lambda(1-\lambda)(K^* - K_{t-1}) \qquad \ldots (7.12)$$

इस प्रकार, $t^{वीं}$ अवधि में K_{t-1} और K^* के बीच प्रारंभिक अंतर के λ अंश का निवेश किया जा रहा है। साथ ही, $(t+1)^{वीं}$ अवधि में निवेश की राशि में मूल अंतर का λ(1 – λ) अंश बनाया जा रहा है। आप देखेंगे कि चूँकि λ एक अंश है, λ(1 – λ) चर λ के मान से कम है। यही कारण है कि प्रत्येक अनुवर्ती अवधि में वास्तविक पूँजी भंडार और इष्टतम पूँजी भंडार के बीच के अंतर को पाटने के लिए निवेश की मात्रा लघु से लघुतर होती जा रही है। अतएव, अब समीकरण निम्नवत् दिखाई देगा –

$$< \cdots < I_{t+1} = K_{t+1} - K_t < I_t = K_t - K_{t-1} < \cdots <$$

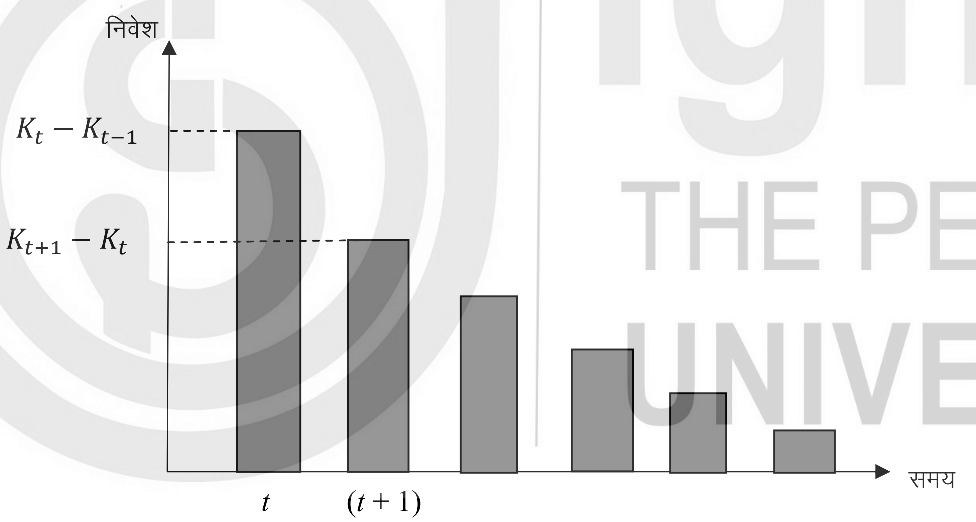

चित्र 7.2: लोचदार त्वरक (accelerator) मॉडल में निवेश की गति

निवेश तब तक जारी रहता है जब तक वास्तविक पूँजी भंडार पूँजी के इष्टतम स्तर तक नहीं पहुँच जाता। चर λ का मान जितना अधिक होगा, समायोजन की गति उतनी ही तेज होगी।

ऊपर दिया गया चित्र 7.2 निवेश की मात्रा लघु से लघुतर होने अर्थात् समायोजन की गति को दर्शाता है। आप देखेंगे कि किया गया निवेश वास्तविक स्तर और वांछित स्तर के के अंतर को खत्म करने के लिए समय के साथ घटता जाता है।

7.2.3. शेयर बाजार और टोबिन का क्यू–सिद्धांत

अब तक हम यह मानकर चले हैं कि किसी भी फर्म के लिए धन के स्रोत के रूप में या तो उधार ली गई नकदी होती हैं या फिर स्वयं के संसाधन। किसी भी फर्म के लिए धन का तीसरा स्रोत, बहरहाल, किसी फर्म के शेयर अथवा इक्विटीज हो सकती हैं।

कोई भी फर्म शेयर बाजार में नई इक्विटी जारी कर सकती है और धन जुटा सकती है। इक्विटी एक ऐसा वित्तीय साधन है जिसका शेयर बाजार में कारोबार किया जा सकता है।

यही विधि है जिससे निवेश में और शेयर बाजार में उतार—चढ़ावों के बीच की कड़ी स्थापित होती है। जेम्स टोबिन ने सबसे पहले अपने प्रसिद्ध 'क्यू—सिद्धांत' में निवेश और शेयर बाजार के बीच संबंध को औपचारिक रूप से सामने रखा।

यह व्यापक रूप से माना जाता है कि शेयर बाजार की हलचल फर्मों या अर्थव्यवस्था की स्थिति का एक कमजोर संकेतक होता है, कारण शेयर बाजार का बहिर्जात कारकों से प्रभावित होना। आज की दुनिया में, हालाँकि, हम शेयर बाजार और निगमित फर्मों के विकास के बीच संबंध को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं।

फर्मों को पूँजी जुटाने में मदद करने में शेयर बाजार, एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन इक्विटीज के खरीदार, यानी, शेयरधारक इन इक्विटीज को लेकर रखने से लाभांश और पूँजीगत लाभ (जो इक्विटी मूल्य में बदलाव के कारण उत्पन्न होते हैं) कमाते हैं।

क्यू—सिद्धांत के अनुसार, निवेश का स्तर किसी भी फर्म की परिसंपत्तियों के बाजार मूल्य और उन परिसंपत्तियों की प्रतिस्थापन लागत के बीच के अनुपात पर निर्भर करता है। टोबिन ने उल्लेख किया कि *यदि शेयर बाजार में किसी कंपनी का मूल्य परिसंपत्ति की प्रतिस्थापन लागत (किसी प्रकार की व्यापार नियत पूँजी) से काफी अधिक हो तो सिद्धांत रूप में उस कंपनी के पास निवेश बढ़ाने के लिए एक प्रमुख प्रोत्साहन होता है।* क्यू—अनुपात को निम्नवत् लिखा जा सकता है –

$$q = \frac{\text{स्थापित पूँजी का बाजार मूल्य}}{\text{पूँजी की प्रतिस्थापन लागत}} \quad \ldots (7.13)$$

अथवा,

$$q = \frac{\text{किसी फर्म की परिसंपत्तियों पर शेयर बाजार द्वारा तय मूल्य}}{\text{उस फर्म की परिसंपत्तियों का वास्तविक वर्तमान मूल्य}}$$

तदनुसार, यदि $q > 1$ हो तो उस नई पूँजी के मौद्रिक मूल्य की प्रत्येक इकाई के लिए जो फर्म खरीदने की योजना बना रही है, फर्म धन की q इकाइयों के लिए शेयरों को बेच सकती है और लाभ ($q - 1$) प्राप्त कर सकती है।

इस प्रकार, फर्म के समक्ष नए शेयरों के निर्गम के माध्यम से अपने पूँजी भंडार का विस्तार करने के लिए एक प्रोत्साहन दिखाई पड़ता है। इसका तात्पर्य फर्म के लिए निवेश में वृद्धि से है। इसी तरह के तर्क को लागू करते हुए, यदि $q < 1$ हो तो बाजार फर्म पर उसके वास्तविक मूल्य की तुलना में कम मूल्य रखता है। तदनुसार, फर्म को अपने पूँजी भंडार में वृद्धि करने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं होगा।

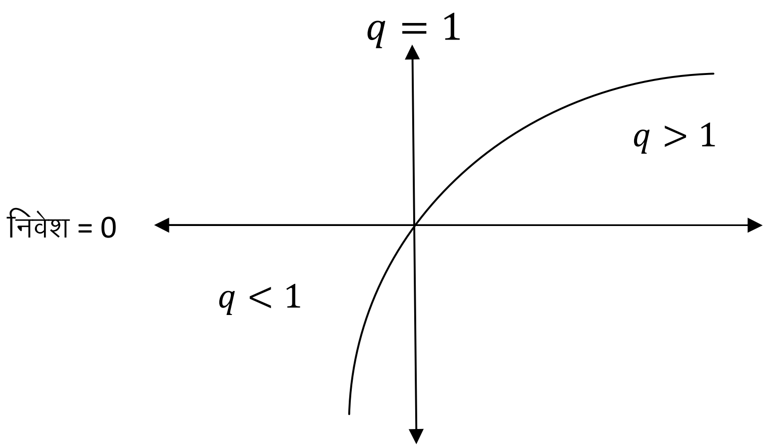

चित्र 7.3: निवेश का क्यू–सिद्धांत

यदि $q > 1$ हो तो निवल निवेश करने के लिए प्रोत्साहन अवश्य होगा। किंतु यदि $q < 1$ हो तो फर्मों को अपनी पूँजी को बेचना शुरू कर देना चाहिए क्योंकि उन्हें इसके लिए सेकेंड–हैंड मार्केट में शेयरधारकों द्वारा उस पर रखे गए मूल्य की तुलना में अधिक मूल्य मिलेगा।

उक्त क्यू–सिद्धांत, नियोक्लासिकल निवेश सिद्धांत से निकटता से इस तरह जुड़ा है कि यदि नई पूँजी पर लाभ की दर पूँजी की लागत से अधिक हो तो फर्मों को निवेश करना चाहिए। निवेश के सिद्धांत के रूप में क्यू–सिद्धांत का तात्पर्य है कि जब शेयर बाजार में तेजी होती है तो आमतौर पर शेयरों का मूल्यांकन अधिक होता है। यह फर्मों को नए शेयर जारी करके निवेश बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसी तर्क के अनुसार, जब शेयर बाजार में मंदी होती है तो निवेश कम हो सकता है।

इसके अलावा, फर्में मंदी रुख के दौर में विलय और अधिग्रहण के माध्यम से अपनी स्थिति को मजबूत करेंगी। टोबिन के प्रस्ताव के बावजूद, वास्तव में निवेश और शेयर भावों के बीच सकारात्मक संबंध कोई मजबूती नहीं दिखाते। इस कमजोर कड़ी के पीछे मुख्य कारण हैं – शेयर भावों की उच्च अस्थिरता, निवेश की समायोजन लागत, शेयरधारकों को सटीक जानकारी देने में शेयर बाजार की विफलता, शेयर बाजार पर बहिर्जात कारकों का प्रभाव और निवेशकों के मनोभाव।

बोध प्रश्न 1

1. मान लीजिए कि $MP_K = 20 - 0.02K$ प्रत्याशित भावी सीमांत उत्पाद है, जहाँ K भावी पूँजी स्टॉक है। मूल्यह्रास दर (–)20% है और वास्तविक ब्याज दर 10% प्रति अवधि है। फर्म उत्पादन के 50% के बराबर कर का भुगतान करती है। पूँजी की एक इकाई की कीमत उत्पादन की 1 इकाई है। कर–समायोजित वांछित पूँजी भंडार का मूल्य आकलित करें।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. एक कॉब–डगलस उत्पादन फलन के लिए γ (गामा, पूँजी का गुणांक) = 0.3, Y (उत्पादन) = 10 और rc (किराया लागत) = 0.12 है। यदि उत्पादन के 20 तक बढ़ने की उम्मीद हो तो वांछित पूँजी भंडार में कितना परिवर्तन होगा? मान लीजिए कि आय में बदलाव की उम्मीद से पहले पूँजी भंडार वांछित स्तर पर था। आगे मान लीजिए कि निवेश के लोचदार समायोजन मॉडल में $\lambda = 0.2$ रहता है। प्रत्याशित आय परिवर्तन के बाद पहले वर्ष में निवेश की दर क्या होगी?

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

3. एक ऐसी अल्पकालिक निवेश परियोजना पर विचार करें जिसकी लागत ₹ 1000 आज स्थापित करने के लिए (पहली अवधि में) आती है। यही परियोजना दूसरे वर्ष में ₹ 500 का लाभ और फिर तीसरे वर्ष में ₹ 700 का लाभ अर्जित करती है। तीसरे वर्ष के अंत तक कारखाना विघटित हो जाता है। क्या ब्याज दर 10% हो जाने पर परियोजना शुरू कर दी जानी चाहिए?

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

4. कोई देश किसी युद्ध में अपना अधिकांश पूँजी भंडार खाली कर बैठता है। पूँजी भंडार की इस हानि का वांछित निवेश पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

5. निवेश के क्यू–सिद्धांत के संदर्भ में मान लीजिए कि q इकाई से कम है। क्या किसी फर्म के लिए अपने पूँजी भंडार को बढ़ाना सही कदम होगा? अपने उत्तर का औचित्य प्रतिपादन करें।

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

7.3 आवासीय निवेश

वर्ष 2007–2009 की वैश्विक वित्तीय मंदी, जो कि अमेरिका में उत्पन्न हुई थी, 'हाउसिंग बबल' के ध्वस्त हो जाने के बाद मकानों की कीमतों में बड़ी गिरावट के कारण शुरू हुई थी। आवासीय निवेश में गिरावट मंदी से पहले हुई और उसके बाद घरेलू खर्च और फिर व्यावसायिक निवेश में कमी आई। यहाँ इस खंड में हम किराये के कमरों के लिए बाजार के संदर्भ में आवासन में निवेश के निर्धारक तत्वों का विश्लेषण करेंगे।

7.3.1 सैद्धांतिक प्राधार

आवासन व्यवसाय अर्थात् हाउसिंग मार्केट को दो खंडों में विभाजित कर समझा जा सकता है, यथा –

(i) मौजूदा मकानों की संख्या (पूँजी भंडार की भाँति), जो कि आवासों की कीमत निर्धारित करता है, और

(ii) नए निर्माण का प्रवाह (निवेश प्रवाह की भाँति), जो कि नए निवेश के स्तर को निर्धारित करता है।

उपर्युक्त किसी भी खंड में आघात अर्थात् नुकसान के झटके मकान की कीमतों को प्रभावित कर सकते हैं। इसे तथ्य को नमूने के रूप में प्रस्तुत करने के लिए हमें कुछ निश्चित मान्यताओं की आवश्यकता होगी और साथ ही कुछ संकेतों के अर्थ स्पष्ट करने की भी आवश्यकता होगी। आइए, देखें –

- अर्थव्यवस्था में किसी भी समय–बिंदु विशेष पर 'आवासन पूँजी' का एक स्थिर भंडार $H = \bar{H}$ विद्यमान रहता है क्योंकि पूँजी का एक नगण्य प्रतिशत भंडार में वार्षिक रूप से जुड़ता रहता है।
- निर्माण कार्य में अल्पावधिक भिन्नता का आवासन पूँजी भंडार पर बहुत कम प्रभाव पड़ेगा। प्रत्येक अवधि के आरंभ में आवासन पूँजी पिछले निवेश द्वारा निर्धारित की जाती है।
- आवास क्रेता स्वयं को निवेशकों के रूप में और अपने कब्जे वाले मकान को ऐसी अनेक परिसंपत्तियों में से एक के रूप देखते हैं जो धन–संपत्ति धारक अपने निवेश पेटिका या निवेश सूची में रख सकते हैं।
- गृहपति या मकान मालिक अपने कुछ खर्चों, विशेष रूप से संपत्ति कर और ऋण ब्याज के लिए कर कटौती का दावा कर सकते हैं, लेकिन उनकी किराये की आय पर कोई कर नहीं लगाया जाता है।
- विश्लेषण में सरलता के लिए हम मानकर चलते हैं कि सभी आवासन इकाइयाँ सजातीय होती हैं, जहाँ –

  R_H = मालिक के कब्जे वाले मकान पर प्रति अवधि किराये की सेवाओं का सीमांत (घर की 1 इकाई) मूल्य

  P_H = विद्यमान आवासन पूँजी की एक इकाई की कीमत = आवासन परिसंपत्ति की कीमत

  θ = निवेशक की सीमांत कर रियायत दर

  जब कोई आवास क्रेता ऋण लेकर अपने कब्जे वाला कोई मकान खरीदता है तो उसे ऋण ब्याज (यथा, i = मुद्रा की प्रत्येक इकाई पर वह ब्याज दर जिस पर ऋण लिया गया है) का भुगतान करना पड़ता है, और संपत्ति कर (यथा, τ_P मकान की कीमत के एक अंश स्वरूप) चुकाना पड़ता है।

देश के कर कानून के अनुसार कोई भी आवास क्रेता अपनी कर योग्य आय से उक्त व्यय (ऋण ब्याज और संपत्ति कर) के θ अनुपात में कटौती कर सकता है, जहाँ –

δ = आवासन पूँजी पर मूल्यह्रास दर

m = आवासन पूँजी की प्रति इकाई मूल्य रखरखाव लागत

Π^e = मात्रिक आवास मूल्यवृद्धि संबंधी निवेशकों की प्रत्याशित दर

विद्यमान आवासन इकाई के लिए बाजार निम्नलिखित साम्यावस्था संबंध द्वारा पूरित दर्शाया जाता है –

$$H^d = \bar{H} \qquad \ldots (7.16)$$

उपर्युक्त समीकरण (7.16) में हमें H^d को परिभाषित करने की आवश्यकता होगी, जो कि लागत–लाभ विश्लेषण के आधार पर मकान खरीदते समय आवास क्रेताओं द्वारा लिया गया माँग निर्णय इंगित करता है।

आवास की एक इकाई का लाभ मकान का अध्यारोपित किराया मूल्य (वह किराया जो वह अपने निजी मकान में रहकर बचा रहा है), यथा, R_H होता है। दूसरी ओर, आवास की एक इकाई के स्वामित्व एवं अधिग्रहण की लागत के तीन घटक होते हैं –

(i) मानक कटौती के बाद मकान की कीमत : इसे निम्नवत् दर्शाया जाता है –

$$P_H - \theta P_H(i + \tau_P) = P_H(1 - \theta)(i + \tau_P)$$

(ii) अवमूल्यन एवं अनुरक्षण लागत : इसे निम्नवत् दर्शाया जाता है –

$$P_H(m + \delta)$$

(iii) प्रत्याशित पूँजीगत लाभ अथवा हानि : यदि एक वर्ष में मकान का प्रत्याशित मूल्य $P_{H,t+1}$, हो तो $\Pi^e = \frac{P^e_{H,t+1} - P_{H,t}}{P_{H,t}}$ होगा। तदनुसार,

एक वर्ष में मकान पर प्रत्याशित पूँजीगत लाभ $= P_H \cdot \Pi^e$

यदि पूँजीगत लाभ धनात्मक हो तो आवास क्रेताओं को लाभ होता है (लागत ऋणात्मक होती है)। दूसरी ओर, यदि वह ऋणात्मक हो तो आवास क्रेता को हानि होती है (धनात्मक लागत)। आप देखेंगे कि यहाँ P_H और $P_{H,t}$ समतुल्य रूप से प्रयोग होते हैं।

साम्यावस्था में आवास क्रेता, *लाभ = लागत* । इसका अर्थ निम्नवत् स्पष्ट किया जाता है –

$$R_H = P_H[(1 - \theta)(i + \tau_P) + (m + \delta) - \Pi^e]$$

ऊपर समीकरण में दिए गए पदों को पुनर्व्यवस्थित कर हम निम्नलिखित समीकरण प्राप्त कर सकते हैं–

$$\frac{R_H}{P_H} = \underbrace{[(1 - \theta)(i + \tau_P) + \delta + m - \Pi^e]} \qquad \ldots (7.17)$$

$\frac{R_H}{P_H}$ → अध्यारोपित किराया मूल्य और आवास मूल्य का अनुपात

$[(1 - \theta)(i + \tau_P) + \delta + m - \Pi^e]$ → आवास अधिग्रहण करने वाले की प्रयोगकर्ता लागत

समीकरण (7.17) में विद्यमान आवास पूँजी के लिए संतुलन दशा को दर्शाया गया है। आप देखेंगे कि अल्पावधि में आवासों की आपूर्ति स्थिर अर्थात् लोचहीन होती है। मकानों की माँग आवास मूल्यों के वर्तमान स्तर, P_H के प्रतिलोम होती है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

आवास मूल्यों के वर्तमान स्तर और निवल नए निर्माण के भावी प्रवाह के बीच की कड़ी आवासीय निवेश की दर के रूप में निम्नवत् नजर आती है –

$$H_t - H_{t+1} = \phi\left(\frac{P_H}{C_t}\right) - \delta H_t \quad \ldots (7.18)$$

नव निर्माण का निवल प्रवाह

C_t ही निर्माण लागत है। नव आवासन पूँजी निर्माण t समयावधि में आरंभ होता है

इतनी संख्या में पुराने मकान जर्जर अवस्था में हैं

7.3.2 चित्रात्मक विश्लेषण

आगे दिए गए चित्र 7.4 का खंड (a) दर्शाता है कि विद्यमान आवासों की कीमत P_H आपूर्ति वक्र (SS) और माँग वक्र (DD) की अंतर्क्रिया से निर्धारित होती है। समय के किसी क्षण विशेष में विद्यमान आवासन पूँजी हेतु आपूर्ति वक्र लोचहीन (ऊर्ध्वाधर) है क्योंकि आपूर्ति को अल्पावधि में नहीं बढ़ाया जा सकता है। आवासन के लिए माँग वक्र नीचे की ओर झुका हुआ है क्योंकि ऊँची कीमतें लोगों को निम्नलिखित में से कोई भी प्रतिक्रिया करने के लिए मजबूर कर देती हैं –

(i) घर खरीदने की माँग पर अंकुश लगाना,
(ii) लोगों को छोटे घरों में रहने के लिए मजबूर करना,
(iii) साझा आवास, अथवा
(iv) बेघर हो जाने की स्थिति तक चले जाना।

आवास की कीमतों में समायोजन इसलिए होता है कि माँग और आपूर्ति के बीच संतुलन बना रहे। निम्न कारकों में गिरावट माँग वक्र को ऊपर की ओर ले जाती है (ताकि माँग में वृद्धि हो, जबकि कीमतें स्थिर रहें), यथा –

(i) ऋण ब्याज दर,
(ii) संपत्ति कर दर,
(iii) मूल्यह्रास दर,
(iv) रखरखाव लागत, और
(v) अन्य परिसंपत्तियों पर लाभ।

दूसरी ओर, कुछ कारकों में उछाल आवासों के माँग वक्र को ऊपर की ओर ले जाता है, यथा –

(i) जनसंख्या का आकार,
(ii) धन–संपत्ति,
(iii) आमदनी, और
(iv) आवासों से प्रत्याशित पूँजीगत लाभ।

इसी चित्र 7.4 का खंड (b) *किसी ज्ञात समयावधि* में नये आवासों का आपूर्ति वक्र (FS) दर्शाता है। इसे आवास मूल्यों के किसी धनात्मक फलन के रूप में इंगित किया जाता है। आवास मूल्यों में कोई भी वृद्धि पहले से अधिक संख्या में मकान प्रस्तुत करने हेतु प्रोत्साहन प्रदान करती है।

यदि खंड (a) में विद्यमान आवासों की कीमत बढ़ जाती है (पिछले अनुच्छेद में उल्लिखित कारकों की वजह से) तो इसका प्रत्युत्तर बिल्डर्स अथवा डेवलपर्स नए घर बनाकर देते हैं। इस प्रकार, विद्यमान आवासन की कीमतों को प्रभावित करने वाला कोई भी कारक नए

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

घरों के निर्माण को प्रभावित करेगा, जिसके परिणामस्वरूप FS वक्र के साथ कोई परिवर्तन दिखाई देगा। कोई भी कारक (उदाहरण के लिए, निर्माण लागत) जो FS वक्र को स्थानांतरित कर देगा, आवासीय निवेश की दर को प्रभावित करेगा।

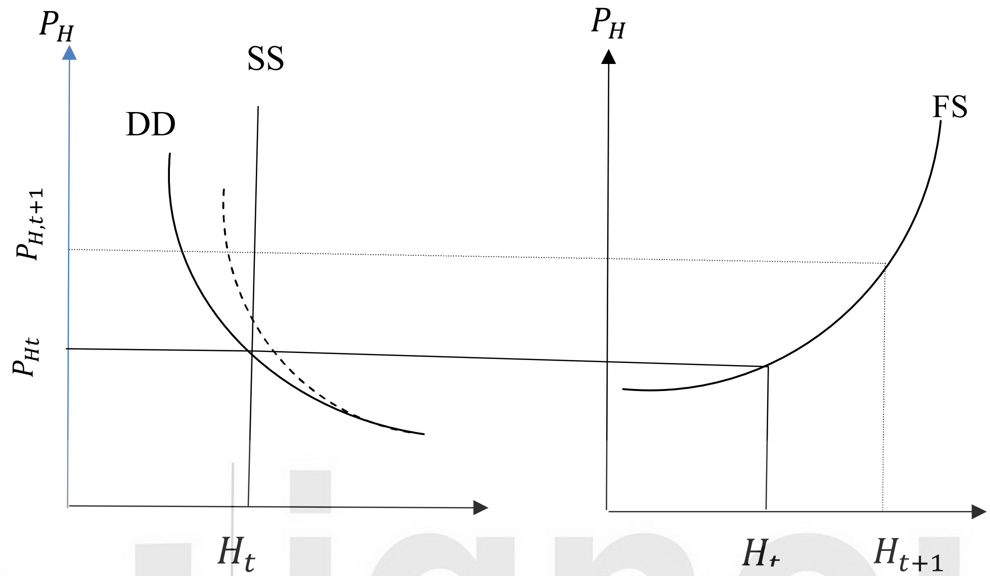

खंड (a): आवासन पूँजी   खंड (a): नए आवासन की आपूर्ति

चित्र 7.4: आवासन बाजार

आवासों की माँग में कोई भी वृद्धि से आवास कीमतों और आवासीय निवेश में वृद्धि की ओर प्रवृत्त करती है।

आप देखेंगे कि नए आवास निर्माण की तुलना में आवासन की विद्यमान पूँजी कहीं अधिक है। तदनुसार, हम प्रायः अल्पावधि में विद्यमान आवासों की कीमत पर नए आवासों की आपूर्ति के प्रभाव की उपेक्षा कर देते हैं। बहरहाल, कालांतर में जैसे–जैसे नए निर्माण से विद्यमान आवासों की पूँजी में वृद्धि होती है, इसके कारण SS वक्र दाईं ओर खिसक जाता है।

7.3.3 मॉडल के निहितार्थ

आवासीय निवेश के लिए हमने जो प्राधार प्रस्तुत किया है, उसके कई निहितार्थ होते हैं। आइए, इनमें से कुछ पर चर्चा करें।

- होम लोन पर दी जाने वाली आयकर छूट का लाभ गरीब परिवारों तक नहीं पहुँचता है क्योंकि यह उच्च आय वाले ऐसे समूहों पर ही लागू होता है जो आयकर का भुगतान करते हैं। इसी प्रकार, जब मौद्रिक ब्याज दर प्रत्याशित मुद्रास्फीति के साथ बढ़ती है तो उधार लेने की कर–पश्चात सीमांत लागत, $((1-\theta)i - \Pi^e$ प्रत्याशित मुद्रास्फीति बढ़ने पर घट जाती है। यह प्रभाव उच्च आय वाले परिवारों के लिए अधिक स्पष्ट है और इस कारण कम आय वाले परिवारों की तुलना में आवास हेतु उनकी माँग में अधिक वृद्धि होनी चाहिए।
- व्यक्तियों की आमतौर पर 20 से 40 आयु वर्ग (विवाह, बच्चों आदि के कारण) में आवास की अधिक माँग होती है। अतः इस आयु वर्ग में जनसंख्या का प्रतिशत आवास की माँग में परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व होता है। तदनुसार, किसी भी जनसांख्यिकीय परिवर्तन (उदाहरण के लिए, लॉकडाउन अवधि के दौरान

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

'बेबी बूम' अर्थात् शिशु जन्म में सहसा वृद्धि) का असर 20 से 30 वर्षों के अंतराल के साथ आवास की कीमतों पर पड़ेगा।

- प्रत्याशित मुद्रास्फीति, Π^e के लिए युक्तियुक्त प्रत्याशा प्राधार का प्रयोग करना आकर्षक होता है। परंतु अनुभवजन्य अवलोकन हमें बताता है कि आवास क्रेता अतीत की जानकारी (कीमत की प्रत्याशाओं को निर्धारित करने के लिए मुड़कर देखने वाली प्रक्रिया) पर बहिर्वेशन करते हैं। यदि हम इस प्रक्रिया को अपने मॉडल में शामिल करते हैं तो इसका परिणाम आवास बाजार में व्यवस्थित पुनर्निर्माण के रूप में सामने आता है।
- यदि जनसंख्या, आय और धन स्थिर दर से बढ़ रहे हों तो दीर्घावधिक साम्यावस्था यह संकेत देगी कि आवासों के निर्माण की दर मूल्यह्रास और माँग में स्थिर वृद्धि से निपटने के लिए पर्याप्त होगी। परंतु ऐसी अर्थव्यवस्था में जहाँ माँग में बदलाव अचानक होता है, आवश्यक नहीं कि दीर्घावधिक साम्यावस्था हासिल हो ही जाए। किसी भी गतिहीन अर्थव्यवस्था में दीर्घावधिक साम्यावस्था तब हासिल होगी जब निवल आवासीय निवेश शून्य होगा।
- बिल्डर्स अपने निर्माण कार्य के वित्तपोषण के लिए ऋण लेते हैं। इसलिए ऋण ब्याज दर प्रवाह आपूर्ति (FS) वक्र को भी प्रभावित करती है।

7.4 माल–सूची निवेश

इन्वेंटरी अर्थात् माल–सूची फर्मों के साथ–साथ पूरी अर्थव्यवस्था के लिए भी महत्वपूर्ण होती है। यह सकल घरेलू उत्पाद का एक छोटा घटक जरूर होती है, परंतु अपनी उल्लेखनीय अस्थिरता के कारण यह व्यापार चक्र के उतार–चढ़ाव का लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा बन जाती है। अतएव, समष्टिक आर्थिक उतार–चढ़ाव का पूर्वानुमान करने और उसका मुकाबला करने के लिए माल–सूची संचय के व्यवहार को समझना सार्थक होगा। माल–सूची की दो व्यापक श्रेणियाँ होती हैं, यथा –

(i) विनिर्माता की माल–सूची, और
(ii) फुटकर माल–सूची।

विनिर्माता की माल–सूची के अंतर्गत आगे वर्गीकरण निम्नवत् किया जाता है –

(a) तैयार माल,
(b) निर्माणाधीन माल,
(c) कच्चा माल एवं आपूर्ति, और
(d) थोक माल–सूची।

व्यापार में उतार–चढ़ाव के लिए उत्तरदायी प्रमुख प्रकार की माल–सूचियों में सबसे ऊपर फुटकर माल–सूची देखी जाती हैं। इसके बाद ही कच्चे माल और रसद आपूर्ति का स्थान आता है।

भारत में माल–सूचियों में परिवर्तनों को प्रायः अर्थव्यवस्था के समग्र कार्य–निष्पादन के लिए एक प्रमुख संकेतक माना जाता है। इसे व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए हमें माल–सूचियाँ तैयार कर रखने के उद्देश्यों की जाँच करने की आवश्यकता होगी।

आइए, जानें कि व्यापार प्रतिष्ठान माल का भंडारण अलग से क्यों करते हैं।

7.4.1 माल–सूची रखने का उद्देश्य

माल निवेश को माल–सूचियों के संचय में निवल वृद्धि के रूप में परिभाषित किया जाता है। फर्में विभिन्न कारणों से माल–सूचियाँ रखती हैं, यथा –

1. **उत्पादन समकरण** : प्रतिनिधि फर्मों को प्रायः अपने उत्पाद की माँग के लिए अल्पकालिक झटके का अनुभव होता है। अपने उत्पादों की माँग के लिए अप्रत्याशित झटके को झेलने के लिए फर्में माल–सूची का उपयोग कर सकती है। ये फर्में बाजार में उतार–चढ़ाव से मेल खाने के लिए अपने उत्पादन को समायोजित करने के स्थान पर अपने उत्पादन को किसी स्थिर दर पर जारी रखना पसंद करती हैं। इस प्रकार, किसी भी उत्कर्ष अवधि के दौरान ऐसी फर्में अपनी माल–सूची को निपटाकर समाप्त कर देती हैं और बाजार में मंदी छायी होने के दौरान इसमें फिर से वृद्धि करती हैं।

2. **उत्पादन क्रम–निर्धारण** : माल–सूचियाँ बहु–उत्पाद फर्मों को अपने उत्पादन का क्रम निर्धारित करने में लचीलापन प्रदान करती हैं।

3. **वितरण अंतराल को कम करना** : कोई भी माल–सूची उस स्थिति में किसी भी एकल फर्म की माँग को प्रोत्साहित कर सकती है जब वह माल सुपुर्दगी में पिछड़ रही हो।

4. **उत्पादन कारक कारकों** को मुख्य रूप से भावी कीमतों में वृद्धि की मार से बचने के लिए संचित करती हैं। इसके अलावा, कच्चे माल की सूचियाँ भी तैयार करके रखी जाती हैं क्योंकि किसी भी फर्म के लिए उत्पादन के विशिष्ट कारकों का थोक में ऑर्डर देना अपेक्षाकृत कम खर्चीला होता है।

5. **अप्राप्यता से बचाव** : फर्मों को सामान्यतः अपने उत्पाद की प्रत्याशित बिक्री के आधार पर उत्पादन निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। अप्राप्यता की स्थिति के कारण कोई भी कमतर आकलन फर्म के लिए उसकी बिक्री एवं लाभ की हानि का कारण बन सकता है। ऐसी 'आउट–ऑफ–स्टॉक' स्थितियों से बचने के लिए फर्में प्रायः माल–सूची रखती हैं।

6. **अर्धनिर्मित माल उत्पादन** : कुछ माल–सूचियों को उत्पादन प्रक्रिया के एक अपरिहार्य भाग स्वरूप में रखा जाता है, खासकर जब उत्पादन प्रक्रिया में कई चरण शामिल होते हैं और उत्पादन करने में समय लगता है। उदाहरण के लिए, जब किसी कार की असेंबलिंग आंशिक रूप से पूरी हो जाती है तो निर्माणाधीन कार के घटकों को भी विनिर्माता ऑटोमोबाइल फर्म की माल–सूची के हिस्से के रूप में गिना जाता है।

समष्टि–अर्थशास्त्रीय मॉडल में माल निवेश का वर्गीकरण इस बात पर निर्भर करता है कि हम अपनी माल–सूचियों को क्या मानते हैं – उत्पादन अथवा आगत? यह व्यापक रूप से देखा गया है कि उच्च माल–सूची पूँजी चालू उत्पादन को कम कर देती है। जब फर्मों को पता चलता है कि वे अपने द्वारा उत्पादित मात्रा को बेचने में सक्षम नहीं हैं तो वे अपना उत्पादन स्तर घटा देती हैं।

माल–सूची निवेश का केंद्रीय पहलू नियोजित (अभिप्रेत) और अनियोजित (अनभिप्रेत) माल–सूची निवेश के बीच अंतर पर टिका है। माल–सूची पूँजी में नियोजित परिवर्तन, फर्मों द्वारा अपनी माल–सूची पूँजी को अपने लक्षित स्तर की ओर आंशिक रूप से समायोजित करने का परिणाम होता है। दूसरी ओर, बिक्री के पूर्वानुमान में त्रुटियों के कारण माल–सूची पूँजी में अनियोजित या निष्क्रिय परिवर्तन उत्पन्न हो सकता है।

माल–सूचियों के स्वभाव की विशिष्टता और माल–सूची रखने के उद्देश्य के आधार पर निवेश विद्या में विभिन्न व्यष्टिक मॉडल देखे जाते हैं।

केन्जियन मॉडल में हमने देखा कि यदि कुल उत्पादन नियोजित कुल व्यय से अधिक हो तो माल का अंबार लगना शुरू हो जाता है। माल–सूची की ऐसी असंतुलन की स्थिति फर्मों के साम्यावस्था पर पहुँचने तक अपने उत्पादन में कटौती करने का संकेत दे देती है। यह सांकेतिक रूप से संतुलन को एक ऐसी स्थिति के रूप में परिभाषित करता है जहाँ माल–सूची स्थिर होती है।

7.4.2 माल–सूची, वास्तविक ब्याज दर और व्यापार चक्र

व्यापार चक्र को जन्म देने वाले सर्वाधिक सशक्त कारकों में से एक माल–सूचियों में व्यापार निवेश ही है। यद्यपि माल–सूची की वार्षिक राशि कुल स्थिर निवेश का एक बहुत छोटा अंश ही होती है परंतु, इसकी उच्च–स्तरीय परिवर्तनशीलता के कारण इसे अल्पावधिक व्यापार चक्र में उतार–चढ़ाव के पीछे एक प्रमुख कारक माना जाता है। इसके अलावा, माल–सूची संचय का अनियमित अल्पावधिक व्यवहार गंभीर पूर्वानुमान समस्या पैदा करता है। व्यापार चक्र में माल–सूची की भूमिका अप्रत्याशित और प्रत्याशित माल–सूची परिवर्तन का परिणाम होती है। ऐसे तीन मार्ग हैं जिनके माध्यम से माल–सूची निवेश किसी भी अर्थव्यवस्था में विकास प्रक्रिया को अस्थिर कर सकता है, यथा –

(i) माँग प्रभाव,
(ii) लागत प्रभाव, और
(iii) वित्तीय प्रभाव।

माल–सूचियाँ रखने की लागत ही वह किराया कीमत है जिसमें दो घटक होते हैं, यथा –

(i) माल–सूची की पूँजी का मूल्यह्रास, और
(ii) वह ब्याज लागत जो उस ऋण पर चुकाई जानी चाहिए जो माल–सूची को वित्तपोषित करती है (अथवा, वह ब्याज राशि जो फर्म भावी बिक्री के लिए माल को माल–सूची के रूप में रखने के बजाय आज ही बेचकर अर्जित की जा सकती थी)।

इस प्रकार, सैद्धांतिक रूप से यह कहा जा सकता है कि वास्तविक ब्याज दर माल–सूचियाँ रखने की अवसर लागत को मापती है। इसलिए, यदि अनेक उद्यम बैंक ऋणों पर बहुत अधिक निर्भर हों तो वास्तविक ब्याज दर में वृद्धि व्यापार प्रतिष्ठानों को अपनी माल–सूची पूँजी को कम करने के लिए मजबूर करती है। शायद इसीलिए सन 1980 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में उच्च ब्याज दर की व्यापकता के कारण कई फर्मों ने 'जस्ट–इन–टाइम' व्यापार रणनीति अपनाई। इसका सीधा–सा मतलब होता है – बिक्री से ठीक पहले माल का उत्पादन।

यद्यपि माल–सूची निवेश की ब्याज संवेदनशीलता संबंधी अवधारणा सैद्धांतिक रूप से आकर्षक है, यह न तो निर्णायक सिद्ध होती है और न ही निश्चित। दरअसल, यह कुछ विशिष्ट कारकों पर निर्भर करती है, जो कि निम्नलिखित हैं –

(i) ब्याज दर को नियंत्रित करने में केंद्रीय बैंक नीति की प्रभावशीलता, और
(ii) माल–सूचियों की पूँजी जुटाने के लिए फर्मों की बैंक ऋण पर निर्भरता।

यदि बड़े उद्यम बैंक ऋण पर निर्भर नहीं करते हैं तो वे कर्ज की तंगी की मार से बच सकते हैं। उस स्थिति में उच्च ब्याज दर का माल–सूची संचय पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ेगा।

बोध प्रश्न 2

1. मान लीजिए कि ऋण (होम लोन) की ब्याज दर बढ़ गई है। यह भी मान लें कि निर्माण में देरी के कारण नए आवास की आपूर्ति उस कीमत का एक फलन है, जो निर्माण कार्य पूरा होने के बाद अभिभावी हो जाने की उम्मीद है। यदि आवास की प्रत्याशित कीमतें यथावत रहती हैं तो नए आवास की उत्पादन दर पर क्या प्रभाव दिखाई देगा? स्पष्ट करें।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

2. एक काल्पनिक ऑटोमोबाइल डीलर प्रति माह 50 कारें बेचता है और माल–सूची में औसतन एक महीने की बिक्री रखता है। मान लें कि बिक्री में 50 प्रतिशत की गिरावट आई है और इस बदलाव का जवाब देने के लिए उस डीलर को दो महीने लगते हैं (इसका मतलब है कि वह दो महीने के लिए वर्तमान दर पर ऑर्डर करता रहता है)। बिक्री में गिरावट के अनुरूप वह डीलर कारों की मासिक बिक्री के एक नए स्तर पर अपनी इन्वेंट्री को बनाए रखना चाहता है। वह कितने महीने तक कोई नई कार ऑर्डर नहीं करेगा?

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

7.5 सार–संक्षेप

इस इकाई का उद्देश्य किसी अर्थव्यवस्था में निवेश के निर्धारक तत्वों की जाँच करना रहा। इन निर्धारक तत्वों की जाँच करने का मुख्य कारण निवेश में दीर्घस्थायी अस्थिरता के अंतर्जात स्वभाव से उत्पन्न होता है।

इस इकाई में हमने तीन प्रमुख प्रकार के निवेशों को शामिल किया, यथा – व्यापार स्थिर निवेश, आवासीय निवेश और माल–सूची निवेश।

व्यापार स्थिर निवेश के नियोक्लासिकल मॉडल के अनुसार, फर्में तभी निवेश करती हैं जब पूँजी का किराया मूल्य कीमत पूँजी की लागत से अधिक हो अन्यथा फर्में विनिवेश ही करती हैं।

पूँजी की लागत में वास्तविक ब्याज दर, मूल्यह्रास दर और पूँजी का आपेक्षिक मूल्य शामिल होता है। पूँजी की लागत विभिन्न कर संहिताओं और कर कानूनों से भी प्रभावित होती है।

लोचदार त्वरक मॉडल में फर्में प्रत्येक अनुवर्ती समयावधि में वास्तविक पूँजी भंडार और वांछित पूँजी भंडार के बीच के अंतर को केवल आंशिक रूप से खत्म करने का प्रयास करती हैं।

टोबिन के निवेश संबंधी क्यू–सिद्धांत में किसी भी फर्म का निवेश उसकी परिसंपत्तियों की प्रतिस्थापन लागत की तुलना में परिसंपत्तियों के बाजार मूल्यांकन पर निर्भर करता है। यदि किसी फर्म की परिसंपत्तियों का बाजार मूल्य उनकी प्रतिस्थापन लागत से अधिक हुआ तो वह फर्म अधिक इक्विटीज जारी कर अपने पूँजी आधार का विस्तार करेगी।

आवासन पूँजी की लोचहीन अल्पावधिक कुल आपूर्ति आवास की कीमतों को पूरी तरह से आवास की माँग पर निर्भर बना देती है। परिणामस्वरूप, आवास की माँग ऋण ब्याज दर, ऋण उपलब्धता, आयकर छूट नीति, सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर, जनसंख्या के आकार, आदि पर निर्भर करती है। आपूर्तिकर्ताओं की ओर से निर्माण लागत और निर्माण में देरी आदि कारक आवासीय निवेश को प्रभावित करते हैं।

फर्मों द्वारा माल–सूचियाँ विभिन्न उद्देश्यों से तैयार की जाती हैं। निजी निवेश के इस छोटे–से घटक में अल्पावधिक व्यापार चक्र को प्रभावित करने के लिए अतीव परिवर्तनशीलता और अपार क्षमता होती है।

इकाई में चर्चा किए गए कारकों के अलावा, कुछ बहिर्जात चर भी होते हैं जो किसी अर्थव्यवस्था में निवेश को प्रभावित करते हैं। राजनीतिक अनिश्चितता, सामाजिक अशांति, भ्रष्टाचार, प्राकृतिक आपदा आदि निजी निवेश के निर्णय को काफी हद तक प्रभावित करते हैं।

7.6 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1. पूँजी की एक इकाई उत्पादन की MP_K इकाइयों का योगदान करती है। उस उत्पादन का 50% कर के रूप में भुगतान करने के बाद पूँजी की एक इकाई का कर–समायोजित निवल योगदान = (1 – 50%) MP_K होगा।
   कर–समायोजित MP_K का मूल्य = Y (1 – 50%) MP_K { क्योंकि 1 इकाई पूँजी का मूल्य = 1 इकाई उत्पादन}
   वांछित पूँजी भंडार निम्नवत् होगा –
   कर–समायोजित MP_K का मूल्य = पूँजी की 1 इकाई की उपयोगकर्ता लागत

   = एक इकाई पूँजी की किराया लागत * पूँजी की कीमत

   = (20% + 10%)Y

   अब इन दोनों पदों को समान करें और K के लिए हल करें। आपको वांछित पूँजी भंडार = 970 इकाइयाँ प्राप्त होंगी।

2. दोनों पक्षों $MP_K = rc$ को बराबर करने पर हमें प्राप्त होता है –
   वांछित पूँजी भंडार = $\frac{\gamma . Y}{rc}$
   उपर्युक्त में सभी मानों और Y = 10 रखने पर हमें प्राप्त होता है –
   वांछित पूँजी भंडार = 50.

इसी प्रकार,

Y = 20 के लिए वांछित पूँजी भंडार हो जाता है = 50

वांछित पूँजी भंडार में परिवर्तन = (50 – 25) = 25

आरंभतः वास्तविक पूँजी भंडार था = 25.

आय परिवर्तन के बाद वांछित पूँजी भंडार हो गया = 50

पहली अवधि में निवेश की दर = $\lambda (K^* - K) = 1/5 * (50 - 25) = 5$

3. भावी लाभ का वर्तमान मूल्य = $\frac{500}{(1+.1)} + \frac{700}{(1+.1)^2} = 1033.$ परियोजना की लागत 1000 थी। तदनुसार, परियोजना को शुरू किया ही जाना चाहिए।

4. निवेश की दर है = λ (वांछित पूँजी भंडार – वास्तविक पूँजी भंडार) चर λ के मान पर ध्यान दिए बिना, निवेश की दर तब कहीं ऊँची चली जाएगी जब अंतर ($K^* -$ K) और बढ़ जाएगा। यदि युद्ध के कारण वास्तविक पूँजी भंडार घट गया हो और वांछित पूँजी भंडार यथावत रहता हो तो अंतर अधिक होता है और निवेश की दर में वृद्धि होती है।

5. यह एक गलत कदम होगा। निवेश के क्यू–सिद्धांत में, q = परिसंपत्ति का मूल्य / उन परिसंपत्तियों की उत्पादन लागत। इसलिए, यदि q कम हो तो उन परिसंपत्तियों की उत्पादन लागत उन परिसंपत्तियों के अपने मूल्य से अधिक होगी। अतः, फर्म के लिए अधिक परिसंपत्तियों का उत्पादन करना कोई उत्तम विचार नहीं होगा।

बोध प्रश्न 2

1. होम लोन पर ब्याज दर बढ़ी है। इसलिए विद्यमान आवासों के लिए माँग वक्र नीचे की ओर खिसक जाता है। विद्यमान आवासों का आपूर्ति वक्र यथावत रहता है। इस प्रकार, आवासों का वर्तमान मूल्य नीचे चला जाता है। बहरहाल, चूँकि नए आवासन की आपूर्ति आवासों की विद्यमान कीमतों का फलन नहीं दर्शाती, बल्कि यह आवासन की प्रत्याशित भावी कीमत का वह फलन है जो बदली नहीं है। अतः, नए आवासन के उत्पादन की दर यथावत रहेगी।

2. यह डीलर 50 कारें बेच रहा था और 50 कारों को माल–सूची में रख रहा था। बिक्री में 50% की गिरावट के बाद मासिक बिक्री 25 हो जाएगी। आगे 2 महीने के लिए डीलर अभी भी प्रति माह 50 नई कारों का ऑर्डर देगा। इस प्रकार उसने इन दो महीनों में 50 कारों में 50 और कारें जोड़ीं। उसका स्टॉक अब 100 हो गया है। यदि वह प्रति माह 25 कारें बेचने जा रहा है और अपनी माल–सूची में 25 कारों को बनाए रखना चाहता है तो वह माल–सूची से 25 × 3 = 75 कारें ले सकता है और 3 महीने के लिए बिना किसी नई कार का ऑर्डर दिए 3 महीने तक बेच सकता है।

इकाई 8 मुद्रा की माँग : उत्तर–केन्जियन अवधारणा*

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 मुद्रा की लेन–देन माँग

8.2.1 मुद्रा की लेन–देन माँग का बॉमोल–टोबिन मॉडल

8.2.2 लेन–देन की इष्टतम संख्या

8.2.3 कुल मुद्रा माँग

8.2.4 बॉमोल–टोबिन मॉडल की सीमाएँ

8.3 निवेश सूची सिद्धांत

8.3.1 निवेश–सूची संतुलन दृष्टिकोण

8.3.2 निवेशक का जोखिम अधिमान और इष्टतम निवेश–सूची आवंटन

8.3.3 कुल मुद्रा माँग की ब्याज–दर संवेदनशीलता

8.3.4 पूँजीगत लाभ के प्रायिकता वितरण का महत्व

8.4 फ्रीडमैन का मुद्रा माँग दृष्टिकोण

8.4.1 मुद्रा माँग फलन

8.4.2 मुद्रा का आय संवेग

8.4.3 फ्रीडमैन के मुद्रा–माँग सिद्धांत के निहितार्थ

8.5 सार संक्षेप

8.6 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि –

- लोगों द्वारा अपने पास मुद्रा रखे जाने के पीछे उद्देश्यों की पहचान कर सकें;
- यह पता लगा सकें कि लोग अपने पास नकद में कितनी राशि रखना पसंद करते हैं;
- स्पष्ट कर सकें कि ब्याज दर में परिवर्तन से मुद्रा की माँग कैसे और किस सीमा तक प्रभावित होती है;
- व्यक्तियों की निवेश सूची की इष्टतम संरचना को निर्धारित करने वाले कारकों की पहचान कर सकें;
- वर्णन कर सकें कि जोखिम के प्रति रवैया मुद्रा की माँग को किस प्रकार प्रभावित करता है; तथा
- समझा सकें कि मुद्रा को उत्पादक वस्तु और उपभोक्ता वस्तु के रूप में कैसे देखा जा सकता है।

* सुश्री वैशाखी मंडल, सहायक प्राध्यापक, इंद्रप्रस्थ महिला कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

8.1 प्रस्तावना

हम मुद्रा अर्थात् धन की माँग क्यों करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर सरल प्रतीत होता है, परंतु इस विषय पर अर्थशास्त्रियों के बीच कोई सर्वसम्मति नहीं है। अतएव, मुद्रा की माँग संबंधी अनेक वैकल्पिक सिद्धांत देखने में आते हैं। कीन्स ने मुद्रा की सट्टा अर्थात् प्रत्याशित माँग की अवधारणा पर प्रकाश डाला। बहरहाल, केन्जियन दृष्टिकोण को डब्ल्यू. जे. बॉमोल (1952), टोबिन (1956) और फ्रीडमैन (1958) द्वारा चुनौती दी गई है।

इस इकाई में हम मुद्रा की माँग संबंधी उत्तर–केन्जियन सिद्धांतों पर चर्चा करेंगे। इस संदर्भ में हम इन मॉडलों पर विचार करेंगे –

(i) मुद्रा के लेन–देन सबंधी माँग का बॉमोल–टोबिन मॉडल,
(ii) टोबिन का निवेश–सूची आवंटन मॉडल, और
(iii) फ्रीडमैन के मुद्रा सिद्धांत का पुनर्कथन।

8.2 मुद्रा की लेन–देन माँग

आर्थिक अभिकर्ताओं द्वारा लेन–देन को सुविधाजनक बनाने की आवश्यकता से उत्पन्न होने वाली मुद्रा की माँग को ही उसकी **लेन–देन माँग** कहा जाता है। मुद्रा के लिए लेन–देन की माँग मुद्रा की एक संकीर्ण परिभाषा को दर्शाती है, यथा, नकद, चेक खाता शेष, आदि। मूल रूप से यह मुद्रा की M1 परिभाषा को इंगित करती है।

मुद्रा की माँग के लेन–देन संबंधी सिद्धांत विभिन्न रूप दर्शाते हैं, जो कि इस बात पर निर्भर करता है कि मुद्रा प्राप्त करने और लेन–देन करने की प्रक्रिया कैसे प्रतिरूपित की जाती है। इस श्रेणी के अंतर्गत कुछ महत्वपूर्ण मॉडल हैं –

(i) बॉमोल–टोबिन मॉडल,
(ii) शॉपिंग–टाइम मॉडल, और
(iii) कैश–इन–एडवांस मॉडल।

आगे हम इनमें सबसे प्रमुख अर्थात् बॉमोल–टोबिन मॉडल पर चर्चा करेंगे।

8.2.1 मुद्रा की लेन–देन माँग का बॉमोल–टोबिन मॉडल

यहाँ हम बॉमोल–टोबिन मॉडल का एक सरल संस्करण प्रस्तुत करेंगे, जिसे स्वतंत्र रूप से विलियम बॉमोल (1952) और जेम्स टोबिन (1956) द्वारा विकसित किया गया था। यह *इन्वेंट्री थ्योरेटिक एप्रोच* का प्रयोग कर मुद्रा रखने की लागत और लाभ पर जोर देता है। यह मॉडल मूल रूप से, उन कुल मुद्रा माँग फलनों को लिए व्यष्टिक नींव प्रदान करने के उद्देश्य से विकसित किया गया था, जो आमतौर पर केन्जियन और मुद्रावादी अर्थशास्त्रीय मॉडल में प्रयोग किए गए।

उक्त मॉडल की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

- मुद्रा लेन–देन के उद्देश्य से रखा जाता है। तदनुसार, यह एक विनिमय के माध्यम स्वरूप कार्य करता है। नकदी रखना व्यक्ति या आर्थिक अभिकर्ता के लिए एक माल–सूची के रूप में देखा जाता है। उक्त व्यक्ति नकदी रखने की लागत को न्यूनतम करेगा।
- नकद में मुद्रा (जो ब्याज नहीं देता है) रखने का विकल्प ब्याज देने वाले ऋणपत्र रखना है।

- किसी भी व्यक्ति के लिए आय प्राप्त करने का समय और धन खर्च करने का समय समक्रमिक नहीं होता है। महीने में एक बार आय प्राप्त होती है जबकि क्रय / व्यय पूरे महीने समान रूप से होता ही रहता है।
- आय–प्राप्ति और व्यय के प्रवाह के बीच समय के अंतर को खत्म करने के लिए मुद्रा को नकद में रखा जाता है।
- व्यक्ति अपने समान रूप से फैले व्यय प्रवाह को सुविधाजनक बनाने, नकदी का उपयोग करने और फिर से विनिमय के लिए जाने के लिए ऋणपत्र को नकदी में बदल देता है।
- हर बार जब अभिकर्ता ऋणपत्रों को नकद में बदलता है तो इस पर कुछ लेन–देन लागत आती है अथवा दलाली शुल्क लगता है, जो कि स्थिर होता है और विनिमय की मात्रा से स्वतंत्र होता है। हम इस विनिमय को लेन–देन का नाम देते हैं।
- चूँकि इस प्रकार के प्रत्येक विनिमय (लेन–देन) में लागत शामिल होती है, व्यक्ति ऋणपत्रों पर ब्याज आय और लेन–देन की लागत (विनिमय) के बीच समझौताकारी तालमेल को ध्यान में रखता है।
- व्यक्ति का औसत नकद / मुद्रा धारण किए गए लेन–देन (विनिमय) की संख्या से निर्धारित होता है।
- कोई भी विवेकशील व्यक्ति अपनी विनिमय (लेन–देन) लागत को कम करेगा और अपने लेन–देन की इष्टतम संख्या के विषय में उचित निर्णय लेगा।
- मुद्रा की कुल माँग इस प्रतिनिधि व्यक्ति की औसत मुद्रा धारण संबंधी माँग को दर्शाएगी।

आइए, निम्नलिखित संकेत–चिह्नों का प्रयोग सीखें –

$y =$ आवधिक वास्तविक आय [समयावधि एक महीना या एक वर्ष हो सकती है]

$T =$ दिवसों में समस्त अवधि (माह अथवा वर्ष) की दीर्घता

$n =$ समयावधि के दौरान विनिमय (लेन–देन) की संख्या

$b =$ प्रति लेन–देन दलाली शुल्क

$r =$ वास्तविक ब्याज दर

चूँकि पूरी अवधि (जिसमें T दिवस हैं) में n संख्या में विनिमय किया जा रहा है, अवधि को n अंतराल में विभाजित किया गया है और दिवसों में प्रत्येक अंतराल की दीर्घता $\frac{T}{n}$ दिवस है। सुचारु एवं समान रूप से वितरित व्यय प्रवाह की सुविधा के लिए अभिकर्ता की वास्तविक आवधिक आय y इन n अंतरालों में समान रूप से वितरित की जाती है और इनमें से प्रत्येक अंतराल की व्यय आवश्यकता $\frac{y}{n}$ होती है।

समयावधि के आरंभ में, जब व्यक्ति ने अपनी आय y प्राप्त कर ली है, हम यह मान लेते हैं कि पूरी राशि (आय) स्वतः ही ऋणपत्र (या किसी भी ब्याज अर्जित करने वाली जमा राशि) में निवेश की जाती है।

पहले अंतराल की व्यय आवश्यकता के लिए व्यक्ति ऋणपत्र से नकद में $\frac{y}{n}$ राशि का आदान–प्रदान करना चाहता है और $(y-\frac{y}{n})$ ऋणपत्रों के रूप में बना रहता है। अतएव, पहले अंतराल के लिए y का $\frac{1}{n}$ प्रतिशत नकद में और y का $1-\frac{1}{n}=\frac{n-1}{n}$ प्रतिशत ऋणपत्रों के रूप में रखा जाता है।

उक्त T दिवसों की अवधि के लिए व्यक्ति का मुद्रा धारण करने का प्रतिमान चित्र 8.1 में दर्शाया गया है।

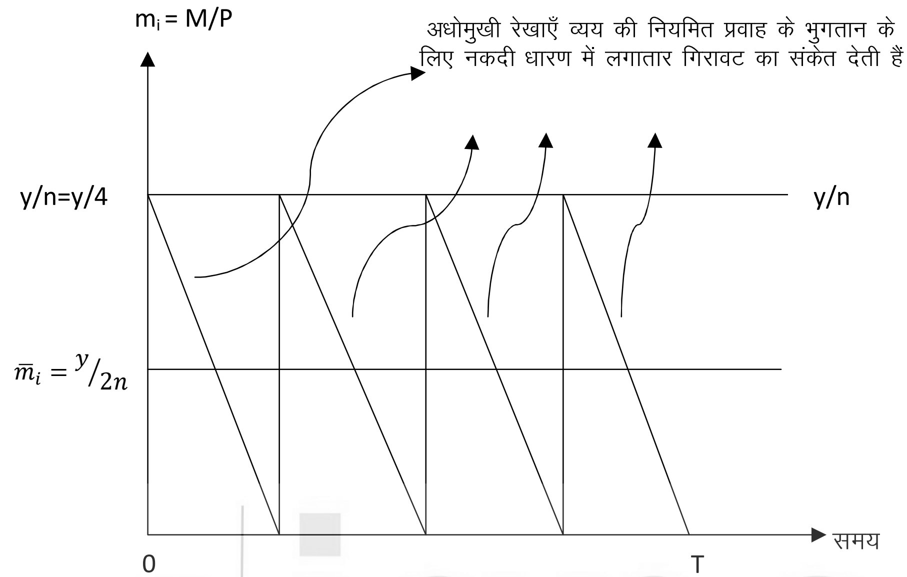

चित्र 8.1: बॉमोल–टोबिन मॉडल में नकद प्रबंधन

चित्र 8.1 में हमने समयावधि को n (यहाँ, n = 4) उप–आवर्त (अंतराल) में विभाजित किया है। प्रत्येक उप–आवर्त की दीर्घता T/n दिवस है। अतः, लेन–देन संख्या 4 है। प्रत्येक उप–आवर्त के आरंभ में व्यक्ति y/n राशि को ऋणपत्र से नकद में परिवर्तित करता है। उप–आवर्त के आरंभ में व्यक्ति के पास नकद शेष राशि y/n (= y/4 आरेख में) है। प्रत्येक उप–आवर्त के अंत में, जैसे ही व्यक्ति उस अवधि के व्यय के लिए भुगतान करने के लिए राशि y/n = y/4 समाप्त कर देता है, उसका वास्तविक शेष शून्य हो जाता है (अधोमुखी रेखा पर ध्यान दें, जो कि उप–आवर्त पर घटते नकद शेष को इंगित करती है)। व्यक्ति की औसत वास्तविक शेष राशि ($\bar{m}_i$) है (जो कि अंतराल के आरंभ में मुद्रा धारण करने और अंतराल के अंत में मुद्रा धारण करने का औसत है)। चित्र 8.1 के लिए हम पाते हैं कि $\bar{m}_i = \frac{(\frac{y}{n}+0)}{2} = \frac{y}{2n}$ होता है।

8.2.2 लेन–देन की इष्टतम संख्या

चित्र 8.1 में हम यह मानकर चलते हैं कि लेन–देन चार बार किया गया। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या किसी व्यक्ति के लिए लेन–देन की कोई इष्टतम संख्या होती है? वस्तुतः किसी भी व्यक्ति के लिए लेन–देन की इष्टतम संख्या निर्धारित करना एक समस्या हो सकती है। हम जानते हैं कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति ऋणपत्र को नकदी में बदलने की लागत को न्यूनतम करेगा। इस रूपांतरण की लागत में दो घटक होते हैं – दलाली लागत, और छोड़ी गई ब्याज आय।

आइए, अब उपर्युक्त दोनों को विस्तार से जानते हैं।

(i) दलाली लागत

प्रत्येक लेन–देन में, व्यक्ति $\frac{y}{n}$ राशि को नकद में परिवर्तित करेगा। यदि 'b' प्रति लेन–देन दलाली शुल्क हो और n लेन–देन की कुल संख्या हो तो समस्त समयावधि की कुल लेन–देन लागत n.b होगी।

(ii) छोड़ी गई ब्याज आय

यदि मुद्रा ऋणपत्रों के रूप में रखा जाता है तो उस पर r की दर से ब्याज मिलेगा। दूसरी ओर, यदि मुद्रा को नकद के रूप में रखा जाता है तो ब्याज की आय का नुकसान होता है। प्रत्येक अंतराल की व्यय आवश्यकता $\frac{y}{n}$ है और प्रत्येक अंतराल की दीर्घता $\frac{T}{n}$ दिवस है। आइए, प्रत्येक उप–आवर्त के लिए छोड़ दी गई ब्याज की आय ज्ञात करें।

पहले अंतराल की ब्याज लागत : हम जानते हैं कि नकदी की राशि $\frac{y}{n}$ ऋणपत्रों से परिवर्तित हो गई है। यह पूरी अवधि के लिए, यानी T दिवसों के लिए ऋणपत्रों के रूप में बनी रह सकती थी। अतः उस राशि पर छोड़ा गया ब्याज $\frac{r.T.y}{n}$ होगा।

दूसरे अंतराल की ब्याज लागत : याद रखें कि दूसरे अंतराल में फिर से नकद राशि $\frac{y}{n}$ को ऋणपत्र से नकदी में परिवर्तित किया जा रहा है। यह नकदी अवधि (T – पहले अंतराल की दीर्घता), यथा, $(T - \frac{T}{n}) = T\,(\frac{n-1}{n})$ दिवसों के लिए ऋणपत्र के रूप में रह सकती थी। अतः उस राशि पर छोड़ी गई ब्याज राशि $r.\frac{T\,(n-1)}{n}.\frac{y}{n}$ होगी।

तीसरे अंतराल की ब्याज लागत : तीसरे अंतराल के लिए छोड़ा गया ब्याज $r.\frac{T(n-2)}{n}.\frac{y}{n}$ है।

nवें अंतराल की ब्याज लागत : यहाँ मुद्रा की $\frac{y}{n}$ राशि $[T - \frac{(n-1).T}{n}] = \frac{T}{n}$ दिवसों के लिए ऋणपत्र के रूप में रह सकती थी। अतः छोड़ा गया ब्याज $= \frac{r.T.y}{n.n}$ होगा।

यदि हम उपर्युक्त सभी को जोड़ दें तो हमें छोड़ी गई कुल ब्याज आय प्राप्त होती है, जो कि निम्नवत् दर्शाई जा सकती है –

$$[\frac{r.T.y}{n} + \frac{r.T.(n-1).y}{n.n} + \frac{r.T.(n-2).y}{n.n} + \cdots + \frac{r.T.y}{n.n}]$$

$$= \frac{r.T.y}{n^2}[n + (n-1) + (n-2) + \cdots + 1]$$

$$= \frac{r.T.y}{n^2}.\frac{n(n+1)}{2}$$

$$= \frac{r.T.y}{2}.(1 + \frac{1}{n}) \qquad \ldots (8.1)$$

उक्त अवधि की कुल लेन–देन लागत (TC) = दलाली लागत + कुल छोड़ी गई ब्याज आय

$$TC = n.b + \frac{r.T.y}{2}.(1 + \frac{1}{n}) \qquad \ldots (8.2)$$

अब लेन–देन की इष्टतम संख्या ज्ञात करने के लिए हमें n के संबंध में TC का पहला अवकलज लेना चाहिए और इसे शून्य के बराबर करना चाहिए क्योंकि व्यक्ति कुल लागत को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा। इस प्रकार, हमें प्राप्त होता है –

$$\frac{\partial TC}{\partial n} = b - \frac{r.T.y}{2.n^2} = 0 \qquad \ldots (8.3)$$

चर 'n' का मान ज्ञात करके हमें प्राप्त होता है –

$$n = \sqrt{\frac{r.T.y}{2.b}} \qquad \ldots (8.4)$$

इस प्रकार, लेन–देन की इष्टतम संख्या r, T एवं y के साथ बढ़ती है और दलाली शुल्क b के साथ घट जाती है। यही है प्रसिद्ध बॉमोल–टोबिन का 'वर्गमूल सूत्र'।

8.2.3 कुल मुद्रा माँग

अब हमें ज्ञात है कि व्यक्तिगत अभिकर्ता की औसत मुद्रा माँग $\bar{m}_i = y / 2n$ (देखें चित्र 8. 1) है।

उपर्युक्त में समीकरण (8.4) से लेन–देन की इष्टतम संख्या के मान को प्रतिस्थापित करने पर हमें प्राप्त होता है –

$$\bar{m}_i = \sqrt{\frac{b.y}{2.r.T}} \qquad \ldots (8.5)$$

जब कोई व्यक्तिगत अभिकर्ता आवधिक रूप से ऋणपत्र को नकदी में परिवर्तित करता रहता है तो बाजार के दूसरी ओर कोई ऐसी फर्म भी होनी चाहिए जिसका मुद्रा ऋणपत्रों में परिवर्तित हो गया हो। अतएव, प्रतिनिधि अभिकर्ता का ऋणपत्र और नकदी धारण फर्म के नकदी और ऋणपत्र धारण को प्रतिबिम्ब की भाँति दर्शाएगा। इसका तात्पर्य यह है कि फर्म का औसत नकद धारण भी समीकरण (8.4) में दिए गए वर्गमूल नियम द्वारा दर्शाया जाएगा।

यह स्पष्टीकरण हमें केवल समीकरण (8.5) को दोगुना करके कुल मुद्रा माँग फलन प्राप्त करने में सक्षम बनाता है। तदनुसार,

$$\frac{M}{P} = 2.\overline{m_i} = 2.\sqrt{\frac{by}{2r}} = \sqrt{\frac{4by}{2rT}} = \sqrt{\frac{2by}{rT}} \qquad \ldots (8.6)$$

समीकरण (8.6) के आधार पर दिए गए कुल मुद्रा माँग फलन की विशेषताओं को निम्नानुसार संक्षेपित किया जा सकता है –

$$\frac{M}{P} = m(r, y)\,;\ \frac{\partial m}{\partial r} < 0, \frac{\partial m}{\partial y} > 0 \qquad \ldots (8.7)$$

आप देखेंगे कि मुद्रा माँग की ब्याज लोचता $[= \frac{\partial \frac{M}{P}}{\partial r} . \frac{r}{\frac{M}{P}}]$ की गणना $(-)\frac{1}{2}$ के रूप में की जाती है। इस प्रकार, मुद्रा की माँग ब्याज–संवेदनशील होती है, भले ही मुद्रा की समस्त माँग लेन–देन प्रकार की हो। मुद्रा की प्रत्याशित या सट्टा माँग की विद्यमानता आगे 'ब्याज दर के प्रति मुद्रा माँग की संवेदनशीलता' को बढ़ा देती है।

8.2.4 बॉमोल–टोबिन मॉडल की सीमाएँ

ऊपर चर्चा किए गए बॉमोल–टोबिन मॉडल में हम यह मानकर चले थे कि आय एक समयावधि में एक बार ही प्राप्त होती है जबकि व्यय बार–बार और नियमित रूप से होता है। अतः, कोई भी आर्थिक अभिकर्ता प्राप्तियों अथवा आय को ऋणपत्रों के रूप में रखता है और इसे समय–समय पर नकदी में परिवर्तित करता रहता है। बहरहाल, इस मॉडल की कुछ सीमाएँ अथवा कमियाँ भी देखने में आती हैं, जो कि निम्नवत् हैं –

(i) व्यय भुगतान का पूरी तरह से पूर्वाभास नहीं हो सकता है और न ही इसे समान रूप से वितरित एवं निरंतर माना जा सकता है। यह आकारहीन और अप्रत्याशित ही हो सकता है।

(ii) बॉमोल–टोबिन का मॉडल मुद्रा की लेन–देन की माँग पर आधारित है। यह इस तथ्य की अनदेखी करता है कि ऋणपत्र की कीमतों में बदलाव से नकदी की माँग पर असर पड़ सकता है।

(iii) नकदी को किसी भी प्रकार से एकमात्र परिसंपत्ति नहीं माना जा सकता जिसमें लेन–देन की शेष राशि रखी जाए, जैसा कि उक्त मॉडल में माना गया है।

(iv) यदि आय और व्यय की प्राप्तियाँ समय और राशि के लिहाज से मेल खाती हों तो यह वास्तविक शेष राशि की शून्य माँग होगी।

(v) यह अंतर्निहित अवधारणा कि दलाली शुल्क स्थिर रहेगा, प्रश्न योग्य है।

बोध प्रश्न 1

1) यदि अधिकांश लेन–देन ऑनलाइन भुगतान के माध्यम से किया जाता हो तो क्या आप फिर भी दैनिक लेन–देन की जरूरतों को पूरा करने के लिए कुछ नकदी रखने के इच्छुक होंगे? अपने उत्तर के समर्थन में औचित्य दीजिए।

....

....

....

....

2) यदि r = 10:, मूल्य स्तर = 1, व्यक्ति की आय = रु. 30,000 प्रति माह और दलाली लागत = रु. 5000 प्रति लेन–देन हो तो बॉमोल–टोबिन मॉडल में किसी व्यक्ति के लिए लेन–देन की इष्टतम संख्या ज्ञात कीजिए।

....

....

....

....

3) यदि क्रेडिट कार्ड धोखाधड़ी के मामलों में तेजी से वृद्धि होती है तो मुद्रा की लेन–देन माँग पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा? समझाएँ।

....

....

....

....

8.3 निवेश –सूची सिद्धांत

कीन्स के तरलता अधिमान सिद्धांत का दावा है कि लोगों की निवेश–सूची में मुद्रा अथवा ऋणपत्र शामिल होते हैं। सामान्य तौर पर, व्यक्ति अनेक परिसंपत्तियों से युक्त निवेश सूची रखते हैं। तदनुसार, निवेश–सूची मे विविधता देखी जाती हैं। यह देखा गया है कि जोखिम युक्त परिसंपत्तियाँ अधिक लाभ अर्जित करती हैं। अतः, कोई व्यक्ति जो जोखिम और लाभ दोनों से सरोकार रखता हो, उसकी निवेश सूची में ऋणपत्र और मुद्रा दोनों का मिश्रण होता है।

8.3.1 निवेश–सूची संतुलन दृष्टिकोण

जेम्स टोबिन द्वारा प्रस्तुत निवेश–सूची सिद्धांत ने विशेष रूप से मुद्रा के एक विशेष कार्य पर जोर दिया, यथा, मूल्य संचय के रूप में मुद्रा। कोई भी व्यक्तिगत निवेशक अपनी कुल संपत्ति (W) को ऋणपत्रों (B) और मुद्रा (M) के रूप में रखता है। उसके निवेश का संग्रह (यथा, उनकी निवेश सूची) को निम्नवत् दर्शाया जाता है –

$$W = M + B \quad \dots (8.8)$$

यहाँ मुद्रा का मात्रिक मूल्य वही रहता है क्योंकि इससे कोई लाभ नहीं मिलता है; परंतु अपनी सुरक्षा और तरलता के कारण यह सुविधाजनक रहता है। चलिए, मान लेते हैं कि ऋणपत्रों पर निवेशित मुद्रा की 1 इकाई से प्रत्याशित लाभ '$\bar{e}$' है।

यह लाभ ब्याज की बाजार दर (r, जो कि ऋणपत्र की प्रत्येक इकाई पर अर्जित होता है और यह कोई अनिश्चितता नहीं है) तथा पूँजीगत लाभ की प्रत्याशित प्रतिशत दर ($\bar{g}$) से आता है। ऐसी संभावना होती है कि ऋणपत्र की कीमत ऊपर अथवा नीचे चली जाए। अतः निवेशक पूँजीगत लाभ के विषय में कुछ भी निश्चित नहीं कह सकता है। वह औसत पूँजीगत लाभ, जो कि $\bar{g}$ है, की प्रत्याशा मात्र ही कर सकता है। इस प्रकार, ऋणपत्र से उसके कुल प्रत्याशित लाभ में दो घटक शामिल होंगे –

(i) ब्याज (r) जो कि निश्चित है, और

(ii) पूँजीगत लाभ (g) जो कि अनिश्चित है।

निवेशक 'g' के विषय में अनिश्चितता रखते हैं, परंतु औसत प्रत्याशित लाभ $\bar{g}$ के आसपास इन लाभों का एक अंतर्निहित सामान्य वितरण दिखाई देता है। तदनुसार,

$$\bar{e} = r + \bar{g} \qquad \dots (8.9)$$

चूँकि ऋणपत्र जोखिम युक्त होते हैं, हम मानक विचलन σ_g को जोखिम के स्वाभाविक मापदंड के रूप में लेते हैं। इसका अर्थ है कि किसी भी निवेशक के पास 0.67 (मानक सामान्य वितरण के गुणधर्मों की जाँच कर लें) की प्रायिकता यह होती है कि g का मान $(\bar{g} - \sigma_g)$ और $(\bar{g} + \sigma_g)$ के बीच ही रहेगा। अब चूँकि कुल ऋणपत्र संपत्ति B है, प्रत्याशित लाभ $(\bar{R}_T)$ निम्नवत् होगा –

$$\bar{R}_T = B \cdot \bar{e} = B \cdot (r + \bar{g}) \qquad \dots (8.10)$$

यहाँ 'r' एक ज्ञात मूल्य है, जो कि कम से कम तो ऋणपत्र बाजार द्वारा व्यक्ति के लिए तय ही है। अब राशि 'B' के ऋणपत्र धारण का कुल जोखिम निम्नवत् होगा –

$$\sigma_T = B \cdot \sigma_g \qquad \dots (8.11)$$

सहज ज्ञान से, ऋणपत्र में रखे गए व्यक्ति के मुद्रा का अनुपात जितना अधिक होगा उतना ही अधिक उसे लाभ होगा, परंतु उसका जोखिम भी अधिक ही होगा। गणितीय रूप से, उक्त अंतर्ज्ञान को हम एक ठोस रूप दे सकते हैं। इस रूप को समीकरण (8.11) से हम निम्नवत् लिख सकते हैं –

$$B = \frac{\sigma_T}{\sigma_g} \qquad \dots (8.12)$$

समीकरण (8.10) में उपर्युक्त मान रखकर हमें प्राप्त होता है –

$$\bar{R}_T = \sigma_T \left(\frac{r+\bar{g}}{\sigma_g}\right) \qquad \dots (8.13)$$

अवसर बिन्दुपथ (OC) का ढलान निम्नवत् दर्शायी जाती है –

$$\frac{d\bar{R}_T}{d\sigma_T} = \frac{r+\bar{g}}{\sigma_g} \qquad \dots (8.14)$$

इनमें से r को छोड़कर प्रत्येक पद प्रत्येक व्यक्ति के लिए निश्चित है।

आइए, अब चित्र 8.2 में समीकरण (8.13) का प्रांकन करते हैं। इस चित्र के ऊपरी खंड में हम y–अक्ष पर ऋणपत्र संपत्ति से प्रत्याशित लाभ $\bar{R}_T$ और x–अक्ष पर कुल जोखिम σ_T को मापते हैं। याद रखें कि यदि व्यक्ति अधिक ऋणपत्र रखता है तो प्रत्याशित लाभ $(\bar{R}_T)$ बढ़ता है। साथ ही, यदि व्यक्ति अधिक ऋणपत्र रखता है तो जोखिम भी बढ़ जाता है।

इस प्रकार, मूल '0' पर लाभ और जोखिम दोनों शून्य होते हैं (इसका अर्थ है कि यह व्यक्ति अपनी सारी संपत्ति नकद मुद्रा के रूप में रखता है)। जैसे–जैसे इस व्यक्ति का ऋणपत्र संपत्ति बढ़ता है, उसके लाभ के साथ–साथ उसका जोखिम भी बढ़ता है। इसीलिए OC रेखा धनात्मक ढलान दर्शाती है।

इसके अलावा, यहाँ एक समझौताकारी समन्वय भी दिखाई देता है, यथा – अधिक ऋणपत्रों का अर्थ होगा अधिक लाभ, और अधिक नकद मुद्रा का अर्थ होगा कम प्रतिफल। प्रत्याशित प्रतिलाभ $\bar{R}_T$ और कुल जोखिम σ_T के बीच यह समझौताकारी समन्वय *अवसर बिन्दुपथ* OC द्वारा दर्शाया जाता है।

चूँकि हम मानकर चलते हैं कि समझौताकारी समन्वय की दर स्थिर है, 'अवसर बिन्दुपथ' एक सीधी रेखा होता है। यह निवेशक ही तय करता है कि किस बिंदु पर उसका जोखिम इष्टतम (OC वक्र पर) होगा। यदि वह जोखिम से बचने वाला है तो वह मूलबिंदु के ओर अधिक प्रवणता दर्शाएगा। यदि वह जोखिम प्रेमी है तो वह मूलबिंदु से बहुत दूर होगा।

आप देखेंगे कि जब ब्याज दर में परिवर्तन होता है तो OC वक्र खिसकता है। जब ब्याज दर r_1 होती है तो रेखा OC_1 अवसर बिंदुपथ हो जाती है। जैसे–जैसे ब्याज की बाजार दर बढ़ती है, रेखा की ढलान बढ़ती ही जाती है और व्यक्ति का अवसर बिंदुपथ क्रमशः $r_1 < r_2 < r_3$ ब्याज की अलग–अलग दरों के अनुरूप OC_1 से OC_2 से OC_3 में बदल जाता है।

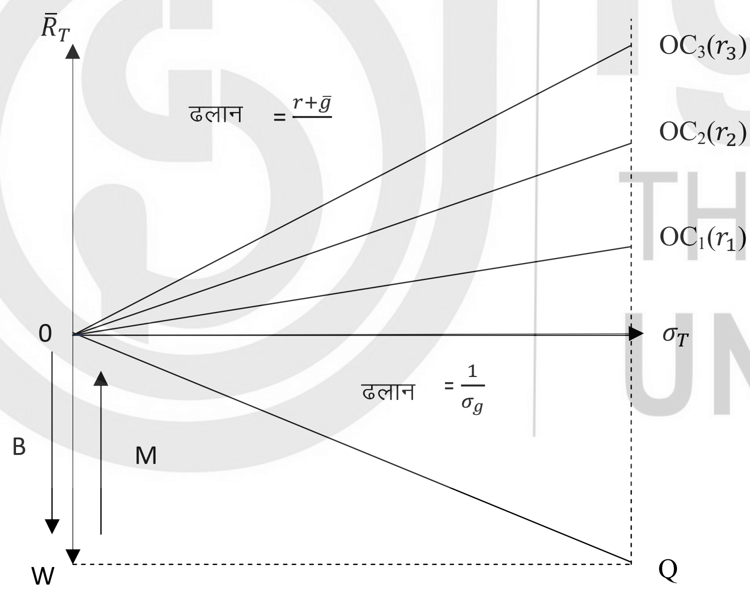

चित्र 8.2: जोखिम और प्रतिफल के बीच समझौताकारी समन्वय

चित्र 8.2 के निचले खंड में जोखिम और ऋणपत्रों में निवेश के बीच संबंध को रेखा OQ (समीकरण 8.12 से) द्वारा दर्शाया गया है। इसी खंड में ऊर्ध्वाधर अक्ष की लंबाई व्यक्ति की निश्चित तरल संपत्ति W द्वारा दर्शायी गई है। यहीं y–अक्ष के साथ मूलबिंदु से दूरी कुल ऋणपत्र संपत्ति (B), और कुल मुद्रा बिंदु (W) से y–अक्ष के साथ–साथ मूलबिंदु '0' तक दूरी कुल मुद्रा संपत्ति (M) भी दर्शाए गए हैं। रेखा OQ का ढलान समीकरण (8.12) से $\frac{1}{\sigma_g}$ है। रेखा OQ हमें σ_T के किसी भी दिए गए स्तर के लिए निवेशक की निवेश–सूची में ऋणपत्र (B) और मुद्रा (M) का संयोजन खोजने में मदद करती है।

8.3.2 निवेशक का जोखिम अधिमान और इष्टतम निवेश–सूची आवंटन

कोई भी निवेशक जोखिम और लाभ पर इष्टतमीकरण करता है। आइए, हम B (ऋणपत्र) और M (नकद मुद्रा) के इष्टतम निवेश–सूची मिश्रण का पता लगाते हैं। व्यक्ति के इष्टतम जोखिम–लाभ संयोजन का पता लगाने के लिए हमें उसके उपयोगिता फलन $U = f(\bar{R}_T, \sigma_T)$ को जानना होगा। चर ($\bar{R}_T$ में वृद्धि से उपयोगिता में वृद्धि होती है जबकि चर σ_T में वृद्धि से उपयोगिता घट जाती है। हम इस उपयोगिता फलन को उदासीनता वक्रों (IC) के रूप में व्यक्त कर सकते हैं, जैसे कि एक उच्चतर IC उपयोगिता के उच्चतर स्तर (देखें चित्र 8.3) को ही इंगित करता है। चित्र 8.3 में तीन अनधिमान वक्र दर्शाए गए हैं।

टोबिन ने मोटे तौर पर दो प्रकार के निवेशकों में अंतर स्पष्ट किया, यथा –

(i) *जोखिम प्रेमी*, और

(ii) *जोखिम अपवर्जक*।

जोखिम प्रेमी ऐसे व्यक्ति होते हैं जो असामान्यतः उच्च पूँजीगत लाभ का अवसर पाने के लिए कम प्रत्याशित लाभ स्वीकार करने को सदा तैयार रहते हैं। वे उच्च जोखिम पसंद करते हैं। उनके अनधिमान वक्र मूलबिंदु के प्रति अवतल होते हैं। दूसरी ओर, जोखिम अपवर्जक अर्थात् जोखिम टालने वाले उच्च जोखिम को तब तक स्वीकार नहीं करते जब तक कि उन्हें क्षतिपूर्ति नहीं दी जाती और वे उच्चतर प्रत्याशित लाभ से संतुष्ट नहीं हो जाते।

आनुभाविक रूप से यह देखा गया है कि अधिकांश निवेशक जोखिम से बचने वाले होते हैं। उनके अनधिमान वक्र मूलबिंदु के प्रति उत्तल होते हैं। आगे हम अपना विश्लेषण चित्र 8.3 में जोखिम टालने वालों के इष्टतम निवेश–सूची आवंटन का पता लगाने पर केंद्रित करेंगे।

चलिए, हम उस स्थिति से आरंभ करते हैं जब ब्याज दर r_0 है और अनधिमान वक्र IC_0 (देखें चित्र 8.3 का ऊपरी खंड) है। यहाँ निवेशक संतुलन बिंदु पर है, जहाँ रेखा OC_0 रेखा IC_0 की स्पर्शरेखा है। तदनुसार, निवेशक ऋणपत्रों की OB_0 राशि और नकद मुद्रा की B_0W राशि (देखें चित्र 8.3 का निचला खंड) का धारण करेगा। यही निवेशक का **इष्टतम निवेश–सूची आवंटन** कहलाता है।

मान लीजिए कि ब्याज दर में r_1 की वृद्धि हुई है। अब निवेशक अधिक जोखिम लेने को तैयार होगा क्योंकि अब लाभ अधिक है। निवेशक IC_2 द्वारा दर्शायी गई उच्च स्तर की उपयोगिता भी प्राप्त कर सकता है। साम्यावस्था की स्थिति उस बिंदु से दी जाती है जहाँ रेखा OC_1 रेखा IC_1 की स्पर्शरेखा होती है। इसे चित्र 8.3 के निचले खंड में देखें। निवेशक का इष्टतम निवेश–सूची आवंटन OB_1 से और मुद्रा का इष्टतम निवेश–सूची आवंटन B_1W से दर्शाया जाता है।

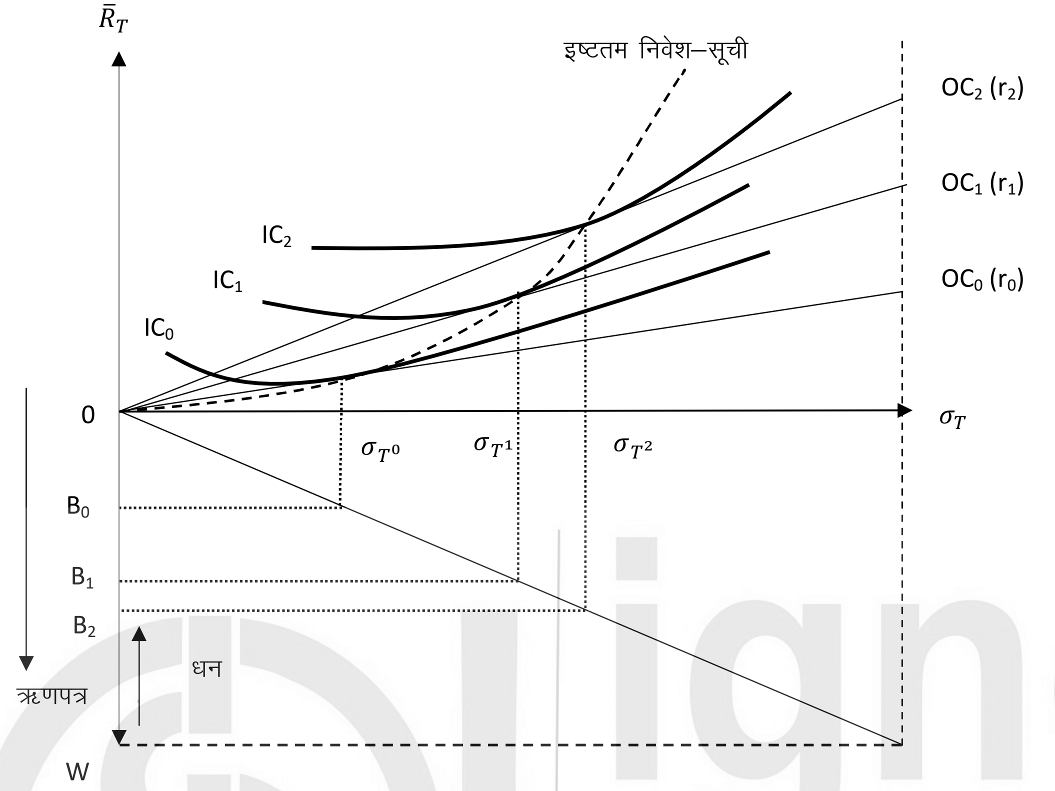

चित्र 8.3: जैसे–जैसे ब्याज दर बढ़ती है, विविधीकरण करने वाले अपनी इष्टतम निवेश सूची को अधिक ऋणपत्रों और कम नकद मुद्रा की दिशा में बदलते हैं।

8.3.3 कुल मुद्रा माँग की ब्याज–दर संवेदनशीलता

निवेशक के ऋणपत्रों और नकद मुद्रा के बीच तरल पूँजी के आवंटन में बदलावों को देखकर कुल मुद्रा माँग वक्र को चित्र 8.3 से अवकलित किया जा सकता है। जैसे–जैसे निरंतर वृद्धि से चर r बढ़ता है (r_0, r_1, r_2), अवसर बिंदुपथ रेखाएँ अपना ढलान बढ़ाती हुई ऊपर की ओर घूम जाती हैं (OC_0, OC_1, OC_2) जहाँ वे आनुक्रमिक उच्चतर अनधिमान वक्रों (IC_0, IC_1, IC_2) को स्पर्श करती हैं।

उपयोगिता वक्र और अवसर बिंदुपथ के बीच आनुक्रमिक स्पर्शरेखा बिंदुओं का मिलाने से हमें इष्टतम निवेश–सूची वक्र (बिंदुयुक्त रेखा) प्राप्त होता है। आप देखेंगे कि चर r में निरंतर समान वृद्धि के कारण हमें ऋणपत्रों (B_0, B_1, B_2) में रखे गए मुद्रा (स्थिर) की राशि थोड़ी–थोड़ी बढ़कर प्राप्त होती रहती है।

चूँकि W स्थिर है और $W = B + M$, हम इसके विपरीत यह भी कह सकते हैं कि चर r में निरंतर समान वृद्धि के लिए निवेशक को M की राशि में थोड़ी–थोड़ी कमी करते रहना चाहिए।

उदाहरण : एक जोखिम से बचने वाले निवेशक के लिए मान लीजिए कि W = 100 है। उसका निवेश–सूची आवंटन निम्नलिखित तालिका द्वारा दर्शाया गया है –

ब्याज दर	ऋणपत्र धारण (B)	नकद मुद्रा (M)	वास्तविक मुद्रा धारण (M/P)
r_0	50	50	$50/P_0$
r_1	60	40	$40/P_0$
r_2	65	35	$35/P_0$
r_3	67	33	$33/P_0$

उपर्युक्त काल्पनिक उदाहरण में हम यह मानकर चलते हैं कि मूल्य स्तर P_0 पर अपरिवर्तित रहता है। हमने चित्र 8.4 में वास्तविक मुद्रा धारण और ब्याज दर का प्रांकन किया है। यह हमें *कुल मुद्रा माँग वक्र* देता है। याद रखें कि हम आय को Y_0 पर स्थिर मानकर चले थे।

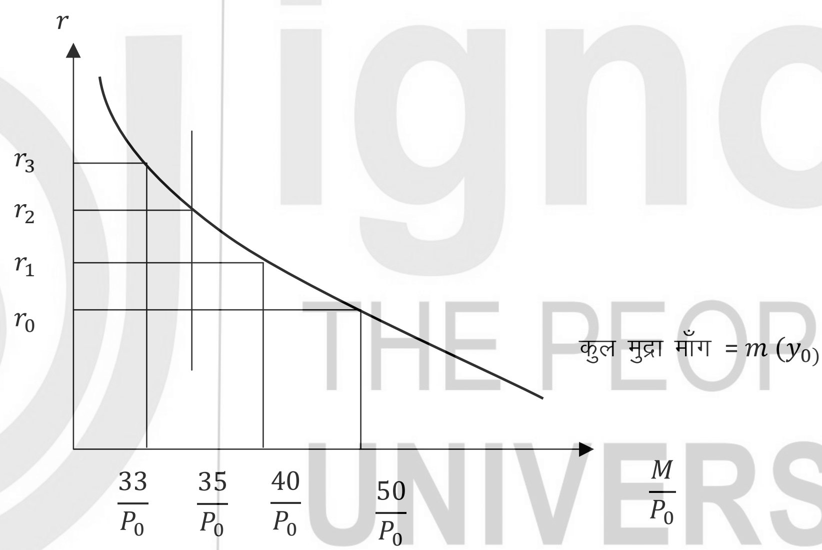

चित्र 8.4: मुद्रा माँग फलन

चित्र 8.4 में आरेखित मुद्रा माँग फलन और कुछ नहीं, मुद्रा की प्रत्याशित या सट्टा माँग ही है। यह फलन ब्याज दर के आधार पर ऋणपत्र व नकद मुद्रा में स्थिर मुद्रा के इष्टतम आवंटन, और पूँजीगत लाभ पर प्रत्याशित जोखिम एवं लाभ का विश्लेषण करता है। इस मॉडल में मुद्रा की लेन–देन माँग के संबंध में कोई संदर्भ नहीं दिया गया है।

8.3.4 पूँजीगत लाभ के प्रायिकता वितरण का महत्व

ऋणपत्र धारण के जोखिम संबंधी निवेशक के अनुमान σ_g व्यक्तिपरक हैं। पूँजीगत लाभ के प्रायिकता वितरण का मानक विचलन σ_g निवेशक की अवधारणा, बाजार का अनुभव, अनिश्चितता, राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति के उपाय, आदि से प्रभावित होता है।

केन्द्रीय बैंक की नीति (जैसे मुक्त बाजार संक्रियाएँ) निवेशकों के अनुमानित जोखिम को प्रभावित कर सकती है। पूँजीगत लाभ और ब्याज आय पर कर की दर निवेशक के

अनुमानित जोखिम और लाभ की गणना को प्रभावित करती है। इस प्रकार, निवेशक के मुद्रा के इष्टतम आवंटन पर σ_g में परिवर्तन के प्रभाव का पता लगाना आवश्यक होता है।

चर σ_g में कोई भी वृद्धि रेखा OC और रेखा OQ दोनों के ढलान को प्रभावित करती है (देखें चित्र 8.2)। जबकि रेखा OC नीचे की ओर घूमेगी, रेखा OQ ऊपर की ओर घूमेगी। इसका तर्क एकदम सरल है। जब ऋणपत्रों में निवेश का जोखिम बढ़ जाता है तो निवेशक ऋणपत्र धारण का कुल जोखिम घटाना पसंद करेंगे (σ_T को घटाने की इच्छा)। अतः निवेशक B पर कटौती करेगा।

पूँजीगत लाभ $\bar{g}$ में वृद्धि का प्रभाव ब्याज दर में वृद्धि के समान ही होगा। किसी भी ज्ञात ब्याज दर के लिए पूँजीगत लाभ में वृद्धि से ऋणपत्र के लिए निवेशक की प्राथमिकता बढ़ेगी और उसकी मुद्रा माँग में कमी आएगी। इस प्रकार, मुद्रा माँग वक्र नीचे की ओर खिसकेगा। जब निवेशक की निवेश–सूची में ऋणपत्र और नकद मुद्रा दोनों होते हैं तो मुद्रा की प्रत्याशित माँग को समझाने के लिए टोबिन का माल–सूची संतुलन दृष्टिकोण कहीं अधिक यथार्थवादी विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

बोध प्रश्न 2

1) एक रु. 100 मूल्य का ऋणपत्र रु. 6 का लाभ देता है। शीघ्र ही ऋणपत्र की कीमत बढ़कर रु. 120 हो जाती है। यह ऋणपत्र जोखिम युक्त है; जितना अधिक जोखिम उतना ही अधिक लाभ। औसत प्रत्याशित पूँजीगत लाभ 15% है और परिसंपत्ति धारक के लिए 66.7% संभावना है कि वास्तविक पूँजीगत लाभ 11% और 19% के बीच रहेगा। इस मामले में जोखिम में एक प्रतिशतता बिंदु की वृद्धि निवेशक के प्रत्याशित कुल लाभ में कितनी वृद्धि लेकर आएगी?

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

2) मान लीजिए कि बाजार में दो प्रकार के ऋणपत्र उपलब्ध हैं। यद्यपि दोनों ही प्रकार के ऋणपत्रों का औसत प्रत्याशित लाभ एक समान है, एक के पास दूसरे की तुलना में अधिक σ_g है। अब निवेशक द्वारा किसे प्राथमिकता दी जाएगी?

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

8.4 फ्रीडमैन का मुद्रा माँग दृष्टिकोण

मिल्टन फ्रीडमैन ने अपने निबंध (1956) ''द क्वांटिटी थ्योरी ऑफ मनी – ए रिस्टेटमेंट'' में मुद्रा के मात्रात्मक सिद्धांत को पुनर्सूत्रित किया। उसने मुद्रा को एक प्रकार की परिसंपत्ति के रूप में लिया। परिवार, फर्म और सरकार जैसे आर्थिक अभिकर्ता अपनी

संपत्ति का कुछ हिस्सा नकद मुद्रा के रूप में रखना चाहते हैं। इस प्रकार, नकद मुद्रा एक परिसंपत्ति या पूँजी है, जो कि सकारात्मक लाभ देता है। अतः, फ्रीडमैन का मुद्रा माँग सिद्धांत अनिवार्यतः मुद्रा सिद्धांत का ही एक हिस्सा है। फ्रीडमैन ने स्थायी आय को मुद्रा के ही प्रतिनिधि के रूप में लिया है।

8.4.1 मुद्रा माँग फलन

संपत्ति को पाँच अलग–अलग रूपों में देखा जा सकता है, यथा –

(i) नकद मुद्रा,
(ii) ऋणपत्र,
(iii) इक्विटी,
(iv) भौतिक वस्तुएँ, और
(v) मानव पूँजी।

संपत्ति के प्रत्येक रूप में अद्वितीय विशेषताएँ होती हैं। संपत्ति का प्रत्येक रूप कुछ न कुछ निश्चित प्रतिफल अवश्य देता है। पहले चार रूपों को *गैर–मानव पूँजी* के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है, जबकि पाँचवाँ *मानव पूँजी* है। गैर–मानव पूँजी को आसानी से मुद्रा में परिवर्तित किया जा सकता है।

मानव पूँजी (यह शिक्षा, कौशल अथवा उत्तम स्वास्थ्य जैसी मनुष्य की आय अर्जित करने वाली उत्पादक क्षमता को इंगित करता है) को न तो आसानी से समाप्त किया जा सकता है और न ही इसे मुद्रा उधार लेने के लिए धरोहर के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

फ्रीडमैन के अनुसार मुद्रा की माँग निम्नलिखित चरों पर निर्भर करती है –

(i) **कुल मुद्रा** : किसी व्यक्ति के मुद्रा का कुल संचय उसकी मुद्रा माँग का सबसे महत्वपूर्ण निर्धारक होता है। किसी व्यक्ति का मुद्रा जितना अधिक होगा, वह लेन–देन व अन्य उद्देश्यों के लिए उतनी ही अधिक मुद्रा की माँग करेगा। किसी व्यक्ति के कुल मुद्रा का आकलन शायद ही कभी सटीक रूप से उपलब्ध होता है। फ्रीडमैन ने स्थायी आय के रियायती मूल्य (y_p) का प्रयोग मुद्रा के सूचकांक के रूप में किया। स्थायी आय अभिकर्ता के जीवनकाल के दौरान मुद्रा से कुल प्रत्याशित लाभ को कहा जाता है।

(ii) **मानव पूँजी और गैर–मानव पूँजी अनुपात** : जिस अनुपात (w) में अभिकर्ता के मुद्रा (स्थायी आय) को परिसंपत्ति के इन दो रूपों के बीच विभाजित किया जाता है, वह मुद्रा की माँग को वास्तविकता पदों में निर्धारित करने का एक महत्वपूर्ण कारक होता है। फ्रीडमैन ने अपनी *स्थायी आय परिकल्पना* में मानव मुद्रा से अपेक्षाकृत कम सीमांत उपभोग प्रवृति (MPC) का सुझाव दिया। इसके कारण, यद्यपि मानव पूँजी और गैर–मानव पूँजी का अनुपात प्रासंगिक बना रहता है, यह फ्रीडमैन के सिद्धांत में कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाता।

(iii) **मुद्रा व अन्य वित्तीय परिसंपत्तियों पर लाभ की प्रत्याशित दर** : मुद्रा की माँग संबंधी अन्य सिद्धांतों से भिन्न, फ्रीडमैन मुद्रा की व्यापक परिभाषा लेता है। तदनुसार, वह इसमें माँग जमा और करेंसी के साथ–साथ सावधि जमा को भी शामिल करता है। अतः, मुद्रा भी परिसंपत्ति के अन्य रूपों की भाँति प्रत्याशित मात्रिक लाभ (R_m) देता है। चूँकि किसी भी व्यक्ति की स्थायी आय स्थिर होती है, उसका मुद्रा (जो स्थायी आय द्वारा स्थानापन्न किया जाता है) भी स्थिर होता है। इस स्थिर मुद्रा से अपना हिस्सा निकालने के लिए मुद्रा व अन्य वित्तीय परिसंपत्ति एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करती रहती हैं। इस प्रकार, मुद्रा की माँग मुद्रा के सापेक्ष अन्य परिसंपत्तियों (ऋणपत्रः $(R_b - R_m)$, इक्विटीज :

$(R_e - R_m)$) के धारण हेतु प्रोत्साहनों पर निर्भर करती है। यदि वित्तीय परिसंपत्तियों (ऋणपत्र एवं इक्विटीज) पर लाभ मुद्रा की तुलना में कम हो जाता है तो व्यक्तिगत अभिकर्ता अपने पास अधिक मुद्रा रखना चाहेगा।

(iv) **मूल्य और प्रत्याशित मुद्रास्फीति** : मुद्रास्फीति के कारण बढ़ते कीमत स्तर के दो परस्पर विरोधी प्रभाव देखने में आते हैं। मुद्रास्फीति मुद्रा की क्रय शक्ति (मात्रिक पदों में) को नष्ट कर देती है। ऐसी दशाओं में कोई भी व्यक्ति अपने वास्तविक मुद्रा शेष को स्थिर रखने के लिए उच्चतर मौद्रिक मुद्रा शेष रखना चाहेगा। इसके अलावा, गैर–मानव संपत्ति जैसे कि अचल संपत्ति, सोना, अद्वितीय कलाकृति, आदि पर सापेक्ष प्रतिफल में वृद्धि हो जाती है। यह लोगों को कम मुद्रा रखने के लिए प्रभावित करेगा। इस प्रकार, यह भौतिक वस्तुओं के सापेक्ष लाभ $(\pi^e - R_m)$ पर निर्भर करेगा।

(v) **अन्य चर** : अभिरुचि एवं अधिमान, प्रत्याशित आर्थिक अस्थिरता (वैश्विक वित्तीय संकट, व्यापार चक्र के दौर) और संस्थागत कारक (मजदूरी भुगतान प्रणाली की विधि, बिलों का भुगतान) जैसे चर भी मुद्रा की माँग को प्रभावित करते हैं। इन सभी कारकों को चर (z) के अन्तर्गत दर्शाया जाता है।

अब फ्रीडमैन के मुद्रा माँग फलन को निम्नलिखित रूप में लिखा जा सकता है –

$$\frac{M^d}{P} = \varphi\,(y_p\,, w,\ (R_b - R_m),\ (R_e - R_m),\ (\pi^e - R_m),\ z) \qquad \ldots (8.15)$$

उपर्युक्त समीकरण में,

$\frac{M^d}{P}$ = वास्तविक मुद्रा शेष की माँग

y_p = वास्तविक स्थायी आय

w = मानव पूँजी और गैर–मानव पूँजी का अनुपात

R_m = मुद्रा से प्रत्याशित मौद्रिक लाभ

R_b = ऋणपत्रों से प्रत्याशित मौद्रिक लाभ

R_e = इक्विटी से प्रत्याशित मौद्रिक लाभ

π^e = मुद्रास्फीति की प्रत्याशित दर = गैर–वित्तीय वस्तु से प्रत्याशित मात्रिक लाभ हेतु स्थानापन्न

z = कोई भी अन्य चर जो वास्तविक मुद्रा से व्युत्पन्न उपयोगिता को प्रभावित करने की शक्ति रखते हों

फ्रीडमैन के अनुसार, जब स्थायी आय में वृद्धि होती है तो वास्तविक मुद्रा शेष की माँग तब बढ़ जाती है और जब ऋणपत्र, इक्विटी अथवा वस्तु पर प्रत्याशित लाभ मुद्रा पर प्रत्याशित मात्रिक लाभ की तुलना में बढ़ जाता है तो स्थायी आय घट जाती है।

फ्रीडमैन का विचार है कि अर्थव्यवस्था में ब्याज दर में बदलाव से मुद्रा पर प्रत्याशित लाभ के साथ–साथ परिसंपत्तियों के वैकल्पिक रूपों में भी बदलाव आता है। परिणामतः, मुद्रा माँग फलन में प्रोत्साहन पदों $(R_b - R_m,\ R_e - R_m,\ \pi^e - R_m)$, और इसीलिए मुद्रा की माँग में कोई परिवर्तन नहीं देखा जाता है। इस प्रकार, मुद्रा की माँग ब्याज दर के प्रति असंवेदनशील होती है। यह केन्जियन अवधारणा के नितांत विपरीत है।

कीन्स के अनुसार, ब्याज दर मुद्रा की माँग का एक महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व होती है। यह अंतर कीन्स और फ्रीडमैन द्वारा मानी जाने वाली मुद्रा की परिभाषा में अंतर के कारण

उत्पन्न होता है। कीन्स मुद्रा की एक बहुत ही संकीर्ण परिभाषा लेता है जबकि फ्रीडमैन मुद्रा की एक व्यापक परिभाषा लेता है जिसमें वह माँग जमा के साथ–साथ सावधि जमा (जो कि ब्याज अर्जन होता है) को भी शामिल करता है। जैसे–जैसे ब्याज की दर बढ़ती है, मुद्रा के सावधि जमा घटक की माँग भी बढ़ती है और माँग जमा एवं मुद्रा की माँग गिरती है। अतः, मुद्रा की माँग पर ब्याज दर का कुल प्रभाव नगण्य होता है।

समीकरण (8.15) में बताए गए फ्रीडमैन के मुद्रा माँग फलन का लगभग अनुमान निम्नवत् लगाया जा सकता है –

$$\frac{M^d}{P} = \varphi\,(Y_p) \qquad \ldots (8.16)$$

आप देखेंगे कि मुद्रा की माँग को निर्धारित करने में अपना सापेक्ष महत्व न रखने के कारण w और z जैसे पदों को छोड़ दिया जाता है। फ्रीडमैन का सिद्धांत बताता है कि वास्तविक स्थायी आय ही वास्तविक मुद्रा की माँग का एकमात्र निर्धारक तत्व होती है। किसी व्यक्ति की स्थायी आय कालांतर में काफी स्थिर रहती है क्योंकि यह आय स्तर में कुछ अप्रत्याशित स्थायी परिवर्तनों के कारण ही बदलती है।

इस प्रकार, दूसरा बिंदु जिसमें फ्रीडमैन कीन्स से भिन्न है, वह यह है कि कीन्स के सिद्धांत में प्रत्याशित ब्याज दर में परिवर्तन के कारण मुद्रा की माँग अनिश्चित और अस्थिर होती है, जबकि फ्रीडमैन की वास्तविक मुद्रा की माँग अत्यधिक स्थिर होती है क्योंकि यह स्थिर चर 'स्थायी आय' पर निर्भर होती है। इसका अर्थ यह है कि मुद्रा माँग की मात्रा का अनुमान समीकरण (8.16) में बताए गए मुद्रा फलन की माँग से सटीक रूप से लगाया जा सकता है।

8.4.2 मुद्रा का आय संवेग

फ्रीडमैन के अनुसार, मुद्रा माँग फलन, और इसीलिए मुद्रा का वेग, अत्यधिक पूर्वानुमेय और स्थिर होते हैं। मुद्रा माँग फलन की स्थिरता और मुद्रा के वेग की परिणामी पूर्वानुमेयता वास्तविक वर्तमान आय (= वास्तविक मापी गई आय = y) और वास्तविक स्थायी आय (y^p) के बीच के संबंध से अवकलित की जा सकती है। इसे समीकरण (8.16) में दिए गए मुद्रा माँग फलन को निम्नलिखित रूप में परिवर्तित करके देखा जा सकता है –

$$V = \frac{y}{\frac{M^s}{P}} = \frac{y}{\frac{M^d}{P}} = \frac{y}{\varphi(y^p)} = \text{मुद्रा का वेग (velocity)} \qquad \ldots (8.17)$$

चूँकि वर्तमान आय और स्थायी आय के बीच संबंध काफी स्थिर और पूर्वानुमेय होता है, मुद्रा का वेग भी स्थिर और पूर्वानुमेय होता है, हालाँकि नियत नहीं होता है। फ्रीडमैन ने अपनी 'स्थायी आय परिकल्पना' में वास्तविक स्थायी आय को निम्नानुसार परिभाषित किया है –

$$y^p = \frac{r}{r+1}\sum_{j=0}^{\infty}\frac{y_{t+j}}{(1+r)^j} \qquad \ldots (8.18)$$

यहाँ, r = वास्तविक ब्याज दर और t = समयावधि

तदनुसार, $\frac{r}{(r+1)} < 1.$

अतएव, वास्तविक स्थायी आय वर्तमान मापी गई आय से कम होती है। उपर्युक्त का निहितार्थ यह है कि 'वास्तविक स्थायी आय में परिवर्तन वर्तमान मापित आय में परिवर्तन से कम होता है'।

फ्रीडमैन ने इस संबंध का प्रयोग मुद्रा वेग की चक्रोन्मुख गति की व्याख्या करने के लिए किया। किसी भी व्यापार चक्र के विस्तारकारी चरण के दौरान मुद्रा की माँग में वृद्धि आय

में वृद्धि से कम होती है। यह इस तथ्य के कारण है कि स्थायी आय में वृद्धि वास्तविक मापी गई आय में वृद्धि के सापेक्ष कम होती है (देखें समीकरण (8.17))। परिणामतः, मुद्रा के वेग में वृद्धि देखी जाती है। दूसरी ओर, व्यापार चक्र के मंदी के दौर में, मुद्रा की माँग में कमी आय की तुलना में कम होती है। यह इस तथ्य के कारण है कि स्थायी आय में गिरावट वास्तविक मापी गई आय में गिरावट के सापेक्ष कम होती है। परिणामतः, मंदी के दौरान मुद्रा के वेग में गिरावट देखी जाती है।

उपर्युक्त का निहितार्थ यह है कि मात्रिक मुद्रा आपूर्ति में किसी भी ज्ञात परिवर्तन से कुल व्यय में एक पूर्वानुमेय परिवर्तन होगा। इस प्रकार, फ्रीडमैन की मुद्रा की माँग वास्तव में मुद्रा के मात्रात्मक सिद्धांत का एक आधुनिक संस्करण है जहाँ मुद्रा मात्रिक कुल व्यय का प्राथमिक निर्धारक तत्व होती है।

8.4.3 फ्रीडमैन के मुद्रा–माँग सिद्धांत के निहितार्थ

फ्रीडमैन का मुद्रा माँग सिद्धांत के मुद्रा के सिद्धांत, व्यापार चक्र के अध्ययन और मौद्रिक नीतियों के संचालन हेतु अनेक रोचक सैद्धांतिक निहितार्थ दर्शाता हैं। वैसे इसे कुछ आलोचनाओं का सामना भी करना पड़ा है। ब्याज दर के प्रति मुद्रा माँग की असंवेदनशीलता को लेकर इस सिद्धांत की बहुत आलोचना की गई है। फ्रीडमैन की इस बात को लेकर भी आलोचना हुई है कि उसने मुद्रा की व्यापक परिभाषा दी है और उसमें ब्याज दर को आकर्षित करने वाली मुद्रा आपूर्ति के M3 (M1 व M2 के साथ–साथ) प्रकार का वहन करने वाले ब्याज को भी शामिल किया है।

इस प्रकार, मुद्रा की माँग पर ब्याज दर में बदलाव का समग्र प्रभाव नगण्य होता है। दूसरे, फ्रीडमैन ने अपने सिद्धांत में वेग की गणना में मापित आय और स्थायी आय के उपयोग की ओर संकेत करते हुए मुद्रा के आय वेग के चक्रीय उतार–चढ़ाव की व्याख्या की है। इस वेग के बकाया चक्रीय व्यवहार को केवल ब्याज दरों में होने वाले परिवर्तन के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जो कि नगण्य होता है, और तदनुसार, फ्रीडमैन के इस विचार का समर्थन करता है कि नकद शेष राशि की माँग ब्याज दर के प्रति असंवेदनशील होती है।

फ्रीडमैन ने मुद्रा की आपूर्ति और ज्ञात मुद्रा आपूर्ति में परिवर्तन को दिया हुआ माना। उसने बैंकों को मुद्रा का उत्पादक माना। उसने मुद्रा आपूर्ति को प्रभावित करने वाले किसी भी कारक की संभावना से इनकार किया। बहरहाल, मुद्रा की आपूर्ति पर निर्णय कुछ चरों पर निर्भर करते हैं, जैसे –

(i) गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थों द्वारा मुद्रा की जमा एवं निकासी प्रक्रियाएँ,
(ii) वाणिज्यिक बैंकों द्वारा केंद्रीय बैंक को व उससे ऋणदान एवं ऋणादान, तथा
(iii) केंद्रीय बैंक द्वारा प्रतिभूतियों का क्रय एवं विक्रय।

बोध प्रश्न 3

1) फ्रीडमैन के आधुनिक मात्रात्मक सिद्धांत में मुद्रा की माँग को निर्धारित करने वाले कारकों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) फ्रीडमैन द्वारा प्रतिपादित मुद्रा के मात्रात्मक सिद्धांत में मुद्रा का वेग कैसे निर्धारित होता है?

....

....

....

....

....

3) मान लीजिए कि मुद्रा की वास्तविक माँग प्रकार्यात्मक रूप $\frac{M^d}{P} = 0.20 \times Y$ में नजर आती है। फ्रीडमैन द्वारा विवक्षित मुद्रा के मात्रात्मक सिद्धांत संबंधी समीकरण का प्रयोग कर मुद्रा का आय वेग ज्ञात करें।

....

....

....

....

....

4) मान लीजिए कि वास्तविक ब्याज दर $r = 10\%$ है। आय में किसी *अस्थायी* परिवर्तन पर विचार करें, यथा $\Delta y_t = 1$, जो कि $\Delta y_{t+j} = 0, j = 1,2,\ldots$ के साथ है। अब स्थायी आय में कितना परिवर्तन होगा? यदि आय में *स्थायी* परिवर्तन हुआ हो, यथा $\Delta y_{t+j} = 1 , j = 1,2, \ldots$, तो आपके विचार से स्थायी आय में कितना परिवर्तन होगा?

....

....

....

....

....

8.5 सार संक्षेप

मुद्रा की माँग संबंधी उत्तर–केन्जियन सिद्धांतों ने मुख्य रूप से या तो लेन–देन के प्रयोजन या फिर नकद शेष राशि रखने के सावधानी प्रयोजन पर जोर दिया। मुद्रा के विनिमय–माध्यम प्रकार्य ने ही लेन–देन के मॉडलों को जन्म दिया। बॉमोल (1952) और टोबिन (1957) ने मुद्रा को एक माल–सूची वस्तु के रूप में माना, जिसे लोग लेन–देन के उद्देश्य के लिए रखना चाहते है, बशर्ते लेन–देन का स्तर ज्ञात और निश्चित हो।

यद्यपि वैकल्पिक तरल परिसंपत्तियाँ मुद्रा की तुलना में बेहतर लाभ दर पर उपलब्ध हो जाती हैं, इन परिसंपत्तियों को मुद्रा में बदलने के कारण कुछ निश्चित लेन–देन लागत आती है। इस तरह की लेन–देन की लागत मुद्रा धरने को ही सही ठहराती है।

फ्रीडमैन (1958) ने उपभोक्ता वस्तु के रूप में मुद्रा का विश्लेषण किया। साथ ही, उसने किसी उपभोक्ता टिकाऊ सामान की माँग के प्रत्यक्ष विस्तार के रूप में मुद्रा की माँग का भी विश्लेषण किया, जिसको फिर उपभोक्ताओं के उपयोगिता फलन में प्रवेश मिला।

फ्रीडमैन ने मुद्रा को एक ऐसी परिसंपत्ति के रूप में लिया जो सेवाओं का प्रवाह प्रदान करती है और उनमें अवसर लागत चरों की एक विस्तृत शृंखला देखी जाती है। फ्रीडमैन की स्थिर मुद्रा माँग व्यक्तिगत उपभोक्ताओं की स्थायी आय का फलन होती है।

8.6 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) यदि ऑनलाइन भुगतान डेबिट कार्ड / ई–वॉलेट के माध्यम से किया जा रहा है तो यह हाथ में नकदी रखने के समान ही है। दूसरी ओर, यदि यह क्रेडिट कार्ड द्वारा किया जाता है तो किसी भी महीने के क्रेडिट कार्ड बिल का भुगतान उस महीने के वेतन (जैसे ही वह अगले महीने की शुरुआत में चुकाया जाता है) से किया जा सकता है और शेष वेतन राशि ऋणपत्रों में निवेशित रह सकती है, जिसे मुद्रा में बदलने की आवश्यकता नहीं होगी। अतः, वित्तीय अवसंरचना एवं जोखिम के प्रति दृष्टिकोण के आधार पर नकदी रखने और ऋणपत्रों को मुद्रा में बदलने की आवश्यकता अपना महत्व खो देगी।

2) किसी व्यक्ति के लिए लेन–देन की इष्टतम संख्या है : $n = \sqrt{\frac{r.T.y}{2.b}}$.

   मूल्य स्तर = 1, वास्तविक आय Y/P = रु. 30000 / रु.1 = 30000

   T = 1 माह = 30 दिन

   वास्तविक ब्याज दर 10% = 0.1

   वास्तविक दलाली लागत = मात्रिक दलाली लागत / मूल्य स्तर

   = रु. 5000 / रु. 1 = 5000

   इसे सूत्रों में रखने पर हमें लेन–देन की इष्टतम संख्या प्राप्त होती है

   $= \sqrt{\frac{0.1\times30\times30000}{2\times5000}} = \sqrt{9} = 3.$

3) यदि क्रेडिट कार्ड धोखाधड़ी की लहर है तो लेन–देन हेतु मुद्रा की माँग आरंभ में बढ़ेगी। इसका अर्थ है कि LM वक्र बाईं ओर खिसक जाएगा और ब्याज दर बढ़ जाएगी। यह अंततः लेन–देन हेतु मुद्रा की माँग को कम कर सकता है।

बोध प्रश्न 2

1) यहाँ ऋणपत्र पर ब्याज की प्रतिशतता 6% है।

   बाजार की लाभ दर $r = \frac{Rs.6}{Rs.120} \times 100 = 5\%$

   $\bar{g}$ = औसत प्रत्याशित पूँजीगत लाभ = 15%

   σ_g = किसी भी ऋणपत्र पर लाभ का मानक विचलन = $\pm 4\%$

   [15% और 11% ; तथा 15% और 19% के बीच अंतर]

   समीकरण (8.14) के अनुसार, जोखिम में एक प्रतिशत की वृद्धि के कारण ऋणपत्र से कुल लाभ में प्रतिशत वृद्धि :

$$\frac{d\bar{R}_T}{d\sigma_T} = \frac{r + \bar{g}}{\sigma_g} = \frac{5\% + 15\%}{4\%} = 5\%$$

2) दोनों प्रकार के ऋणपत्रों के लिए, ऋणपत्रों से औसत प्रत्याशित लाभ एक समान, यथा, $\bar{g}$ है। तथापि, एक में दूसरे की तुलना में अधिक जोखिम / अनिश्चितता (σ_g) होती है। तदनुसार, 66.7% संभावना है कि वास्तविक g, जो कि निवेशक को प्राप्त होगा, सीमा $\bar{g} \pm \sigma_g$ में रहेगा। अतः, जहाँ σ_g अधिक है, अनिश्चितता का दायरा बढ़ता है, और इस प्रकार के ऋणपत्र को कम पसंद किया जाएगा।

बोध प्रश्न 3

1) फ्रीडमैन के सिद्धांत में, स्थायी आय में वृद्धि से मुद्रा की माँग में वृद्धि होती है। मुद्रा के सापेक्ष ऋणपत्रों पर लाभ में वृद्धि होती है और मुद्रा के सापेक्ष इक्विटी पर लाभ से मुद्रा की माँग में कमी आती है। मुद्रा पर लाभ के सापेक्ष वस्तु पर लाभ में वृद्धि, जो कि मुद्रा पर लाभ के सापेक्ष मुद्रास्फीति की प्रत्याशित दर है, मुद्रा की माँग में कमी ला देगी।
2) वेग वास्तविक और स्थायी आय के अनुपात से निर्धारित होता है। जब विस्तार में वास्तविक आय बढ़ती है तो स्थायी आय कम तेजी से बढ़ती है। इस प्रकार, मुद्रा की माँग आय की तुलना में कम तेजी से बढ़ती है, और वेग बढ़ता है (और संकुचन के लिए इसका विपरीत भी सत्य है)। फ्रीडमैन के सिद्धांत में ब्याज दर मुद्रा के वेग को प्रभावित नहीं करती है। ऐसा इस तथ्य के कारण है कि मुद्रा व अन्य परिसंपत्तियों पर सापेक्ष लाभ अपेक्षाकृत स्थिर होता है।
3) $V = \frac{Y}{\frac{M^d}{P}} = \frac{Y}{0.20\,Y} = 5$
4) $\Delta y_p = \frac{0.10}{1+0.10}\Delta y_t = 0.09$ आय में अस्थायी परिवर्तन के लिए

   $\Delta y_p = \frac{r}{1+r}.\frac{1+r}{r} = 1$ आय में स्थायी परिवर्तन के लिए।

   विस्तृत विवरण के लिए समीकरण 8.18 देखें।

इकाई 9 राजकोषीय नीति *

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 राजकोषीय नीति के प्रभाव

9.2.1 प्रति–चक्रीय राजकोषीय उपाय

9.2.2 नीति अंतराल

9.2.3 स्वचालित स्थिरक

9.2.4 अर्थशास्त्र में प्रत्याशाएँ

9.2.5 निजी निवेश का ह्रासमान प्रभाव

9.3 बजट : घटक और घाटा

9.3.1 बजट के घटक

9.3.2 बजट घाटा

9.3.3 बजट घाटे का प्रभाव

9.3.4 बजट घाटे का वित्तपोषण

9.4 राजकोषीय संधारणीयता

9.4.1 राजकीय बजट निबाध

9.4.2 ऋण संधारणीयता

9.4.3 उच्च ऋण–व–जीडीपी अनुपात के निहितार्थ

9.5 रिकार्डियन तुल्यता प्रस्थापना

9.6 सारांश

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस स्थिति में होंगे कि –

- राजकोषीय नीति के प्रभावों का वर्णन कर सकें;
- नीतिगत अंतरालों और उनकी भूमिका की पहचान कर सकें;
- स्पष्ट कर सकें कि निजी निवेश में ह्रासमान प्रभाव क्यों हो सकता है;
- सरकारी बजट के घटकों का वर्णन कर सकें;
- बजट घाटे के विभिन्न मापदंडों को परिभाषित कर सकें;
- ऋण–व–सकल घरेलू उत्पाद अनुपात के महत्व को समझ सकें;
- ऋण संधारणीयता की दशा अवकलित कर सकें; तथा
- रिकार्डियन तुल्यता की अवधारणा को स्पष्ट कर सकें।

*प्रो. कौस्तुभ बारिक, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय तथा डॉ. कृष्णकुमार, श्री वेंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

9.1 प्रस्तावना

देश के लिए भावी नीतियाँ बनाते समय नीति–निर्माता हमेशा कोई न कोई लक्ष्य लेकर चलते हैं। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में ये लक्ष्य निम्नवत् हो सकते हैं –

1. आर्थिक स्थिरता,
2. आर्थिक संवृद्धि में तेजी,
3. रोजगार में वृद्धि,
4. गरीबी में कमी, और
5. लोगों के लिए जीवन की बेहतर गुणवत्ता।

इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए नीति–निर्माताओं के पास दो प्रमुख उपकरण होते हैं –

1. राजकोषीय नीति, और
2. मौद्रिक नीति।

राजकोषीय नीति किसी अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन एवं रोजगार जैसे समष्टि–अर्थशास्त्रीय चरों को प्रभावित करने के लिए सार्वजनिक व्यय (अर्थात् सरकारी खर्च) एवं कराधान के प्रयोग को इंगित करती है। दूसरी ओर, मौद्रिक नीति समष्टि–अर्थशास्त्रीय चरों को प्रभावित करने के लिए मुख्य रूप से ब्याज दर के प्रयोग को इंगित करती है।

इस पाठ्यक्रम में हम इन दोनों ही नीतियों के विषय में चर्चा करेंगे – प्रस्तुत इकाई में राजकोषीय नीति और इकाई 10 में मौद्रिक नीति।

विश्वव्यापी महामंदी (1929–34) के बाद कीन्स ने विहित किया कि सरकार को अर्थव्यवस्था में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। तदंतर, लगभग एक दशक पहले, वर्ष 2008–09 के वैश्विक वित्तीय संकट के दौरान अधिकांश देशों ने अर्थव्यवस्था की विकास दर में तेजी लाने के लिए राजकोषीय प्रोत्साहन पैकेजों का सहारा लिया था। इसके अलावा, वर्ष 2020–21 की कोविड–19 महामारी के दौरान राजकोषीय नीति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत में, उदाहरण के लिए, जब महामारी के कारण अधिकांश राज्यों में लॉकडाउन के अनेक चरण देखे गए, केंद्र और राज्यों की सरकारों ने लोगों के जीवन और आजीविका की रक्षा के लिए अनेक वित्तीय उपाय किए।

सरकारों ने हमेशा सार्वजनिक व्यय को उच्च स्तर पर बनाए रखने का प्रयास किया है। उनके इस प्रयास से शासकीय राजस्व में राजकीय व्यय की कमी देखी गई है। इस प्रकार, अधिकांश मामलों में सरकार ने घाटे का बजट ही दर्शाया है। इस तरह के घाटे को आमतौर पर ऋण लेकर वित्तपोषित किया जाता है, जिससे सार्वजनिक ऋण बढ़ता है। इस इकाई में हम सार्वजनिक ऋण की विद्यमानता में सार्वजनिक व्यय की संधारणीयता के विषय में चर्चा करेंगे।

9.2 राजकोषीय नीति के प्रभाव

सरकार की भूमिका, विशेष रूप से उसका राजकोषीय आयाम, में समय के साथ बदलाव आया है। क्लासिकल अर्थशास्त्री 'लाईसेज फेयर' के दर्शन में विश्वास करते थे, जो कि एक फ्रांसीसी पदबंध है जिसका अर्थ है 'अकेले छोड़ दो' अथवा 'आपको करने दिया जाए'। इस दृष्टिकोण के अनुसार, व्यावसायिक मामलों में सरकार की ओर से न्यूनतम हस्तक्षेप होना चाहिए। वास्तव में, एडम स्मिथ ने सुझाव दिया कि सरकार को स्वयं को तीन मुख्य कर्तव्यों तक ही सीमित रखना चाहिए, यथा –

1. राष्ट्र की रक्षा,
2. न्याय प्रबंधन (कानून और व्यवस्था), और
3. कुछ सार्वजनिक कार्यों का स्थापन एवं अनुरक्षण (अवसंरचना, शिक्षा, आदि)।

केन्जियन अर्थशास्त्र, दूसरी ओर, सरकार की भूमिका पर एक पूरी तरह से अलग ही दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। कीन्स का मानना था कि यदि अर्थव्यवस्था बुरे समय से गुजर रही हो तो यह सरकार की भूमिका है कि वह हस्तक्षेप करे और अर्थव्यवस्था को संतुलन कायम करने में मदद करे। इस प्रकार, सरकार की भूमिका कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने और रक्षा करने से कहीं अधिक है। अतः, सरकार को विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में प्रवेश करना चाहिए। वास्तव में, यह दृष्टिकोण नीति–निर्माताओं के अनुकूल था, और इसी वजह से सरकार का आकार बढ़ता रहा।

सरकार वस्तुओं एवं सेवाओं की माँग का एक महत्वपूर्ण स्रोत होती है। राजकीय व्यय में भिन्नता के माध्यम से सरकार अर्थव्यवस्था की कुल माँग में परिवर्तन ला सकती है। कुल माँग में इस तरह के बदलाव से कुल उत्पादन में भी बदलाव आता है।

9.2.1 प्रति–चक्रीय राजकोषीय उपाय

किसी भी अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्रों के कारण आर्थिक गतिविधियों में उतार–चढ़ाव देखा जा सकता है (देखें इकाई 4)। व्यापार मंदी के दौरान आर्थिक गतिविधियों में गिरावट आती है, जबकि विस्तारकारी चरण के दौरान अर्थव्यवस्था मुद्रास्फीति से ग्रस्त हो सकती है। राजकीय व्यय व्यापार चक्रों का सामना करने का एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो सकता है।

कीन्स ने 'पंप–प्राइमिंग' व्यय के विषय में चर्चा की, यथा, मंदी के दौरान और उसके बाद सार्वजनिक व्यय को बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा उठाया गया एक कदम – सरकार द्वारा देश में नकदी बढ़ाना। इस चर्चा के अनुसार, अवसंरचना पर सार्वजनिक व्यय (बेहतर सड़कों, रेलवे नेटवर्क, निर्बाध बिजली आपूर्ति, आदि) भी निजी निवेश के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है।

राजकोषीय नीति के दो मुख्य साधन प्रचलन में हैं, यथा – सरकारी व्यय और कराधान। मंदी के दौरान, सरकार को अपने खर्च में वृद्धि करनी चाहिए ताकि कुल माँग में गिरावट की भरपाई हो सके। दूसरी ओर, अर्थव्यवस्था में उच्च मुद्रास्फीति होने पर सरकार को सार्वजनिक व्यय में कमी करनी चाहिए। इसी प्रकार, मंदी के दौरान कर दरों में कमी की जानी चाहिए और उत्कर्ष की अवधि के दौरान उनमें वृद्धि की जानी चाहिए।

हम उत्पादन, कीमतों और ब्याज दर पर राजकीय व्यय के प्रभाव के विषय में पहले ही चर्चा कर चुके हैं। इन तीन चरों पर अपने प्रभाव के अलावा, राजकोषीय नीति दीर्घावधि में दो और चरों को प्रभावित करती है, यथा –

1. धन का पुनर्वितरण, और
2. उत्पादन क्षमता में वृद्धि।

धन का पुनर्वितरण निम्नलिखित तीन माध्यमों से क्रियान्वित किया जा सकता है –

1. किसी भी अर्थव्यवस्था में कराधान प्रगतिशील होना चाहिए। इसका अर्थ है कि उच्च आय–वर्ग के लोगों के लिए कर की दर अधिक हो। जैसा कि आप जानते हैं, उच्च आय–वर्ग के लोग उच्च दर पर प्रत्यक्ष कर (जैसे व्यक्तिगत आयकर) का भुगतान करते हैं।
2. गरीब लोगों को अपनी आय की अनुपूर्ति हेतु विभिन्न प्रकार की आर्थिक सहायता (जैसे वृद्धावस्था पेंशन, रियायती राशन, आदि) दी जाती है।
3. सरकार कुछ क्षेत्रों को अधिमान्य अनुकूलन प्रदान करती है, जो कि लोगों की सापेक्ष आय को प्रभावित करता है (उदाहरण के लिए, प्राथमिकता वाले क्षेत्रों के लिए मुफ्त बिजली अथवा रियायती आदान)। इस तरह के उपायों से दीर्घावधि में आय एवं धन का पुनर्वितरण होता है।

सरकार कुछ ऐसी वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करती है जो आवश्यक नहीं कि 'सार्वजनिक वस्तुएँ' हों।

सरकार अस्पतालों, शैक्षणिक संस्थानों, बैंकों, जलापूर्ति आदि का परिचालन करती है। वह सड़कों, रेल की पटरियों, बिजली संयंत्रों व अनेक अवसंरचना परियोजनाओं का भी स्थापन करती है। इसके अलावा, सरकार स्टील, कोयला, भारी मशीनरी आदि अनेक वस्तुओं का भी उत्पादन करती है। दीर्घावधि में ये सभी उत्पादन गतिविधियाँ अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को बढ़ाती हैं।

9.2.2 नीति अंतराल

हमने ऊपर उल्लेख किया कि सरकार व्यापार चक्रों के प्रभाव को कम करने के लिए अपने खर्च में बदलाव कर सकती है। इस प्रकार, केन्जियन अर्थशास्त्र सरकार को बहुत अधिक विवेकाधीन शक्ति सम्पन्न होने का सुझाव देता है। इन व्यापार चक्रों का मुकाबला करने के लिए सार्वजनिक निवेश में भिन्नता का प्रभाव, बहरहाल, कुछ नीति अंतरालों के कारण संभवतः प्रभावी न हो।

जब किसी अर्थव्यवस्था में कोई आर्थिक समस्या आती है तो उसे पहचानने में कुछ समय लगता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति बढ़ने वाली है। नीति–निर्माता संभवतः समस्या को तुरंत पहचानने की स्थिति में न हों। वे मूल्य वृद्धि को अस्थायी (मौसमी, आपूर्ति आघात, आदि) मान सकते हैं और यह भी मान सकते हैं कि बाजार शक्तियाँ उससे निपटने में सक्षम होंगी। इसके अलावा, नीति–निर्माताओं को कोई भी कार्रवाई करने से पहले यथोचित मंजूरी लेनी होती है। उदाहरण के लिए, कर की दरें आमतौर पर वार्षिक बजट प्रस्तुति के दौरान बदली जाती हैं। ऐसे में नीति–निर्माताओं ने यदि समस्या को पहचान भी लिया हो तो उन्हें उचित नीतिगत उपाय के कार्यान्वयन की प्रतीक्षा करनी होगी! अंत में जब सरकार कार्रवाई करेगी तो इसका असर कुछ समय बाद ही दिखेगा। उदाहरण के लिए, यदि सरकार मंदी का मुकाबला करने के लिए कुछ राहत पैकेज लेकर आती है तो अर्थव्यवस्था एक अंतराल के बाद प्रतिक्रिया देगी। जब उच्च राजकीय व्यय का प्रभाव दिखाई दे रहा हो तो अर्थव्यवस्था उच्च मुद्रास्फीति की ओर बढ़ सकती है। इस प्रकार, सरकार कुछ ऐसी कार्रवाई कर सकती है जिसकी आवश्यकता नहीं हो अथवा जो सरकार के उद्देश्य को ही नकार रही हो।

हम आम तौर पर चार प्रकार के नीति अंतराल देखते हैं, यथा –

1. सूचना अंतराल,
2. निर्णय अंतराल,
3. कार्यान्वयन अंतराल, और
4. प्रभाव अंतराल।

सूचना अंतराल : केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय समय–समय पर विभिन्न आर्थिक चरों पर आँकड़े एकत्र करता रहता है। आपने देखा होगा कि हमारे पास अनेक चरों पर आँकड़े नियमित रूप से नहीं होते। कुछ चरों (उदाहरण के लिए, कीमतों) पर हमारे पास आँकड़े साप्ताहिक आधार पर होते हैं, जबकि अन्य के लिए त्रैमासिक आधार पर। रोजगार, निवेश, खपत आदि पर आँकड़े इतनी जल्दी–जल्दी उपलब्ध नहीं होते। आप देखेंगे कि सर्वेक्षण की योजना बनाने, आँकड़े एकत्र करने और सांख्यिकीय विश्लेषण करने में काफी लंबा समय लगता है। इस प्रकार, किसी भी अर्थव्यवस्था में एक सूचना अंतराल देखा जाता है।

निर्णय अंतराल : अर्थव्यवस्था की स्थिति ज्ञात होने पर भी सरकार को निर्णय लेने के लिए कुछ समय इंतजार करना पड़ता है। नीति–निर्माताओं को कोई भी कार्रवाई करने से पूर्व उचित अनुमोदन प्राप्त करना होता है। उदाहरण के लिए, कर की दरें आमतौर पर वार्षिक बजट प्रस्तुति के दौरान बदली जाती हैं। इस प्रकार, यहाँ एक निर्णय अंतराल देखने में आता है।

कार्यान्वयन अंतराल : सरकारी नीतियों के कार्यान्वयन में समय लगता है। किसी भी निवेश परियोजना को लागू करने के लिए, उदाहरण के लिए, बहुत समय की आवश्यकता होती है।

मशीनरी के लिए ऑर्डर देने, कर्मचारियों की भर्ती करने और कच्चा माल खरीदने की प्रक्रिया में काफी समय लगता है। अतएव, जब नीति–निर्माताओं ने समस्या को पहचान लिया हो और कुछ परियोजनाओं को पूरा करने का फैसला कर लिया हो तब भी उन्हें परियोजनाओं के कार्यान्वयन की प्रतीक्षा करनी होगी। यही क्रियान्वयन अंतराल की ओर अग्रसर करता है।

प्रभाव अंतराल : नीतिगत निर्णयों के प्रभाव को महसूस करने में भी कुछ समय लगता है। कुछ सरकारी परियोजनाओं के प्रभाव तत्काल दिखाई दे जाते हैं, जबकि अन्य मामलों में इसमें कुछ अधिक समय लगता है। किसानों अथवा गरीब लोगों के बचत खाते में नकद हस्तांतरण का तत्काल प्रभाव देखा जा सकता है, परंतु कुछ उद्योगों की स्थापना होने से किसी क्षेत्र में गरीबी घटने में समय लगेगा।

इस प्रकार, सरकार की नीति के प्रभाव का हर मामले के आधार पर अलग–अलग मूल्यांकन करने की आवश्यकता होती है। बहरहाल, अधिकांश मामलों में वांछित प्रभावों को महसूस करने में समय अंतराल देखा जाता है।

9.2.3 स्वचालित स्थिरक

किसी भी अर्थव्यवस्था में करों को स्वचालित स्थिरक अर्थात् स्थिरता प्राप्त करने का साधन माना जाता है। जैसा कि आप जानते हैं, सरकार अनेक कारकों के कारण कई बार कर दरों में बदलाव करने की स्थिति में नहीं होती। इन किरणों में लोगों का प्रतिरोध हो सकता है। दूसरे, नीति–निर्माताओं को संसद द्वारा उसे मंजूरी मिलने तक इंतजार करना पड़ता है या फिर आगामी चुनाव आदि को ध्यान में रखते हुए सरकार कर दरों में वृद्धि करना ही नहीं चाहती। ऐसे मामलों में भी कर राजस्व का स्थायीकारी प्रभाव होगा। आइए, देखें कि यह कैसे होगा।

चलिए, मान लेते हैं कि अर्थव्यवस्था तेजी से आर्थिक संवृद्धि का अनुभव कर रही है। इसका तात्पर्य है कि पहले से अधिक श्रमिक कार्यरत हैं, फर्मों का कारोबार बढ़ रहा है और लोगों की आय बढ़ रही है। इससे व्यक्तियों और फर्मों द्वारा उच्च करों का भुगतान होने लगता है, भले ही सरकार कर दरों में वृद्धि न करे। परिणामतः, सरकार के कर राजस्व में वृद्धि होती है।

चूँकि राजकीय व्यय सकल घरेलू उत्पाद के आकार पर निर्भर नहीं करता है, सरकार आवश्यकता पड़ने पर अधिशेष बजट पेश करने का फैसला कर सकती है। दूसरी ओर, व्यापार मंदी के समय में रोजगार के स्तर, लोगों की आय और फर्मों के कारोबार के स्तर में गिरावट आती है। ऐसे समय के दौरान लोगों और फर्मों द्वारा भुगतान किए जाने वाले करों में गिरावट आती है, भले ही कर की दरें अपरिवर्तित रहें। इस प्रकार, आयकर जैसे प्रत्यक्ष कर स्वचालित स्थिरक के रूप में काम करते हैं;वे प्रायः व्यापार चक्रों के प्रभाव को कम करते हैं।

9.2.4 अर्थशास्त्र में प्रत्याशाएँ

कीन्स ने अर्थशास्त्र में प्रत्याशाओं के महत्व को पहचाना। हालाँकि, उन्होंने अपने विश्लेषण में स्पष्ट रूप से प्रत्याशाओं का परिचय नहीं दिया। उपर्युक्त के दो कारण रहे, यथा –

1. प्रत्याशाएँ अस्थिर होती हैं और उन्हें विश्लेषण के तहत लाना मुश्किल होता है।
2. कीन्स ने अपने विश्लेषण को अल्पावधि पर केंद्रित किया – अल्पावधि में प्रत्याशाओं में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हो सकता।

जैसा कि आपको पाठ्यक्रम BECC 106: माध्यमिक समष्टि अर्थशास्त्र–I से ज्ञात है, प्रत्याशाओं का निर्माण दो महत्वपूर्ण सिद्धांतों के अनुसार हो सकता है, यथा –अनुकूली प्रत्याशाएँ और तर्कसंगत प्रत्याशाएँ।

उक्त पाठ्यक्रम BECC106 की इकाई 3 में हमने राजकोषीय नीति के प्रभावों पर चर्चा की थी। तालिका 3.2 में हमने राजकोषीय विस्तार अर्थात् राजकीय व्यय में वृद्धि और कर दरों में कमी) के

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

अल्पावधिक एवं दीर्घावधिक प्रभाव को प्रस्तुत किया था। विस्तारकारी राजकोषीय नीति के परिणामस्वरूप अल्पावधि में निम्नलिखित प्रभाव देखे जाते हैं –

1. उत्पादन में वृद्धि होती है;
2. मूल्य स्तर में वृद्धि होती है;और
3. ब्याज दर में वृद्धि होती है।

दीर्घावधि में कुल उत्पादन वापस अपने स्वाभाविक स्तर (अर्थात् संभावित उत्पादन) पर वापस आ जाता है, जबकि मूल्य स्तर एवं ब्याज दर उच्च स्तर पर ही बने रहते हैं।

हम यह मानकर चले थे कि प्रत्याशाओं का विन्यास अनुकूली प्रत्याशाओं के अनुसार होता है। तदनुसार, अल्पावधि में प्रत्याशित मूल्य और वास्तविक मूल्य के बीच विसंगति देखी जाती है। यदि हम तर्कसंगत प्रत्याशाओं को लेकर चलें तो कुल उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होगी। तर्कसंगत प्रत्याशाओं के तहत अल्पावधि में भी प्रत्याशित मूल्य स्तर और वास्तविक मूल्य स्तर के बीच कोई अंतर नहीं होता।

9.2.5 निजी निवेश का ह्रासमान प्रभाव

कीन्स ने राजकोषीय नीति उपायों, मुख्य रूप से सार्वजनिक कार्यों पर सरकारी खर्च, का समर्थन किया। उस समय की आर्थिक नीति पर अधिकांश बहस बेरोजगारी के निदान स्वरूप सार्वजनिक कार्यों पर सरकारी खर्च की वांछनीयता पर केंद्रित होता थी। कीन्स के विचार के विरुद्ध तर्क देने वालों ने मुख्य रूप से सरकारी खर्च के वित्तपोषण की ओर ध्यान आकर्षित किया। अनेक अर्थशास्त्री एवं पर्यवेक्षक बजट घाटे में निरंतर वृद्धि से व्यथित हो गए और उन्होंने इसे हानिकारक ही माना।

मान लीजिए कि कर में कटौती हुई है। इससे सरकार का राजस्व कम होगा। सार्वजनिक व्यय, फिर भी, अपरिवर्तित रहने की संभावना है। बजट घाटे को सरकारी ऋणादान द्वारा वित्तपोषित करने की आवश्यकता है। केन्जियन दृष्टिकोण के अनुसार, कर में कटौती से उपभोक्ताओं की खर्च करने योग्य आय में वृद्धि होगी। उच्चतर प्रयोज्य आय से वस्तुओं एवं सेवाओं की माँग बढ़ेगी, जिससे उपभोग व्यय में वृद्धि होगी। उपभोग व्यय में वृद्धि से कुल माँग में वृद्धि होगी। कुल माँग में वृद्धि से उत्पादन एवं रोजगार में वृद्धि होगी।

आइए, अब हम नियोक्लासिकल दृष्टिकोण को समझते हैं। कर में कटौती के कारण परिवारों की प्रयोज्य आय में वृद्धि देखी जा रही है। इस आय का एक हिस्सा उपभोग (सीमांत उपभोग प्रवृत्ति के मान के आधार पर) पर खर्च किया जाएगा, जबकि शेष हिस्सा बचाया जाएगा। उच्चतर प्रयोज्य आय के परिणामस्वरूप परिवारों की कुल बचत (निजी बचत) में वृद्धि होगी। तथापि, निजी बचत में इस प्रकार की वृद्धि सार्वजनिक बचत में गिरावट से कम ही रहेगी। अतएव, अर्थव्यवस्था की वांछित कुल बचत में कमी देखी जाएगी। चूँकि अब कुल बचत कुल निवेश से कम हो जाती है, वास्तविक ब्याज दर में वृद्धि होगी। यह उच्चतर ब्याज दर घरेलू निजी निवेश का ह्रासमान प्रभाव दर्शाएगी। निजी निवेश के इस ह्रासमान प्रभाव के परिणामस्वरूप दीर्घावधि में उत्पादनशील पूँजी का भंडार घटता जाएगा।

बोध प्रश्न 1

1. स्पष्ट कीजिए कि राजकीय व्यय प्रति–चक्रीय क्यों होना चाहिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. नीति अंतराल क्या हैं और वे राजकोषीय नीति को कैसे प्रभावित करते हैं?

....

....

....

....

3. समझाइए कि क्यों किसी अर्थव्यवस्था में आयकर को एक स्वचालित स्थिरक के रूप में देखा जा सकता है।

....

....

....

....

9.3 बजट : घटक और घाटा

आय–व्ययक अर्थात् बजट किसी भी सरकार का वार्षिक वित्तीय विवरण होता है। यह हमें सरकार के राजस्व एवं व्यय का विवरण देता है। जैसा कि आप जानते हैं, भारत के मामले में, केंद्र सरकार का हर वर्ष बजट संसद के समक्ष उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। इसी प्रकार, राज्य सरकारों का बजट संबंधित राज्य विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। जब हम सार्वजनिक क्षेत्र की बात करते हैं तो इसमें केंद्र, राज्य और स्थानीय तीनों सरकारें शामिल होती हैं।

9.3.1 बजट के घटक

केन्द्रीय बजट वित्त मंत्री द्वारा अर्थशास्त्रियों, उद्यमियों, राज्य सरकारों आदि के परामर्श से तैयार किया जाता है। देश के बजट में दो खाते होते हैं –

1. राजस्व बजट, और
2. पूँजी बजट।

राजस्व बजट में सरकार की राजस्व प्राप्तियाँ अथवा वर्तमान प्राप्तियाँ और उन प्राप्तियों से किए जा सकने वाले व्यय शामिल होते हैं। दूसरी ओर, पूँजी बजट में पूँजीगत प्राप्तियाँ और पूँजीगत व्यय शामिल होते हैं। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि राजस्व बजट में ऐसी वस्तुएँ होती हैं जो अपनी प्रकृति में आवर्ती होती हैं और सरकार के लिए कोई परिसंपत्ति अथवा देयधन सृजित नहीं करतीं। इसके अलावा, सरकार की राजस्व प्राप्तियाँ ऐसी प्राप्तियाँ होती हैं जिन्हें वापस लौटाने की आवश्यकता नहीं होती। दूसरी ओर, पूँजी बजट में लेन–देन सरकार के लिए परिसंपत्ति और देनदारियों का सृजन करता हैं।

राजस्व प्राप्तियों के दो स्रोत होते हैं। यथा –

1. कर राजस्व, और
2. गैर–कर राजस्व।

विभिन्न प्रकार के कर सरकार के राजस्व का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत होते हैं (कुल राजस्व एवं पूँजीगत प्राप्तियों का लगभग 53 प्रतिशत)। ये कर दो प्रकार के होते हैं, यथा – प्रत्यक्ष कर और अप्रत्यक्ष कर। प्रत्यक्ष कर व्यक्तियों की आय (जैसे व्यक्तिगत आयकर) और निगमों की निवल आय अथवा लाभ (जैसे कॉर्पोरेट आयकर) पर लगाया जाता है। दूसरी ओर, अप्रत्यक्ष कर वस्तुओं एवं

सेवाओं की खरीद और बिक्री (जैसे वस्तु एवं सेवा कर (GST)) पर लगाया जाता है। करों के अलावा, राजस्व प्राप्तियों के अन्य स्रोत जुर्माना और शुल्क हैं।

शुल्क और कर के बीच एक सूक्ष्म अंतर है। सरकार कुछ सेवाओं को प्रदान करने के लिए शुल्क एकत्र करती है। दूसरी ओर, कर व्यक्तियों और फर्मों द्वारा सरकार को किया जाने वाला अनिवार्य भुगतान होता है, जिसके लिए कोई प्रतिफल नहीं होता (अर्थात् सरकार करदाता को कोई सेवा अथवा लाभ प्रदान नहीं करती)। पूँजीगत प्राप्तियों का प्रमुख स्रोत सरकार द्वारा ऋणादान (कुल प्राप्तियों का लगभग 36 प्रतिशत) होता है।

व्यय पक्ष पर, सरकार द्वारा तीन प्रकार के व्यय किए जाते हैं, यथा –

1. वस्तुओं एवं सेवाओं की सरकारी खरीद,
2. हस्तांतरण भुगतान, और
3. सब्सिडी।

सरकार पूँजीगत वस्तुओं सहित वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करती है। इस तरह के उत्पादन के लिए उसे श्रमिक नियोजित करने पड़ते हैं, पूँजी का प्रबंध करना होता है और मध्यवर्ती आदानों की खरीद करनी होती है।

सरकार के कुछ खर्चे आवर्ती प्रकृति के होते हैं (उदाहरण के लिए, मजदूरी और वेतन), जबकि अन्य एक बार के होते हैं (उदाहरण के लिए, लड़ाकू विमान)। स्थानांतरण भुगतान व्यक्तियों को एकतरफा भुगतान है, जिसके लिए कोई प्रतिफल नहीं होता (उदाहरण के लिए, वृद्धावस्था पेंशन), इस अर्थ में कि प्राप्तकर्ता सरकार को बदले में कुछ भी भुगतान नहीं करता है।

ध्यान देने की बात है कि हस्तांतरण भुगतान करों के विपरीत होते हैं – करों के मामले में व्यक्तियों एवं फर्मों से सरकार को धन का प्रवाह होता है, जबकि 'हस्तांतरण भुगतान' के मामले में सरकार से व्यक्ति को धन का प्रवाह होता है। 'सब्सिडी' अर्थात् आर्थिक सहायता बाजार मूल्य से कम कीमत पर कुछ वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति को कहा जाता है। उदाहरण के लिए, सरकार गरीब परिवारों को रियायती मूल्य पर खाद्यान्न उपलब्ध कराती है। सब्सिडी का एक अन्य उदाहरण अपनी उत्पादन लागत की तुलना में बहुत कम कीमत पर घरों में जल की आपूर्ति हो सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि सब्सिडी में राजकोष की कुछ लागतें शामिल होती हैं।

बजट में सरकारी व्यय को दो श्रेणियों में रखा जाता है। यथा – राजस्व व्यय और पूँजीगत व्यय। राजस्व बजट से व्यय की प्रमुख मदें हैं – मजदूरी एवं वेतन, रक्षा व्यय, ब्याज भुगतान के कारण स्थानान्तरण, पेंशन और बेरोजगारी भत्ते। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, राजस्व व्यय से परिसंपत्ति का निर्माण नहीं होता है। ऐसा व्यय जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था के सड़क, भवन, कारखाने, बाँध आदि पूँजी भंडार में वृद्धि होती है, *पूँजीगत व्यय* के रूप में जाना जाता है।

9.3.2 बजट घाटा

हमने ऊपर उल्लेख किया है कि राजस्व प्राप्तियों को सरकार द्वारा वापस नहीं किया जाता है, जबकि पूँजीगत प्राप्तियों को वापस लौटाना पड़ता है। इस प्रकार, सरल शब्दों में, राजस्व प्राप्तियाँ सरकार की आय हैं, जबकि पूँजीगत प्राप्तियाँ सरकार के लिए ऋण हैं। बजट के संदर्भ में, यदि कुल व्यय (राजस्व और पूँजी दोनों) सरकार की राजस्व प्राप्तियों के बराबर हो तो बजट को *संतुलित* कहा जाता है। यदि कुल व्यय राजस्व प्राप्तियों से कम हो तो इसे *अधिशेष बजट* कहा जाता है। दूसरी ओर, यदि कुल व्यय राजस्व प्राप्तियों से अधिक हो तो इसे *घाटे का बजट* कहा जाता है।

आपने बजट प्रस्तुति के बाद की बातचीत के दौरान घाटे की तीन अवधारणाओं के बारे में अवश्य सुना होगा अर्थात् राजकोषीय घाटा, राजस्व घाटा और प्राथमिक घाटा। आगे बढ़ने से पहले, आइए, हम इन अवधारणाओं को परिभाषित करें।

राजस्व घाटा : यह सरकार के राजस्व व्यय और राजस्व प्राप्तियों के बीच के अंतर को दर्शाता है। यह इस ओर ध्यान आकर्षित करता है कि सरकार अपनी राजस्व प्राप्तियों से अपने राजस्व व्यय को किस हद तक पूरा नहीं कर सकती है। यहाँ आप देखेंगे कि –

राजस्व घाटा = राजस्व प्राप्तियाँ – राजस्व व्यय

राजकोषीय घाटा : यह कुल व्यय (राजस्व और पूँजी दोनों) और राजस्व प्राप्तियों के बीच का अंतर होता है। यहाँ आप देखेंगे कि –

राजकोषीय घाटा = राजस्व प्राप्तियाँ – कुल व्यय (राजस्व+पूँजी)

राजकोषीय घाटा सरकार की ऋण आवश्यकताओं का आकलन दर्शाता है।

प्राथमिक घाटा : ब्याज भुगतान (ऋण की अदायगी) राजस्व व्यय (राजस्व प्राप्तियों का लगभग 25 प्रतिशत) का एक बड़ा हिस्सा होता है। इस संदर्भ में आपको याद रखना चाहिए कि ब्याज भुगतान पिछली अवधि में ऋणादान पर होगा। इस प्रकार, किसी भी अर्थव्यवस्था के राजकोषीय स्वास्थ्य का आकलन करने के लिए हम प्राथमिक घाटे को ही देखते हैं। हम राजकोषीय घाटे से ब्याज भुगतान घटाकर प्राथमिक घाटा प्राप्त करते हैं।

प्राथमिक घाटा = राजकोषीय घाटा – ब्याज भुगतान

= राजस्व प्राप्तियाँ – कुल व्यय – ब्याज भुगतान

राजस्व व्यय का एक हिस्सा ब्याज के भुगतान पर खर्च किया जाता है। यह वास्तव में देश पर कर्ज के बोझ को कम करता है। घाटा एवं अधिशेष के साथ–साथ कर एवं व्यय भी 'प्रवाह चर' कहलाते हैं। इन चरों को किसी समयावधि विशेष में परिभाषित किया जाता है। सार्वजनिक ऋण एक प्रकार का 'पूँजी चर' होता है और इसे किसी समय–बिंदु विशेष पर परिभाषित किया जाता है।

9.3.3 बजट घाटे का प्रभाव

राजकोषीय घाटा सरकार द्वारा ऋणादान की ओर ले जाता है। इस तरह के कर्ज वर्ष दर वर्ष सार्वजनिक ऋण के रूप में जमा होते रहते हैं। सरकार को विद्यमान सार्वजनिक ऋण पर नियमित आधार पर ब्याज का भुगतान करना पड़ता है। यदि सार्वजनिक ऋण का स्तर ऊँचा होता है तो ब्याज भुगतान भी अधिक ही होता है। यदि राजस्व बजट अधिशेष होता है तो सरकार अपने विद्यमान ऋण का कुछ हिस्सा चुका सकती है (ताकि सार्वजनिक ऋण के स्तर में कुछ कमी हो)। दूसरी ओर, यदि राजस्व बजट घाटा होता है तो आगे के ऋणादान के कारण सार्वजनिक ऋण में वृद्धि होती है। सार्वजनिक ऋण की चुकौती राजस्व प्राप्तियों का एक बड़ा हिस्सा ले लेती है। इस प्रकार, सार्वजनिक धन के लाभकर उपयोग के लिए बहुत कम बचता है।

अब आप समझ सकते हैं कि राजनीतिक नेताओं, शोधकर्ताओं और आम जनता – हर तरफ से राजकोषीय घाटे को कम करने के लिए कोलाहल क्यों सुनाई देता है। राजकोषीय घाटा प्रायः जीडीपी के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है।

9.3.4 बजट घाटे का वित्तपोषण

बजट घाटे को वित्तपोषित करने के तीन स्रोत देखे जाते हैं, जिनका उल्लेख नीचे किया गया है।

1. **घरेलू बाजार से ऋणादान** : सरकार धन जुटाने के लिए निश्चित परिपक्वता अवधि के ऋणपत्र जारी करती है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, बाजार से उधार लेने से सार्वजनिक ऋण का संचय होता है। सरकार घरेलू बाजार से अथवा बाकी दुनिया से उधार ले सकती है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

घरेलू बाजार से उधार लेने से मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि नहीं होती है। हालाँकि, राजस्व प्राप्तियों से ब्याज और मूल राशि का भुगतान प्रायः देश के लिए एक समस्या बन जाता है। इस संदर्भ में 'ऋण–व–जीडीपी अनुपात' की अवधारणा महत्वपूर्ण है। यदि ऋण–व–सकल घरेलू उत्पाद का अनुपात अधिक होता है तो राजस्व प्राप्तियों का एक बड़ा हिस्सा सार्वजनिक ऋण की अदायगी की ओर मोड़ना पड़ता है। वर्ष 2019–20 में भारत के मामले में, उदाहरण के लिए, सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में सार्वजनिक ऋण (राज्य और केंद्र संयुक्त) लगभग 76 प्रतिशत रहा।

2. **बाकी दुनिया से ऋणादान** : बाह्य ऋणविभिन्नरूपों में हो सकता है,जैसे –

1. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से आसान ऋण,
2. वाणिज्यिक बाजारों से उधार, अथवा
3. अंतर्राष्ट्रीय प्रवासियों (उदाहरण के लिए, अप्रवासी भारतीय) द्वारा जमा।

आप देखेंगे कि बाह्य ऋण से विदेशी ऋण का संचय होता है। ऐसे बाह्य ऋण की ऋण चुकौती (अर्थात् ब्याज एवं मूलधन का भुगतान) चालू खाता प्राप्तियों से की जानी चाहिए। इस संदर्भ में 'ऋण–व्यय अनुपात' की अवधारणा बहुत महत्वपूर्ण है। ऋण–व्यय अनुपात को देश की चालू खाता प्राप्तियों के लिए ऋण–व्यय के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जाता है। वर्ष 2019–20 में भारत का ऋण–व्यय अनुपात लगभग 6.5 प्रतिशत रहा।

3. **घाटे का मुद्रीकरण** : जब सरकार बाजार से उधार लेती है तो लोगों के हाथ में मुद्रा की आपूर्ति में कमी आती है। घाटे के मुद्रीकरण के मामले में, अर्थव्यवस्था में मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि होती है। यह दो चरणों वाली प्रक्रिया है, जिसमें सरकार अपने खर्च की भरपाई करने के लिए सरकारी ऋणपत्र जारी करती है और केंद्रीय बैंक इन ऋणपत्रों को खरीदता है। केंद्रीय बैंक परिपक्व होने तक ये ऋणपत्र अपने पास ही रखता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में उच्च–शक्ति मुद्रा की बढ़ी हुई आपूर्ति देखी जाती है। इस प्रकार घाटे का मुद्रीकरण मुद्रास्फीतिकारी हो सकता है। उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन अधिनियम (FRBM), 2003 यह विहित करता है कि भारतीय रिजर्व बैंक को, असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, सरकारी ऋणपत्र कभी नहीं खरीदने चाहिए।

9.4 राजकोषीय स्थिरता

किसी भी सरकार को अपने सार्वजनिक वित्त (कराधान, व्यय एवं ऋण) को इस तरह से बनाए रखने में सक्षम होना चाहिए कि राजकोषीय नीति दीर्घावधि में विश्वसनीय और टिकाऊ साबित हो। सरकार को अपने भावी राजस्व एवं व्यय का सही–सही आकलन कर सकने की स्थिति में होना चाहिए। उसे बजट में प्रतिबद्ध परियोजनाओं को पूरा करना चाहिए। साथ ही, उसे अपने कर्ज को चुकाने से चूकना नहीं चाहिए।

सरकार के समक्ष हमेशा एक बजट निबाध रहता है। जबकि राजस्व प्राप्तियों को बढ़ाने का दायरा सीमित होता है, जनता की ओर से सार्वजनिक व्यय में वृद्धि की माँग की जाती है। यह सरकार को एक विकट स्थिति में डाल देता है और सरकार आमतौर पर घाटे के बजट को लेकर चलती है। यह बजट घाटा आमतौर पर सार्वजनिक ऋण के माध्यम से वित्तपोषित होता है। सरकार हर वर्ष कर्ज का कुछ हिस्सा चुकाती है, परंतु वर्ष दर वर्ष घाटे का बजट सार्वजनिक ऋण में वृद्धि की ओर ले जाता है।

घाटे का बजट सरकार के लिए एक सरल विकल्प प्रतीत होता है। सरकार कर बढ़ाकर अपने मतदाताओं को अलग–थलग नहीं करना चाहती है। सन 1980 और 1990 के दशक के दौरान कई वर्षों तक भारत सरकार का राजकोषीय घाटा बहुत अधिक रहा।

राजकोषीय प्रबंधन में पारदर्शिता लाने के लिए सरकार वर्ष 2003 में राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन (FRBM) अधिनियम लेकर आई। इस अधिनियम ने विहित किया कि –

1. राजस्व घाटे को पूरी तरह से समाप्त किया जाना चाहिए,
2. राजकोषीय घाटे को सकल घरेलू उत्पाद के 3 प्रतिशत तक लाया जाना चाहिए, और
3. ऋण–व–जीडीपी अनुपात 60 प्रतिशत (केंद्र के लिए 40 प्रतिशत और राज्यों के लिए 20 प्रतिशत) से कम होना चाहिए।

इन लक्ष्यों को पूरी तरह से हासिल नहीं किया गया है और वर्ष दर वर्ष इन लक्ष्यों को संशोधित किया जाता रहा है। बहरहाल, यह अधिनियम भारत में राजकोषीय घाटे और सार्वजनिक ऋण पर लगाम लगाने में सक्षम रहा है।

9.4.1 राजकीय बजट निबाध

चलिए, मान लेते हैं (सरलता के लिए) कि कर (T_t) सार्वजनिक राजस्व का एकमात्र स्रोत हैं। अब मान लीजिए कि वर्तमान अवधि में सरकारी व्यय (निवल ब्याज भुगतान) G_tहै और सरकार का वर्तमान ऋण D_{t-1} है। यदि सरकार के वर्तमान ऋण पर ब्याज की दर rहो तो वर्तमान समयावधि के दौरान ब्याज भुगतान rD_{t-1}होगा।

अब समयावधि (t+1) में सार्वजनिक ऋण पूँजी में निवल परिवर्तन निम्नवत् होगा –

$$\Delta D_t = (G_t - T_t) + rD_{t-1} \quad \text{... (9.1)}$$

राजकीय बजट निबाध के अनुसार, वर्ष (t) के दौरान सरकारी ऋण $(D_t - D_{t-1}) = \Delta D_t$में निवल परिवर्तन *प्राथमिक घाटे* और वर्ष (t) के ही दौरान ब्याज भुगतान का कुलयोग होता है।

अतः समयावधि (t) में ऋण होगा –

$$D_t = D_{t-1} + (G_t - T_t) + rD_{t-1} \quad \text{... (9.2)}$$

अबसमीकरण (9.2) में प्रयुक्त पदों को पुनर्व्यवस्थित कर हम निम्नलिखित समीकरण प्राप्त कर सकते हैं –

$$D_t = (1 + r)D_t + (G_t - T_t) \quad \text{... (9.3)}$$

समीकरण (9.3) का तात्पर्य उस तरीके से है जिसमें समय के साथ सार्वजनिक ऋण विकसित होगा। याद रखें कि हम वर्तमान ऋण (D_t) में राजकोषीय घाटा नहीं, बल्कि प्राथमिक घाटा जोड़ते हैं। यह इस तथ्य के कारण है कि कुल सरकारी व्यय में, परिभाषा के अनुसार, ब्याज भुगतान भी शामिल होता है। याद करें कि राजकोषीय घाटा ब्याज भुगतान पर सरकारी खर्च को भी ध्यान में रखता है।

9.4.2 ऋण संधारणीयता

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, सरकार को पिछले ऋण पर ब्याज का भुगतान करना होगा और मूल राशि चुकानी होगी। यह देखा गया है कि सरकार किसी भी समय अपना सारा कर्ज नहीं चुकाती है – वह हर वर्ष ऋण का कुछ हिस्सा ही चुकाती है। इस प्रक्रिया में, वर्ष दर वर्ष सार्वजनिक ऋण की राशि में परिवर्तन होता रहता है। देश के सकल घरेलू उत्पाद में नियमित वृद्धि होती है, जिससे राजस्व संग्रह में वृद्धि होती है और इस कारण चुकौती क्षमता में भी वृद्धि होती है। तथापि, सार्वजनिक ऋण में वृद्धि और सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि को संतुलित करने की आवश्यकता होती है। राजकोषीय संधारणीयता से ज्ञात होता है कि ऋण–व–जीडीपी अनुपात एक प्रबंधनीय स्तर पर होना चाहिए और समय के साथ बढ़ना नहीं चाहिए।

चलिए, ऋण–व–जीडीपी अनुपात को हम निम्नवत् परिभाषित करते हैं –

$$d_t = \frac{D_t}{Y_t}.$$

अब समीकरण (9.3) के दोनों पक्षों को Y_t से विभाजित कर हमें निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होता है –

$$\frac{D_t}{Y_t} = (1+r)\frac{D_{t-1}}{Y_t} + \frac{G_t - T_t}{Y_t} \quad ...(9.4)$$

हम D_{t-1}/Y_t को $(D_t/Y_{t-1})(Y_{t-1}/Y_t)$ के रूप में पुनः लिख सकते हैं। दूसरे शब्दों में, हम अंश और हर को Y_{t-1} से गुणा कर देते हैं, यथा –

$$\frac{D_t}{Y_t} = (1+r)\left(\frac{Y_{t-1}}{Y_t}\right)\frac{D_{t-1}}{Y_{t-1}} + \frac{G_t - T_t}{Y_t} \quad ...(9.5)$$

ध्यान देने की बात है कि समीकरण (9.5) के सभी पद अब उत्पादन Y के अनुपात के संदर्भ में हैं। उपर्युक्त समीकरण को सरल बनाने के लिए हम मान लेते हैं कि उत्पादन वृद्धि स्थिर है और हम उत्पादन वृद्धि दर को g से निरूपित करते हैं। अतः Y_{t-1}/Y_t को $1/(1+g)$ के रूप में भी लिखा जा सकता है।

[चूँकि $1/(1+g) = \frac{1}{1+\frac{(Y_t - Y_{t-1})}{Y_{t-1}}} = = \frac{1}{\frac{Y_{t-1}+(Y_t - Y_{t-1})}{Y_{t-1}}} = \frac{Y_{t-1}}{Y_t}$]

तदनुसार, समीकरण (9.5) को निम्नवत् भी लिखा जा सकता है –

$$\frac{D_t}{Y_t} = (1+r)/(1+g)\frac{D_{t-1}}{Y_{t-1}} + \frac{G_t - T_t}{Y_t} \quad ...(9.6)$$

चलिए, अब हम सन्निकटन $(1+r)/(1+g) = (1+r-g)$ का प्रयोग करते हैं।

तदनुसार, हम समीकरण (9.6) को निम्नवत् भी लिख सकते हैं –

$$\frac{D_t}{Y_t} = (1+r-g)\frac{D_{t-1}}{Y_{t-1}} + \frac{G_t - T_t}{Y_t} \quad ...(9.7)$$

अंततः, समीकरण (9.7) को पुनर्व्यवस्थित कर हमें निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होता है –

$$\frac{D_t}{Y_t} - \frac{D_{t-1}}{Y_{t-1}} = (r-g)\frac{D_{t-1}}{Y_{t-1}} + \frac{G_t - T_t}{Y_t}$$

$$(d_t - d_{t-1}) = (r-g)\,d_{t-1} + \frac{G_t - T_t}{Y_t} \quad ...(9.8)$$

समीकरण (9.8) से हम पाते हैं कि समय के साथ ऋण अनुपात में परिवर्तन (समीकरण के बाईं ओर) दो पदों के कुलयोग के बराबर हो जाता है, यथा –

1. वास्तविक ब्याज दर और विकास दर के बीच का अंतर गुणा प्रारंभिक ऋण अनुपात, तथा
2. सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात के रूप में प्राथमिक घाटा।

दूसरा पद प्राथमिक घाटे एवं जीडीपी का अनुपात है। समीकरण (9.8) से हम पाते हैं कि ऋण–व–जीडीपी अनुपात में वृद्धि अपेक्षाकृत अधिक होगी, यदि –

1. ब्याज दर अधिक हो,
2. अर्थव्यवस्था की विकास दर कम हो, और
3. सकल घरेलू उत्पाद में प्राथमिक घाटे का अनुपात अधिक हो।

9.4.3 उच्च ऋण–व–जीडीपी अनुपात के निहितार्थ

मान लीजिए कि बड़ा घाटा उच्च ऋण–व–सकल घरेलू उत्पाद अनुपात की ओर ले गया है। ऐसे में सरकार को क्या करना चाहिए? केवल इस उच्च स्तर पर ऋण को स्थिर कर देने का प्रयास पर्याप्त नहीं होगा। उच्च ऋण–व–जीडीपी अनुपात 'ऋण जाल' की स्थिति को जन्म दे सकता है – ताकि अपना ऋण चुकाने के लिए देश और अधिक कर्ज ले सके। ऐसी दशाएँ राजकोषीय नीति के संचालन को अत्यंत कठिन बना देती हैं।

आइए, अब समीकरण (9.8) को कुछ अधिक बारीकी से देखते हैं –

$$\frac{D_t}{Y_t} - \frac{D_{t-1}}{Y_{t-1}} = (r-g)\frac{D_{t-1}}{Y_{t-1}} + \frac{G_t - T_t}{Y_t} \quad \ldots (9.8)$$

चलिए, मान लेते हैं कि किसी देश का ऋण–व–जीडीपी अनुपात बहुत अधिक है, माना यह 100%है। अब मान लीजिए कि वास्तविक ब्याज दर 3% है और आर्थिक विकास दर 2% है। यह भी मान लीजिए कि सरकार कठिन राजकोषीय स्थिति के प्रति सचेत है और वह सकल घरेलू उत्पाद के 1%के प्राथमिक अधिशेष के साथ एक अधिशेष बजट चला रही है। यदि हम इन आँकड़ों को

समीकरण (9.8) में लागू करें तो समीकरण (9.8) के दाईं ओर पहला पद (3%– 2%) गुणा 100%= सकल घरेलू उत्पाद का 1% होगा। चूँकि सरकार सकल घरेलू उत्पाद के 1% (यथा, ($\frac{G_t - T_t}{Y_t}$= सकल घरेलू उत्पाद का 1%) का प्राथमिक अधिशेष चला रही है, ऋण–व–जीडीपी अनुपात में स्थिरता है।

आइए, अब एक और परिदृश्य पर विचार करते हैं। मान लीजिए कि वित्तीय निवेशकों को चिंता होने लगती है कि शायद सरकार कर्ज पूरी तरह से चुकाने में सक्षम न हो। सरकार द्वारा आगे ऋणादान तभी संभव होगा जब ब्याज दर में वृद्धि की जाएगी। हालाँकि, ब्याज दर में कोई भी वृद्धि ऋण स्थिरीकरण को और कठिन बना देगी। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि ब्याज दर 3%

से बढ़कर 5% हो जाती है। तब केवल ऋण को संधारणीय बनाने के लिए ही सरकार को 3%का प्राथमिक अधिशेष चलाने की आवश्यकता होगी अर्थात् समीकरण (9.8) का दाहिना पक्ष तब (5%–2%) × 100% = सकल घरेलू उत्पाद के 3% के बराबर हो जाएगा।

मान लीजिए कि सरकार वास्तव में प्राथमिक अधिशेष को 3 प्रतिशत तक बढ़ाने के उपाय करती है। इसके लिए सरकारी खर्च में कटौती आवश्यक हो जाएगी। यह राजनीतिक रूप से महँगा साबित हो सकता है क्योंकि यह मतदाताओं को अलग–थलग कर सकता है। इसके अलावा, सरकारी खर्च में कमी से विकास दर में और गिरावट आ सकती है। ब्याज दर में वृद्धि और विकास दर में कमी के लिए अभी भी उच्च प्राथमिक अधिशेष की आवश्यकता हो सकती है।

किसी बिंदु पर सरकार प्राथमिक अधिशेष को और बढ़ाने में असमर्थ हो सकती है। ऐसी स्थिति से ऋण–व–जीडीपी अनुपात में वृद्धि होगी। इसका परिणाम एक ऋण विस्फोट होगा। अतः सबक स्पष्ट है। जब किसी सरकार को उच्च ऋण–व–जीडीपी अनुपात विरासत में मिलता है तो उसे समय के साथ उसे कम करने का लक्ष्य रखना चाहिए। इस तरह के एक लक्ष्य को प्राथमिक अधिशेष, उच्च विकास दर और कम वास्तविक ब्याज दर के संयोजन के माध्यम से हासिल किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 2

1. ऋण और जीडीपी अनुपात में वृद्धि का कारण बनने वाले कारकों का उल्लेख कीजिए।

   ……………………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………………

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

2. स्पष्ट करें कि सरकार के लिए ऋण संधारणीयता क्यों आवश्यक है।

....

....

....

....

9.5 रिकार्डियन तुल्यता प्रस्थापना

घाटे का बजट सरकार को अपने राजस्व से अधिक खर्च करने की अनुमति देता है। इस प्रक्रिया में सरकार ऋण संचित करती है, जिसे बाद में चुकाना पड़ता है। इस तरह की चुकौती व्यक्तियों पर उच्चतर कर लगाकर करनी पड़ती है। इस प्रकार घाटे का बजट उपभोक्ताओं की ओर से वर्तमान उपभोग एवं भावी उपभोग के बीच एक समझौताकारी समन्वय का अभिप्राय रखता है।

इकाई 5 और 6 में अंतर्कालिक उपभोग फलन के विषय में बात करते हुए हम यह मानकर चले थे कि उपभोक्ता विवेकशील और दूरंदेशी होते हैं। वे वर्तमान उपभोग की मात्रा का निर्णय करते समय आय केभावी प्रवाह को ध्यान में रखते हैं। इस प्राधार में, केन्जियन उपभोग फलन इस अर्थ में वास्तविक नहीं है कि वर्तमान उपभोग और वर्तमान आय के बीच कोई सरल और स्थिर संबंध नहीं होता।

इस पाठांश में हम चर्चा करेंगे कि सरकार का बजट घाटा लोगों के उपभोग निर्णय और अर्थव्यवस्था के कुल उत्पादन को कैसे प्रभावित करता है। इस संदर्भ में एक चरम दृष्टिकोण यह है कि न तो राजकोषीय घाटे का और न ही सार्वजनिक ऋण का कुल उत्पादन पर कोई प्रभाव पड़ता है। इसका तात्पर्य यह है कि सरकारी व्यय में वृद्धि का कुल माँग में वृद्धि और कुल उत्पादन में परिणामी वृद्धि पर वांछित प्रभाव संभवतः न हो। दूसरे शब्दों में, सरकार द्वारा प्रति–चक्रीय उपाय अप्रभावी हो सकते हैं। इस तर्क को *रिकार्डियन तुल्यता प्रस्थापना* के रूप में जाना जाता है।

नियोक्लासिकल अर्थशास्त्री (जिन पर चर्चा इकाई 12 में की जाएगी) रिकार्डियन तुल्यता के आधार पर केन्जियन राजकोषीय उपायों की प्रभावशीलता पर सवाल उठाते हैं। रिकार्डियन तुल्यता प्रस्थापना मुख्य रूप से रॉबर्ट बैरो (1974) से जुड़ी है।

नियोक्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने केन्जियन राजकोषीय नीति की इस आधार पर आलोचना की कि कीन्स ने ह्रासमान प्रभाव की उपेक्षा की। किसी भी विस्तारकारी राजकोषीय नीति से ब्याज दर में वृद्धि होती है (देखें पाठांश 9.2.3)। ब्याज दर में वृद्धि से निजी निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। किसी भी खुली अर्थव्यवस्था में ब्याज दर में वृद्धि विदेशी पूँजी के प्रवाह को आकर्षित करती है, जिससे घरेलू मुद्रा में वृद्धि होती है। घरेलू मुद्रा के मूल्य में इस तरह की वृद्धि निर्यात पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, जिससे देश की चालू खाता स्थिति बिगड़ती है (देखें BECC106 की इकाई 12)।

रॉबर्ट बैरो के नेतृत्व में *नियोक्लासिकल अर्थशास्त्रियों* ने एक अन्य स्तर पर केन्जियन राजकोषीय नीति की आलोचना की। वास्तव में, अर्थशास्त्रीबैरो ने 20वीं शताब्दी के आरंभ में डेविड रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोण को सामने रखा था। रिकार्डो ने तर्क दिया था कि यदि लोग दूरंदेशी हों तो करों द्वारा अथवा ऋणपत्र जारी करने से सरकारी व्यय के वित्तपोषण का कुल माँग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। बैरो के अनुसार, यदि प्रत्याशाओं का सृजन युक्तियुक्त प्रत्याशाओं के अनुसार होता है तो राजकोषीय नीति अप्रभावी साबित होगी।

चलिए, एक उदाहरण लेते हैं। मान लीजिए कि देश मंदी के दौर से गुजर रहा है और सरकार की योजना अपना खर्च बढ़ाने की हैय इसका उद्देश्य कुल माँग में वृद्धि करना है ताकि कुल उत्पादन में वृद्धि हो।

अब सरकार के सामने दो विकल्प हैं, यथा –

1. कर दरों में वृद्धि की जाए ताकि राजस्व प्राप्तियों में वृद्धि हो; तथा
2. वर्तमान दर पर कर बनाए रखें (अथवा, इसे घटाएँ), परंतु सरकारी खर्च बढ़ा दें ताकि घाटे का बजट सामने आए।

आइए, पहले प्रथम विकल्प पर गौर करें। मंदी के दौरान करों में वृद्धि से उपभोग व्यय में कमी आएगी। राजस्व प्राप्तियों में वृद्धि से सरकार को सार्वजनिक व्यय बढ़ाने में मदद मिलेगी। उपभोग में गिरावट की भरपाई सरकारी खर्च में वृद्धि से होती है। कुल मिलाकर, कुल माँग अपरिवर्तित रहेगी।

अब हम दूसरे विकल्प पर गौर करते हैं। घाटे के बजट में सार्वजनिक ऋण में वृद्धि शामिल होती है। लोग यह प्रत्याशा करने के लिए काफी विवेकशील हैं कि उन्हें भविष्य में उच्च करों का भुगतान करना होगा क्योंकि सरकार ऋण चुकाना शुरू कर देती है। अतएव, लोग शुरुआत से ही बचत करना शुरू कर देते हैं और इससे उपभोग व्यय में कमी आती है।

इस प्रकार, सरकारी व्यय में वृद्धि की भरपाई उपभोग व्यय में कमी करके की जाती है। कुल मिलाकर, कुल माँग में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। ध्यान देने की बात है कि दोनों नीति विकल्पों (करों में वृद्धि अथवा घाटे का वित्तपोषण) का कुल उत्पादन पर एक समान प्रभाव पड़ता है। 'रिकार्डियन तुल्यता' पदबंध उपर्युक्त के लिए ही आता है। नियोक्लासिकल दृष्टिकोण के अनुसार, कर दरों में कमी हमें अमीर नहीं बनाती है।

जब अर्थव्यवस्था उत्कर्ष के दौर से गुजर रही हो तो क्या रिकार्डियन तुल्यता की प्रस्थापना सत्य सिद्ध होती है? आइए, इस संदर्भ में उस मामले पर विचार करें जब सरकार एक संकुचनकारी राजकोषीय नीति का सहारा लेती है (जहाँ अधिशेष बजट होता है; राजस्व व्यय से कम होता है)। लोग प्रत्याशा करते है कि अधिशेष बजट की वजह से भविष्य में कर दरों में कमी आएगी। वे वर्तमान बचत के बारे में परेशान नहीं होते; वे उपभोग व्यय में वृद्धि कर देते हैं। इस प्रकार, इस मामले में भी कुल माँग में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

रिकार्डियन तुल्यता प्रस्थापना की कुछ कमियाँ भी देखने में आती हैं, जो कि निम्नवत् हैं –

अनिश्चितता : यदि उपभोक्ता निश्चित रूप से प्रत्याशा करते हों कि वर्तमान कर कटौती से भविष्य में कर में वृद्धि होगी तो वे अधिकांश वृद्धिशील आय को बचाएँगे। कर कटौती नीतियाँ, बहरहाल, इस घोषणा के साथ नहीं आतीं कि भविष्य में करों में वृद्धि की जाएगी। सरकार की भावी नीति से जुड़ी अनिश्चितता के कुछ मूलतत्त्व होते हैं। सरकार का चुकौती कार्यक्रम जितना दूर दिखाई देता है, कर वृद्धि की भावी तिथि उतनी ही अनिश्चित होती है। अतएव, यह संभावना होती है कि उपभोक्ता भविष्य में कर वृद्धि की संभावना को अनदेखा कर देंगे और फिर वर्तमान उपभोग में वृद्धि करेंगे।

स्वार्थ : उपभोक्ताओं के पास एक सीमित जीवनकाल होता है। वे प्रत्याशा कर सकते हैं कि यदि कर वृद्धि दूर भविष्य में होने की उम्मीद हो तो भावी कर वृद्धि से पहले वे मर जाएँगे। आमतौर पर लोग अपनी मृत्यु के बाद अगली पीढ़ी पर लगने वाले कर की ज्यादा परवाह नहीं करते हैं। ऐसी स्थिति में रिकार्डियन तुल्यता काम नहीं करेगी।

अदूरदर्शिता : रिकार्डियन तुल्यता इस धारणा पर आधारित है कि लोग पूरी जानकारी और सही दूरदर्शिता रखते हैं। जब सरकार अपने वर्तमान खर्च का भुगतान करने के लिए उधार लेती है तो विवेकशील उपभोक्ता भविष्य में करों में वृद्धि पर ध्यान देते हैं। उपभोक्ताओं की ओर से ऐसा व्यवहार दुर्लभ होता है। लोग अदूरदर्शिता (निकट दृष्टिदोष) से पीड़ित होते हैं और वे सरकार के ऋण प्रबंधन तंत्र को पूरी तरह से नहीं समझते हैं।

अतः कर में वर्तमान कटौती उन्हें यह सोचने को प्रवृतकर सकती है कि उनकी जीवनपर्यंत आय बढ़ गई है। इस तरह की धारणा से वर्तमान उपभोग में वृद्धि होने की संभावना होती है।

बोध प्रश्न 3

1. रिकार्डियन तुल्यता का क्या अर्थ है? स्पष्ट करें।

   ……………………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………………

2. स्पष्ट करें कि किसी सरकार द्वारा कर में कटौती हमें अमीर क्यों नहीं बना सकती है।

   ……………………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………………

9.6 सारांश

राजकोषीय नीति बनाते समय नीति–निर्माताओं को कई कारकों पर विचार करने की आवश्यकता होती है। इस संबंध में राजकोषीय घाटे की सीमा बहुत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि वह सार्वजनिक ऋण में वृद्धि करती है।

ऋण–व–सकल घरेलू उत्पाद अनुपात बहुत अधिक नहीं होना चाहिए। सार्वजनिक ऋण की संधारणीयता के लिए आर्थिक विकास दर ब्याज दर से अधिक होनी चाहिए।

इस इकाई में हमने राजकोषीय नीति पर कीन्स और नियोक्लासिकल अर्थशास्त्रियों के विचारों का अन्वेषण किया। रिकार्डियन तुल्यता प्रस्थापना से पता चलता है कि राजकोषीय नीति अप्रभावी भी रह सकती है।

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1. सरकारी व्यय कुल माँग का एक महत्वपूर्ण घटक होता है। यह व्यापार चक्र के कारण बढ़ी कुल माँग में उतार–चढ़ाव को नियंत्रित कर सकता है। विस्तृत विवरण के लिए पाठांश 9.2 देखें।

2. नीति अंतराल चार प्रकार के होते हैं। पाठांश 9.2.2 का संदर्भ लें।

3. आयकर संग्रह किसी भी अर्थव्यवस्था में आर्थिक गतिविधि के स्तर में परिवर्तन के साथ बदलता रहता है। पाठांश 9.2.3 का संदर्भ लें।

बोध प्रश्न 2

1. ऋण–व–जीडीपी अनुपात को प्रभावित करने वाले तीन कारक हैं – ब्याज दर, विकास दर और प्राथमिक घाटे का जीडीपी से अनुपात। अधिक जानकारी के लिए पाठांश 9.4 देखें।

2. उच्च ऋण–व–जीडीपी अनुपात के लिए बड़े ब्याज भुगतान की आवश्यकता होती है। इसके लिए सार्वजनिक व्यय में कटौती की आवश्यकता हो सकती है। विवरण के लिए पाठांश 9.4.3 देखें।

बोध प्रश्न 3

1. रिकार्डियन तुल्यता प्रस्थापना से पता चलता है कि सरकार की राजकोषीय नीति अप्रभावी रह सकती है। विवरण के लिए पाठांश 9.5 देखें।

2. यदि प्रत्याशाओं का सृजन युक्तियुक्त अपेक्षाओं के अनुसार होता है तो कर कटौती से उपभोग व्यय में वृद्धि नहीं हो सकती है। परिवार अपनी बचत बढ़ा सकते हैं ताकि भविष्य में अधिक करों का भुगतान किया जा सके।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 मौद्रिक नीति*

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 मुद्रा–परिमाण सिद्धांत
10.2.1 मुद्रा की तटस्थता
10.2.2 ब्याज दर में परिवर्तन का प्रभाव
10.2.3 मौद्रिक हस्तांतरण क्रियातंत्र
10.3 नियम बनाम विवेक
10.3.1 नीति अंतराल
10.3.2 प्रतिष्ठा और साख
10.3.3 मौद्रिक नीति नियम
10.4 हानि फलन
10.5 मात्रात्मक सुकरण
10.6 मौद्रिक नीति की कमियाँ
10.7 सार संक्षेप
10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि –

- मुद्रा–परिमाण सिद्धांत के पक्ष में निहित विचारों पर चर्चा कर सकें;
- मौद्रिक नीति संचालन के विभिन्न माध्यम (अथवा साधन) पहचान सकें;
- मौद्रिक नीति के उद्देश्य समझा सकें;
- स्पष्ट कर सकें कि नीतिगत नियम विवेकाधीन नीतियों से किस प्रकार बेहतर होते हैं;
- ब्याज दर निर्धारण पर टेलर का नियम स्पष्ट कर सकें;
- मात्रात्मक सुकरण की उपयोगिता का वर्णन कर सकें; तथा
- मौद्रिक नीति की कमियाँ पहचान सकें।

10.0 प्रस्तावना

प्रारंभिक समष्टि अर्थशास्त्र पर आधारित पाठ्यक्रम BECC 103 की इकाई 6 में हमने मौद्रिक नीति के उद्देश्यों और साधनों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया था। इस संदर्भ में हमने मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण और मात्रात्मक सुकरण पर चर्चा की थी। इस इकाई में हम उन्हीं में से कुछ बातों को दोहराएँगे और फिर अपनी चर्चा को नीति–निरूपण के पहलू की ओर ले जाएँगे। मौद्रिक नीति का अर्थ होता है – किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा आपूर्ति का स्तर प्रभावित करने के लिए केंद्रीय बैंक द्वारा विविध साधनों का प्रयोग किया जाना। आम तौर पर मौद्रिक नीति के दो साधन देखने में आते हैं, यथा –

*डॉ. कौस्तुभ बारिक, इग्नू एवं डॉ. कृष्ण कुमार, श्री वैंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय ।

(i) मात्रात्मक साधन, और

(ii) गुणात्मक साधन।

प्रथम अर्थात् मात्रात्मक साधनों को 'सामान्य साधन' भी कहा जाता है क्योंकि ये अर्थव्यवस्था में मुद्रा आपूर्ति की मात्रा अथवा परिमाण से संबंध रखते हैं। तदनुसार, ये नीतिगत साधन अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों अथवा सामाजिक समूहों के बीच कोई भेदभाव नहीं करते। इस श्रेणी में आने वाले प्रमुख साधन हैं –

a) ब्याज दर,

b) मुक्त बाजार संक्रियाएँ,

c) नकद आरक्षित अनुपात (CRR), और

d) सांविधिक चलनिधि अनुपात (SLR)।

दूसरी ओर, गुणात्मक साधन 'चयनात्मक साधन' भी कहलाते हैं। इन्हें ऋण के विभिन्न प्रयोगों के बीच विभेद करने के लिए प्रयोग किया जाता है। प्रमुख चयनात्मक ऋण नियंत्रण साधन हैं –

a) चयनात्मक ऋण नियंत्रण,

b) न्यूनतम राशि,

c) उधार राशि नियतन,

d) नैतिक प्रत्यायन, तथा

e) प्रत्यक्ष कार्रवाई।

इन सभी साधनों पर हम पाठ्यक्रम BECC 103 की इकाई 6 में विस्तृत चर्चा कर चुके हैं।

वह मौद्रिक नीति जो अनेक देशों द्वारा अपनाई जाती है, समय के साथ विकसित हुई है। इन दिनों केंद्रीय बैंक के अधिकार में प्रमुख साधन ब्याज दर है। आपने देखा ही होगा कि व्यापार से जुड़े लोगों के साथ–साथ बैंक कर्मी भी प्रायः देश के केंद्रीय बैंक यानी भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) द्वारा मौद्रिक नीति की घोषणा किए जाने की प्रतीक्षा में रहते हैं। किसी भी मुक्त अर्थव्यवस्था में केंद्रीय बैंक के समक्ष चुनौतियों का अंबार लगा होता है। दरअसल, आधुनिक युग में वित्तीय स्थिरता केंद्रीय बैंकों का एक अहम सरोकार कहलाती है।

'सत्तर के दशक तक यह माना जाता था कि केंद्रीय बैंक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की आपूर्ति नियंत्रित करने में सक्षम सिद्ध होगा। तिस पर भी अनेक अर्थशास्त्री ऐसे थे जो ऐसा कर पाने में केंद्रीय बैंक की क्षमता पर शंका व्यक्त किया करते थे। बहरहाल, वर्ष 1986–2006 की अवधि में अधिकांश विकसित देशों में 'आर्थिक संवृद्धि और मुद्रास्फीति' के क्षेत्र में स्थिरता देखने में आई। इस अवधि को प्रायः 'ग्रेट मॉडरेशन' अर्थात् 'महा नियमन' की संज्ञा दी जाती है क्योंकि काफी हद तक यह माना जाने लगा था कि हम अर्थव्यवस्था नियंत्रित करने की कला में सिद्धहस्त हो गए हैं। वर्ष 2007–2009 के दौरान जब तक देशों के सामने विश्व आर्थिक संकट नहीं आया था, आत्यंतिक आर्थिक अस्थिरता बीते कल की बात मानी जाती थी। इस वित्तीय संकट के पश्चात वर्ष 2010 से अनेक देश 'संरक्षणवाद' का सहारा लेते आए हैं, जिसने वैश्वीकरण को प्रतिकूलतः प्रभावित किया है।

विश्व भर में मौद्रिक नीति के महत्व बढ़ने की वजह से ही अब केंद्रीय बैंक प्रमुखों (भारत के प्रसंग में RBI–प्रमुख 'गवर्नर' कहलाता है) को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। अधिकांश केंद्रीय बैंक अपने वैधानिक प्रादेशों से नियंत्रित होते हैं, जो कि न सिर्फ महँगाई

का स्तर घटाने बल्कि बेरोजगारी का स्तर भी नीचा बनाए रखने के लिए होते हैं। दरअसल, शुरुआती दिनों में (वर्ष 1980 तक) अधिकांश केंद्रीय बैंक अपने नानाविध उद्देश्यों की पूर्ति में ही लगे रहते थे, जिनमें शामिल थे — मूल्य स्थिरता, रोजगार सृजन और आर्थिक संवृद्धि। बहरहाल, 'अस्सी के दशक से उसका ध्यान 'इन्फ्लेशन टारगेटिंग' अर्थात् मुद्रास्फीति को लक्ष्य बनाने पर अधिक रहने लगा है।

अन्य प्राथमिकताओं को दरकिनार कर मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण पर ही ध्यान दिया जाना 'अस्सी के दशक में निभाई गई अपनी भूमिका से हमें अमेरिका की केंद्रीय बैंक प्रणाली 'फेडरल रिजर्व सिस्टम' ने सिखलाया। दरअसल, 'सत्तर के दशक में 'तेल संकट' झेलने के उपरांत अमेरिका ने एक प्रकार से अभूतपूर्व महँगाई का सामना किया था। ऐसे में फेडरल रिजर्व सिस्टम के तत्कालीन अध्यक्ष पॉल वॉकर ने ब्याज दर में बड़ी वृद्धि कर दी। इस ब्याज–दर वृद्धि के परिणामस्वरूप यद्यपि उत्पादन स्तर गिरा, मुद्रास्फीति की दर घट गई। इस संदर्भ में ही मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण को केंद्रीय बैंकों के नीति क्षेत्र में स्वीकार्यता हासिल हुई।

वॉकर की मूल्य स्तर घटाने के लिए ब्याज दर बढ़ा देने की अवस्फीतिकारी रणनीति को व्यापक पहचान मिली। अब 'अस्सी के दशक से ही केंद्रीय बैंक संचालकों का ध्यान रोजगार सृजन के उद्देश्य से भटक कर मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण पर अधिक रहने लगा है। आप देखेंगे कि अमेरिका में ब्याज–दर वृद्धि के परिणामस्वरूप अनेक लैटिन अमेरिकी देश (जैसे ब्राजील, अर्जेंटीना और मैक्सिको) अपने अंतर्राष्ट्रीय ऋण दायित्वों का निर्वहन नहीं कर सके।

अनेक लैटिन अमेरिकी देशों ने 'साठ व 'सत्तर के दशक में अपने यहाँ औद्योगीकरण करने के लिए बड़ी मात्रा में ऋण लिया था। जब 'अस्सी के दशक में ब्याज दर बढ़ी तो अपने कर्ज चुकाने के लिए इन देशों पर आर्थिक बोझ बढ़ा। अर्थशास्त्र और इतिहास के विद्यार्थियों को यह बात अच्छी तरह याद है कि 'अस्सी के दशक में अंतर्राष्ट्रीय ऋण संकट का लैटिन अमेरिका की आर्थिक संवृद्धि पर किस प्रकार हानिकारक प्रभाव पड़ा था। इस बात का संबंध काफी हद तक अमेरिका और यूरोपीय देशों द्वारा अपनाई जा रही अवस्फीतिकारी रणनीति से रहा।

हाल के वर्षों में भी आपने देखा होगा कि विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ विकसित अर्थव्यवस्थाओं द्वारा ब्याज दर में वृद्धि के जवाब में वित्त बाजारों से पूँजी पलायन (विदेशी पूँजी का बहिर्वाह) किए जाने की गवाह रही हैं।

10.2 मुद्रा–परिमाण सिद्धांत

मुद्रा–परिमाण सिद्धांत (पारम्परिक अवधारणाओं पर आधारित होने के कारण जिसे प्रायः 'शास्त्रीय मुद्रा–परिमाण सिद्धांत' भी कहा जाता है) की उत्पत्ति स्कॉटलैंड के दार्शनिक डेविड ह्यूम के लेखों से हुई, ऐसा माना जाता है। ह्यूम ने इस सिद्धांत का उल्लेख वर्ष 1749 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *'प्राइस–स्पिशी फ्लो मैकेनिज्म'* में किया, जिसमें उसने स्वर्णमान की कार्य–पद्धति संबंधी व्याख्या विकसित की। स्वर्णमान, जैसा कि आप जानते ही हैं, एक ऐसी मौद्रिक प्रणाली रही है जिसमें किसी देश की मुद्रा स्वर्ण धातु के लिहाज से कोई नियत मूल्य रखती है।

ह्यूम के अनुसार, यदि किसी देश के पास आयात–निर्यात का अंतर धनात्मक है (अर्थात् उसका निर्यात उसके आयात से अधिक है) तो सोना उस देश में आएगा। तदनुसार, मुद्रा आपूर्ति बढ़ेगी, जो कि उसे फिर मुद्रास्फीति की ओर ले जाएगा। इसी प्रकार, यदि उस देश का व्यापार संतुलन घाटे में होता है तो घाटे के बराबर मान का सोना देश से बाहर

जाएगा। ऐसे में यदि सरकार द्वारा कोई प्रतिरोधी कदम नहीं उठाए जाते तो मुद्रा आपूर्ति घट जाएगी, जो कि फिर मूल्य स्तर में गिरावट की ओर ले जाएगा।

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में इर्विन फिशर द्वारा मुद्रा–परिमाण सिद्धांत एक विनिमय समीकरण के रूप में प्रस्तुत किया गया। संकेत रूप में इसे निम्नवत् दर्शाया जाता है –

$$MV = PY$$

जहाँ M मुद्रा आपूर्ति है, V मुद्रा प्रसार की गति है, P मूल्य स्तर है, और Y अर्थव्यवस्था में प्रस्तुत उत्पादन का स्तर है।

क्लासिकी अर्थशास्त्री यह मान कर चलते थे कि कीमतों और वेतन दर में लोचता के कारण ही अर्थव्यवस्था में पूर्ण नियोजन की स्थिति होती है। तदनुसार, Y पूर्ण नियोजन स्तर पर नियत होता है, और V (मुद्रा की कोई भी इकाई, माना, कोई करंसी नोट जितनी बार नये हाथों में जाता है) प्रायः अचर होता है। इस प्रकार, मुद्रा आपूर्ति में कोई भी वृद्धि मूल्य स्तर बढ़ा देगी।

10.2.1 मुद्रा की तटस्थता

क्लासिकी अर्थशास्त्र के पक्षधर कहते हैं कि मुद्रा इस अर्थ में तटस्थ होती है कि यह कीमत, वेतन दर, विनिमय दर आदि मौद्रिक चरों को समान रूप से प्रभावित करती है। दूसरी ओर, यह उत्पादन और रोजगार जैसे वास्तविक चरों को कतई प्रभावित नहीं करती। उत्पादन मुद्रा आपूर्ति से इसलिए प्रभावित नहीं होता कि अवधारणा के अनुसार, अर्थव्यवस्था में सदैव पूर्ण नियोजन की स्थिति रहती है। कीमतों और वेतन दरों को लोचदार माना जाता है। यदि श्रमिक आपूर्ति श्रमिक माँग से अधिक हुई तो वेतन दर घटेगी। दूसरी ओर, यदि श्रमिक माँग श्रमिक आपूर्ति से अधिक हुई तो वेतन दर बढ़ेगी। इसी प्रकार, कीमतें आपूर्ति और माँग जैसी बाजार शक्तियों द्वारा तय की जाती हैं। आनुभविक आँकड़ों पर आधारित कुछ अध्ययन प्रमाणित करते हैं कि मुद्रा दीर्घ अवधि में तटस्थ होती है। तदनुसार, यह कोई दीर्घावधि दृश्यघटना ही हो सकती है। अल्प अवधि में, बहरहाल, मुद्रा की तटस्थता को किसी भी आनुभविक अध्ययन से कोई खास समर्थन प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार, अल्प अवधि में मुद्रा तटस्थ नहीं हो सकती।

मुद्रा आपूर्ति में कोई भी वृद्धि दीर्घ अवधि में संसाधन–आवंटन स्तर में अथवा प्रस्तुत उत्पादन के मान में किसी भी परिवर्तन के बिना मूल्य स्तर में किसी आनुपातिक वृद्धि की ओर प्रवृत्त करती है। कीमतों में वृद्धि जब तक पूर्ण प्रत्याशित रहती है, कुल मुद्रा राशि में कोई भी वृद्धि सभी मौद्रिक मूल्यों में किसी समानुपातिक वृद्धि की ओर ले जाती है। दीर्घ अवधि में इसका किसी भी वास्तविक चर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

एक लंबे समय तक अर्थवादी नीतियाँ (मुद्रा–परिमाण सिद्धांत के पुनर्कथन से प्रेरित) केंद्रीय बैंकिंग के क्षेत्र में प्रबल रूप से प्रभावकारी रही हैं। एक बार मिल्टन फ्रीडमैन ने देखा कि मुद्रास्फीति एक मौद्रिक

दृश्यघटना के रूप में सदैव और सर्वत्र व्यापी है। वास्तव में, वैश्विक वित्त संकट उत्पन्न होने तक केंद्रीय बैंकों का ध्यान मुद्रा आपूर्ति की वृद्धि दर नियंत्रित करने पर ही रहा। इस संबंध में उक्त अर्थशास्त्री की अभिधारणा के अनुसार, मुद्रा आपूर्ति मात्रिक जीडीपी की वृद्धि दर पर ही बढ़नी चाहिए।

मुद्रा की तटस्थता के अलावा, एक अन्य संकल्पना है जिसे 'मुद्रा की परम तटस्थता' कहा जाता है। मुद्रा की तटस्थता से कहीं अधिक सशक्त कथन होते के नाते इसका कहना है कि मुद्रा आपूर्ति की वृद्धि दर में परिवर्तनों का वास्तविक चरों पर कोई असर नहीं होता। मान लीजिए कि किसी देश में मुद्रा आपूर्ति 3 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ रही है।

अचानक केंद्रीय बैंक इसे बढ़ाकर 5 प्रतिशत प्रति वर्ष कर दिए जाने का फैसला ले लेता है। क्या इसका उत्पादन वृद्धि पर कोई प्रभाव पड़ेगा? इस विषय पर आनुभविक परिणाम, बहरहाल, अस्पष्ट ही हैं।

10.2.2 ब्याज दर में परिवर्तन का प्रभाव

अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति दर और विकास दर के विषय में प्रत्याशाओं (इस पाठ्यक्रम की इकाई 4 व 5 देखें) को ध्यान में रखकर ही केंद्रीय बैंक ब्याज दर तय करता है। आपको मुद्रा–परिमाण सिद्धांत से ज्ञात ही है कि 'मात्रिक ब्याज दर = वास्तविक ब्याज दर + प्रत्याशित मुद्रास्फीति दर'। विश्व भर में मौद्रिक प्राधिकरण ही ब्याज दरें तय करते हैं और अपने मुद्रा भंडार को विद्यमान माँग के अनुसार समंजित करते हैं।

माना कि किसी नीति ने ब्याज दर में वृद्धि कर उसे i_0 से i_1 पर ला दिया। इसके फलस्वरूप मुद्रा भंडार M_0 से घटकर M_1 पर आ जाएगा (देखें चित्र 10.1)।

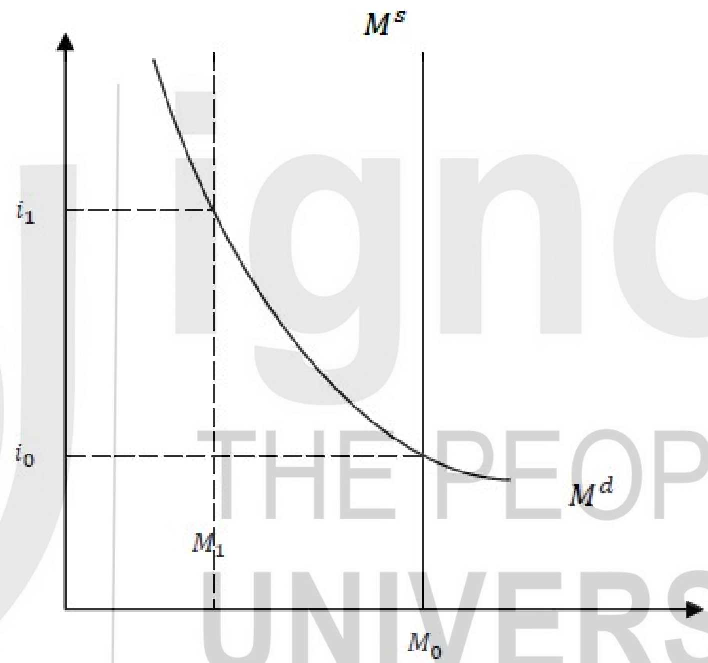

चित्र 10.1: ब्याज दर में वृद्धि का प्रभाव

यह कैसे संभव होता है? ब्याज दर में वृद्धि निवेश व्यय के साथ–साथ उपभोग व्यय में भी कमी ला देती है। इसके परिणामस्वरूप आय का स्तर घट जाता है, और इस वजह से मुद्रा की माँग (M^d) में कमी आ जाती है। अब मुद्रा आपूर्ति भंडार (M^s) को नयी मुद्रा माँग के अनुरूप समंजित करना पड़ता है।

10.2.3 मौद्रिक हस्तांतरण क्रियातंत्र

मान लीजिए कि केंद्रीय बैंक मुद्रा आपूर्ति बढ़ा देता है। इससे अर्थव्यवस्था में पूँजी की तरलता बढ़ जाएगी और ब्याज दर घट जाएगी। ब्याज दर में कोई भी गिरावट अर्थव्यवस्था में अनेक समष्टि–अर्थशास्त्रीय चरों को प्रभावित कर सकती है।

इन प्रभावों को प्रायः 'हस्तांतरण माध्यम' अथवा 'हस्तांतरण क्रियातंत्र' की संज्ञा दी जाती है। मौद्रिक हस्तांतरण क्रियातंत्र से हमें यह ज्ञान होता है कि किसी मौद्रिक चर का प्रभाव कैसे हस्तांतरित होता है अथवा अन्य चरों तक पहुँचता है। इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण माध्यम निम्नवत् दर्शाए जा सकते हैं –

(i) **ऋण माध्यम** : ब्याज दर में कोई भी गिरावट ऋण की माँग में वृद्धि की ओर ले जाएगी। ऐसी परियोजनाएँ जिन्हें पहले अव्यवहार्य माना गया था, निम्नतर पूँजी लागत के कारण अब व्यवहार्य मानी जा सकती हैं। ऐसे परिवार जिन्होंने ऊँची ब्याज दर की वजह से कोई ऋण न लिया हो, अब ऋण देने का विचार बना सकते हैं। ऐसे क्रियाकलाप फर्मों और परिवारों के हाथ में क्रय–शक्ति दे देंगे। फर्में और परिवार इस अतिरिक्त मुद्रा को विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं पर खर्च करेंगे। माँग में वृद्धि के परिणामस्वरूप साम्य उत्पादन बढ़ेगा (यदि अर्थव्यवस्था साम्य उत्पादन स्तर से नीचे काम कर रही हो)। इस प्रकार, यह परंपरागत धारणा कि मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि केवल मूल्य स्तर में वृद्धि की ओर ही प्रवृत्त करेगी, सच नहीं हो सकती।

(ii) **विनिमय दर माध्यम** : ऋण माध्यम से इतर, मौद्रिक हस्तांतरण क्रियातंत्र का एक अन्य माध्यम 'विनिमय दर माध्यम' के जरिए सामने आता है। जब ब्याज दर घटेगी तो पूँजी का बहिर्वाह होगा — विदेशी निवेशक ब्याज की उच्चतर दर पेश कर रहे अन्य देशों में निवेशार्थ अपना धन निकालेंगे। यह विदेशी मुद्रा की कमी की ओर प्रवृत्त करेगा और घरेलू मुद्रा का अवमूल्यन होगा। विनिमय दर के अवमूल्यन के कारण, बहरहाल, निर्यात की प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ जाएगी। साथ ही, आयात महँगा हो जाएगा। निवल निर्यात में वृद्धि कुल माँग में वृद्धि की ओर प्रवृत्त करेगी, जो कि फिर उत्पादन के साम्य स्तर में वृद्धि की ओर अग्रसर करेगा। ऐसी स्थिति तभी आएगी जब घरेलू मूल्य स्तर अवमूल्यन के साथ नही बढ़ेंगे। बहरहाल, आप देखेंगे कि निर्यात और आयात हेतु माँग की लोचता एकलता से अधिक ही होनी चाहिए। तदनुसार, विनिमय दर माध्यम तभी कारगर होगा जब उक्त शर्तें पूरी होंगी।

(iii) **पूँजी की लागत** : पुनः एक अन्य माध्यम पूँजी लागत के जरिए है। जब ब्याज दरें घट जाती हैं तो शेयर खरीदने हेतु वित्तीयन की सहजता बढ़ जाती है। यह फर्मों के शेयर (अर्थात् कम्पनी की वह पूँजी जो भागों में बँटी रहती है) भाव में वृद्धि की ओर अग्रसर करता है। दूसरे शब्दों में, फर्म का बाजार मूल्य प्रतिस्थापन लागत की तुलना में बढ़ जाता है। इससे फर्में नया निवेश कर और विस्तार करने को प्रोत्साहित होती हैं। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन स्तर में वृद्धि होती है। इसके फलस्वरूप उपभोग व्यय में 'अनपेक्षित लाभ' प्रभाव भी दिखाई पड़ सकता है। जब शेयरों का भाव बढ़ता है तो परिवार अपने स्वामित्व वाले शेयरों के भाव में वृद्धि के रूप में लाभ लेने को भी तत्पर हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप उपभोग व्यय स्तर को बढ़ाता 'समृद्धि प्रभाव' नजर आने लगता है।

ये सभी माध्यम मौद्रिक हस्तांतरण क्रियातंत्र के मार्ग अवश्य हैं, परंतु अनेक कारणों से ये हमेशा कारगर सिद्ध नहीं होते। विशेष रूप से, जब अर्थव्यवस्था में तरल पूँजी की व्यापक माँग होती है और वह तरलता के जाल में फँसी होती है तो मौद्रिक नीति प्रभावहीन हो जाती है। कोई भी मौद्रिक चर (मुद्रा आपूर्ति) किसी भी वास्तविकता चर (उत्पादन) को प्रभावित करता है, परंतु ऐसा सदैव होना आवश्यक नहीं। ब्याज दर घट जाने के बावजूद यह आवश्यक नहीं कि परिवारों और फर्मों की ओर से ऋण की माँग में वृद्धि हो ही। उदाहरण के लिए, यदि भावी आय के विषय में प्रत्याशाएँ अनिश्चित हों तो फर्में शायद अपनी मुद्रा की माँग न बढ़ाएँ। इसी प्रकार, निकट भविष्य में यदि आय निश्चित न हो तो परिवारों को अतिरिक्त धन की किंचित् ही आवश्यकता होगी।

इसके अलावा, यदि केंद्रीय बैंक ब्याज दर घटा भी दे तो आवश्यक नहीं कि वह वाणिज्यिक बैंकों द्वारा ऋणी वर्ग तक पहुँचाई ही जाए। वाणिज्यिक बैंक निश्चय ही ऐसा करने को अनिच्छुक होंगे, खासकर जब बैंकों के पास बड़ी मात्रा में गैर–निष्पादक परिसंपत्तियाँ (डूबी हुई रकम) हों।

बोध प्रश्न 1

1) मुद्रा की तटस्थता संबंधी संकल्पना की रूपरेखा प्रस्तुत करें।

....

....

....

....

....

2) मौद्रिक हस्तांतरण क्रियातंत्र के विभिन्न माध्यम बताएँ।

....

....

....

....

....

10.3 नियम बनाम विवेक

जैसा कि आपको ज्ञात ही है, केन्जियन अर्थशास्त्र ने सरकार के लिए एक कार्यकर्ता की भूमिका विहित की। जब अर्थव्यवस्था व्यापार मंदी के दौर से गुजर रही हो तो सरकार को सार्वजनिक निवेश बढ़ा देना चाहिए। निवेश में वृद्धि कुल माँग में वृद्धि करेगी, जो कि फिर कुल उत्पादन को बढ़ा देगी। दूसरी ओर, यदि अर्थव्यवस्था 'अतितप्त' हो – अर्थात् वह पूर्ण–नियोजन स्तर पर काम कर रही हो और कुल माँग फिर भी बढ़ रही हो – तो सरकार को सार्वजनिक निवेश घटा देना चाहिए ताकि कुल माँग स्थिर रहे। इस प्रकार, केन्जियन अर्थशास्त्र यह मानकर चलता है कि सरकार व्यापार चक्रों का प्रभाव सीमित कर सकती है। उसके अनुसार, जहाँ तक कि राजकीय व्यय का सवाल है, सरकार को सलाह है कि वह अपने विवेक का प्रयोग करना सीखे।

जबकि केन्जियन अर्थशास्त्र ने सरकार के लिए एक कर्मठ कार्यकर्ता की भूमिका विहित की, नवशास्त्रीय अर्थशास्त्रियों ने कहा कि शासकीय नीति कुछ विशिष्ट नियमों के आधार पर होनी चाहिए, न कि नीति–निर्माताओं के विवेकाधीन (विभिन्न समष्टि–अर्थशास्त्रीय विचारधाराओं के विषय में हम इस पाठ्यक्रम की इकाइयों 11 और 12 में पढ़ेंगे)।

10.3.1 प्रतिष्ठा और साख

कोई भी राजकीय नीति इस अर्थ में विश्वसनीय होनी चाहिए कि सरकार अपने नीतिगत उपायों के प्रति वचनबद्ध होती है। किसी घोषित नीति की विश्वसनीयता दो कारकों पर निर्भर होती है, यथा –

(i) अपना वचन पूरा करने हेतु किसी सरकार की क्षमता के संदर्भ में पिछला अनुभव, तथा

(ii) जन सामान्य की अपेक्षाएँ कि सरकार अपनी नीति पर कायम रहेगी।

फर्मों द्वारा निवेश निर्णय और परिवारों द्वारा बचत निर्णय विश्वसनीयता के आधार पर ही लिए जाते हैं। इस संदर्भ में, आप देखेंगे कि कुछ सरकारों ने विगत वर्षों में 'गुड गवर्नेंस' अर्थात् सुशासन के लिहाज से अपनी साख (reputation) बनाई है।

कोई भी सरकार अपने उद्देश्य सबसे बेहतर ढंग से पूरे करना चाहती है। मान लीजिए कि सरकार घोषणा करती है कि किसी क्षेत्र विशेष, जैसे पर्यटन, को वह पाँच वर्ष के लिए कर अवकाश (अर्थात् कर—मुक्त अवधि) प्रदान करेगी। यह पर्यटन के क्षेत्र में निवेशार्थ फर्मों के लिए प्रोत्साहन के रूप में काम करेगा। दो वर्ष बाद, यदि सरकार को लगता है कि पर्याप्त निवेश किया जा चुका है तो अब वह उस क्षेत्र पर करारोपण कर कर राजस्व बढ़ा सकती है। इससे सरकार की विश्वसनीयता पर आँच आती है।

10.3.2 मौद्रिक नीति नियम

अर्थव्यवस्था में स्थिरता कायम रखने के लिए, अर्थशास्त्रियों के अनुसार, कुछ 'नीतिगत नियमों' का पालन किया जाना चाहिए। सरल शब्दों में, इसका अर्थ है कि शासकीय कार्रवाइयाँ कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार ही की जानी चाहिए।

आइए, वास्तविक जीवन से एक उदाहरण लें। आपने देखा ही होगा कि शहरों के बाहरी किनारे प्रायः अवैध निर्माण से अटे होते हैं। ये मकान गुपचुप तरीके से बनाए जाते हैं। इन घरों के धारक फिर सरकार से गुहार लगाते हैं कि उस निर्माण को वैध घोषित कर दिया जाए। कुछ दिनों में, चुनाव आते ही तमाम राजनीतिक दल एक दूसरे से बढ़कर वादे करने लगते हैं कि यदि वे सत्ता में आए तो उस अवैध निर्माण को नियमित कर देंगे।

इसी प्रकार, राजनीतिक दल प्रायः सत्ता में आते ही कृषि ऋण माफ कर दिए जाने का वादा करते हैं। ऐसे वायदे लोगों को अवैध बस्तियों में मकान ले लेने को प्रेरित करते हैं।

इसी तरह, लोग कृषि ऋण ले लेते हैं और उसे इस उम्मीद से नहीं चुकाते कि सरकार ऋण माफ कर देगी।

मान लीजिए कि देश का कानून है कि किसी भी परिस्थिति में अवैध निर्माण नियमित नहीं किया जाएगा अथवा ऋण माफ नहीं किया जाएगा। ऐसे नियम ही उपर्युक्त व्यवहार के प्रति लोगों को निर्त्साहित करेंगे।

अब एक उदाहरण अर्थशास्त्र से लेते हैं। केंद्र सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक के बीच एक समझौते के अनुसार बैंक को देश में मुद्रास्फीति की दर 4 प्रतिशत प्रति वर्ष पर बनाए रखने होगी, जहाँ 2 प्रतिशत से 6 प्रतिशत का उतार—चढ़ाव स्वीकार्य होगा। तदनुसार, बैंक ऐसे कदम उठाएगा कि मुद्रास्फीति की दर 2 प्रतिशत से 6 प्रतिशत की सीमा से बाहर न जाए।

इस प्रकार, 'मौद्रिक नीति नियम' को सरकार के एक प्रतिक्रिया फलन के रूप में देखा जा सकता है। यह एक गणितीय फलन है जो बतलाता है कि केंद्रीय बैंक कुछ समष्टि—अर्थशास्त्रीय चरों के प्रत्युत्तर में ब्याज दर कैसे निर्धारित किया जाता है।

जैसा कि आप जानते हैं, उच्चतर ब्याज दर निवेश को हतोत्साहित करती हैय जिससे आर्थिक विकास की गति धीमी पड़ जाती है। यदि मुद्रास्फीति की दर ऊँची हुई तो ब्याज दर भी ऊँची ही रखनी होगी। यदि वास्तविक विकास दर संभावित विकास दर से ऊँचा हुआ तो भी ब्याज दर ऊँची ही रखनी होगी। इस इकाई में आगे हम टेलर के नियम पर चर्चा करेंगे, जो कि मौद्रिक नीति नियम का एक विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

बोध प्रश्न 2

1) मौद्रिक नीत नियम कि आवश्यकता को समझाइए।

....

....

....

....

....

2) किसी अर्थव्यवस्था के लिए विश्वसनीयता और प्रतिष्ठा का क्या महत्व होता है?

....

....

....

....

....

10.4 हानि फलन

किसी भी मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य मुद्रास्फीति को लक्ष्य बनाकर चलना ही होता है, परंतु मुद्रास्फीति का नियंत्रण आर्थिक संवृद्धि और विकास की कीमत पर कदापि नहीं होना चाहिए। आपको 'बेरोजगारी की स्वाभाविक दर' संबंधी संकल्पना का भी ज्ञान है। इसके अनुसार, श्रमबल का एक छोटा–सा हिस्सा प्रायः बेरोजगार रहता है क्योंकि कुछ श्रमिक एक नौकरी छोड़कर दूसरी पकड़ने की प्रक्रिया में लगे ही रहते हैं। किसी भी देश के संभावित उत्पादन में इस प्रकार की बेरोजगारी की स्वाभाविक दर का हमेशा ध्यान रखा जाता है।

चलिए, मान लेते हैं कि y_e और π^T क्रमशः बेरोजगारी की स्वाभाविक दर पर उत्पादन और मुद्रास्फीति की लक्षित दर दर्शाते हैं। हम यह मानकर चलते हैं कि किसी देश का आर्थिक कल्याण तब अधिकतम होता है जब अर्थव्यवस्था y_e और π^T पर काम कर रही हो। इसका अर्थ है कि अर्थव्यवस्था (y_e , π^T) हासिल कर लेने पर अपने 'कल्याण बिंदु' पर होती है और यहाँ से तनिक भी विचलन उसके कल्याण में कमी ला देता है।

मान लीजिए कि उत्पादन और मुद्रास्फीति क्रमशः y और π हैं। तदनुसार, यदि लक्षित मुद्रास्फीति 4 प्रतिशत और वास्तविक मुद्रास्फीति 2 प्रतिशत हो तो विचलन $(\pi - \pi^T ¿= (2-4) = -2$ प्रतिशत होगा। यदि मुद्रास्फीति 4 प्रतिशत से अधिक अथवा 4 प्रतिशत से कम होगी तो कल्याण हानि देखने में आएगी। इस प्रकार, केंद्रीय बैंक फलन $(\pi - \pi^T)^2$ को न्यूनतम करना चाहेगा। इसी प्रकार, केंद्रीय बैंक वास्तविक उत्पादन (y) में संभावित उत्पादन (y_e) से विचलन टालना चाहेगा। तदनुसार, वह फलन $(y - y_e)^2$ को न्यूनतम करेगा।

यदि हम उपर्युक्त दोनों पदों मिला दें तो केंद्रीय बैंक का हानि फलन निम्नवत् दर्शाया जाएगा –

$$L = (y - y_e)^2 + (\pi - \pi^T)^2 \qquad \dots (10.1)$$

अब केंद्रीय बैंक अपने–अपने लक्ष्य से वास्तविक उत्पादन और वास्तविक मुद्रास्फीति में विचलन से प्राप्त समीकरण (10.1) को न्यूनतम कर कल्याण हानि निम्नतम कर देगा।

उक्त समीकरण (10.1) में हम उत्पादन अंतराल $(y-y_e)$ और मुद्रास्फीति में विचलन $(\pi-\pi^T)$ को समान महत्व देते हैं। कई बार केंद्रीय बैंक उत्पादन (जो कि रोजगार निरूपित करता है) और मुद्रास्फीति को असमान महत्व देता है। इस उद्देश्य से हम समीकरण (10.1) को पुनः निम्नवत् लिखेंगे –

$$L=(y-y_e)^2+\beta(\pi-\pi^T)^2 \quad \ldots (10.2)$$

समीकरण (10.2) में, यदि $\beta=1$ तो हम समीकरण (10.1) की ही भाँति स्थिति में होते हैं। यदि $\beta>1$ तो केंद्रीय बैंक मुद्रास्फीति का लक्ष्य हासिल करने पर अधिक जोर देता है (अर्थात् उसे मुद्रास्फीति के अपने लक्ष्य से विचलित होने पर अधिक हानि होने की आशंका है)। इस प्रकार के दृष्टिकोण को 'मुद्रास्फीति–प्रतिकूल' माना जाता है। दूसरी ओर, यदि $\beta<1$ तो केंद्रीय बैंक लोगों के बेरोजगार रहने पर अधिक कल्याण हानि की कल्पना करता है। केंद्रीय बैंक इस प्रकार की स्थिति को 'बेरोजगारी–प्रतिकूल' मानकर चलता है।

उक्त हानि फलन को हम आरेखीय रूप से 'हानि वृत्तों' के माध्यम से दर्शाते हैं। ये वृत्त ठीक उन तटस्थता या उदासीनता वक्रों की भाँति होते हैं जिनके विषय में हमने व्यष्टि अर्थशास्त्र में पढ़ा था।

चलिए, उत्पादन को x–अक्ष और मुद्रास्फीति को y–अक्ष पर दर्शाते हैं (देखें चित्र 10.2)। यहाँ कल्याण बिंदु बिंदु (y_e, π^T) को निरूपित करती रेखाओं के प्रतिच्छेदन से दर्शाया गया है।

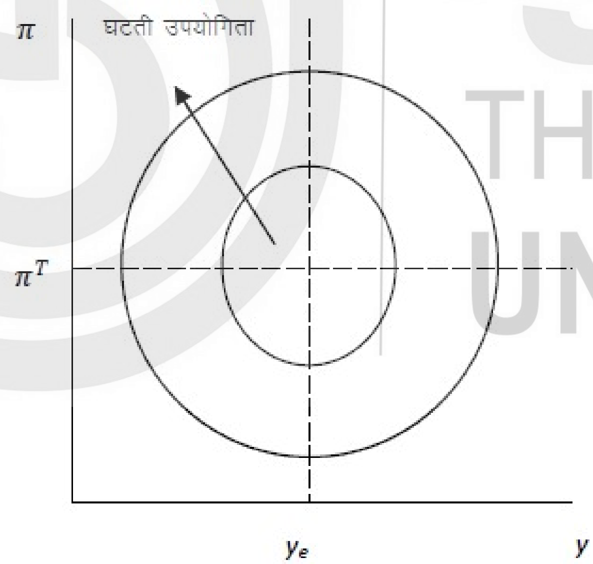

चित्र 10.2: संतुलित दृष्टिकोण (β = 1)

आइए, चित्र 10.2 के प्रथम वृत्तपाद (आरेख के शीर्ष दाएँ खंड) पर विचार करें, जहाँ हम उत्पादन और रोजगार में स्थिति विचलन ($y>y_e$; $\pi>\pi^T$) देखते हैं। यदि अर्थव्यवस्था कल्याण बिंदु से विचलित होती है तो यह कल्याण हानि दर्शाएगा। यदि केंद्रीय बैंक का दृष्टिकोण संतुलित (यथा, $\beta=1$) है तो बेरोजगारी और मुद्रास्फीति को समान महत्व दिया जाएगा। उपर्युक्त को हम ऐसे भी समझ सकते हैं कि संभावित उत्पादन से वास्तविक उत्पादन में 1 प्रतिशत विचलन का अर्थ होगा – लक्षित मुद्रास्फीति से वास्तविक

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

मुद्रास्फीति में 1 प्रतिशत की राशि में ही कल्याण हानि। ये दोनों ही दोष मुद्रास्फीति और उत्पादन अंतराल के विभिन्न संयोजन दर्शाते किसी तटस्थता वक्र (मूल बिंदु पर नतोदर) से निरूपित किए जा सकते हैं।

दूसरे वृत्तपाद में हम एक ऐसी स्थिति पर विचार करेंगे जहाँ वास्तविक उत्पादन संभावित उत्पादन से कम ($y < y_e$) होता है और वास्तविक मुद्रास्फीति लक्षित मुद्रास्फीति से अधिक ($\pi > \pi^T$)। चूँकि इसमें देश के लिए आर्थिक कल्याण हानि शामिल होती है, इसका निरूपण हम एक तटस्थता वक्र से ही करते हैं। एक समरूप तर्क विकसित कर हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि इस उदाहरण में तटस्थता वक्र दरअसल एक वृत्त है! इसे 'हानि वृत्त' की संज्ञा दी जा सकती है।

अब उसी विधि को अपनाते हुए जिसमें हमने उत्पादन और मुद्रास्फीति दोनों में 1 प्रतिशत विचलन हेतु एक हानि वृत्त खींचा था, हम एक और हानि वृत्त 2 प्रतिशत विचलन के लिए खींच सकते हैं। तदनुसार, हम केंद्रबिन्दु पर (y_e, π^T) के साथ सकेंद्री वृत्तों की एक शृंखला उकेर सकते हैं। अब यह कोई 'चाँदमारी का निशाना' प्रतीत होता है; केंद्रीय बैंक का लक्ष्य होगा – सही निशाना लगाना; और इस निशाने से विचलन का अर्थ होगा – अर्थव्यवस्था के लिए घटती उपयोगिता।

उक्त हानि वृत्तों की आकृति मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के प्रति केंद्रीय बैंक के दृष्टिकोण पर निर्भर करेगी। चित्र 10.2 में हमने पूर्ण वृत्त ही दर्शाए हैं क्योंकि केंद्रीय बैंक उत्पादन और मुद्रास्फीति से विचलन के विषय में समान रूप से चिंतित ($\beta = 1$) है।

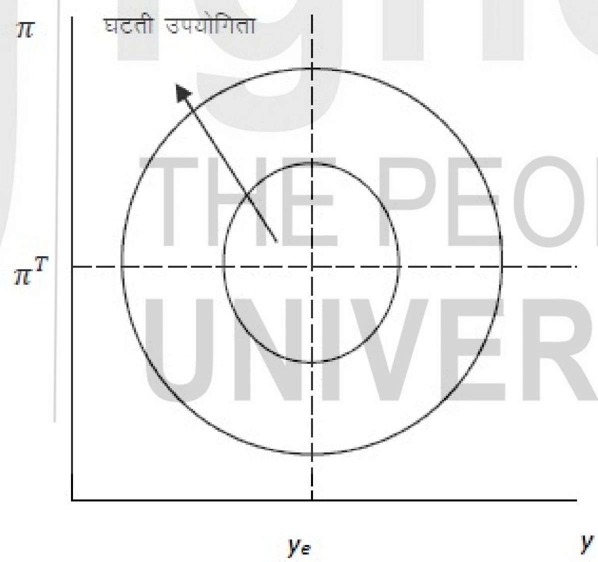

चित्र 10.3: मुद्रास्फीति–प्रतिकूल **($\beta = 1$)**

यदि केंद्रीय बैंक मुद्रास्फीति–प्रतिकूल हुआ (अर्थात् वह मुद्रास्फीति को बेरोजगारी से कहीं बड़ा चिंता का विषय मानता हो) तो उसे कल्याण की किसी हानि विशेष में बेरोजगारी की अपेक्षा मुद्रास्फीति में कुछ कम विचलन की अपेक्षा होगी। इस स्थिति में हानि वृत्त दीर्घवृत्ताभ की भाँति होगा (जैसा कि चित्र 10.3 में दर्शाया गया है)। यहाँ केंद्रीय बैंक बेरोजगारी में बड़ी कमी के साथ मुद्रास्फीति में थोड़ी–सी वृद्धि का सामंजस्य बैठाएगा।

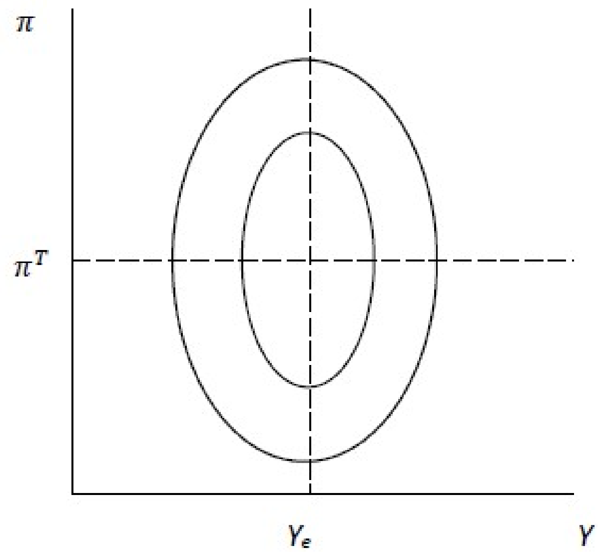

चित्र 10.4: बेरोजगारी–प्रतिकूल **(β <1)**

दूसरी ओर, यदि केंद्रीय बैंक बेरोजगारी–प्रतिकूल हुआ (अर्थात् वह बेरोजगारी को मुद्रास्फीति से कहीं बड़ा चिंता का विषय मानता हो) तो वह बेरोजगारी में थोड़ी–सी कमी के साथ मुद्रास्फीति में बड़ी वृद्धि का सामंजस्य बैठाएगा। इस स्थिति में हानि वृत्त चित्र 10.4 में दर्शाए गए दीर्घवृत्ताभ की भाँति होगा।

10.4.1 टेलर का नियम

ब्याज–दर निर्धारण संबंधी टेलर का नियम मुद्रास्फीति दर को मानक ब्याज दर की तुलना में एक उच्चतर दर पर तय करता है। ऐसा तब होता है जब मुद्रास्फीति लक्षित मुद्रास्फीति दर से अधिक रहने आशंका हो तथा उत्पादन रोजगार की स्वाभाविक दर पर होने वाले उत्पादन से कहीं अधिक होने की आशा। दूसरी ओर, यदि मुद्रास्फीति अपने लक्षित स्तर से नीचे रहे अथवा उत्पादन रोजगार की स्वाभाविक दर पर होने वाले उत्पादन से कहीं कम रहे तो ब्याज दर का स्तर मानक ब्याज दर की तुलना में कुछ नीचे ही रखा जाता है।

विश्व भर में केंद्रीय बैंकों के बीच ब्याज–दर निर्धारण संबंधी निर्देशक सिद्धांत स्वरूप टेलर का नियम ही प्रसिद्ध है। सरल शब्दों में, यह नियम बेरोजगारी की स्वाभाविक दर और मुद्रास्फीति की लक्षित दर से विचलन के आधार पर ब्याज दरों में अपनी मानक दर से परिवर्तनों की सिफारिश करता है। जब मुद्रास्फीति अपनी लक्षित दर आगे बढ़ जाती है तो ब्याज दर बढ़ा दी जाती है। इसी प्रकार, यदि उत्पादन पूर्ण नियोजन स्तर से ऊपर हो तो ब्याज दर का स्तर बढ़ा दिया जाता है। किंतु यदि मुद्रास्फीति अपने लक्षित स्तर से नीचे रहे अथवा उत्पादन अपने लक्षित स्तर से नीचे रहे तो ब्याज दर घटा दी जाती है। अतएव, आम तौर पर मुद्रास्फीति और उत्पादन नियंत्रित करने के लिए ब्याज दरों में हेर–फेर की कोई सीमा नहीं है, परंतु अवस्फीति और बेरोजगारी की अवधि में यह भिन्न रखी जाती है।

वस्तुतः विश्व वित्त संकट के उपरांत, टेलर समीकरण का अनुपालन करते हुए, ब्याज दरें घटाकर ऋणात्मक मात्रिक दरों पर लानी पड़ी थीं, जो कि असमर्थनीय था।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ब्याज–दर निर्धारण संबंधी टेलर का नियम हम निम्नवत् लिख सकते हैं –

$$i_t = i' + \gamma_1(\pi - \pi^T) + \gamma_2(y - y_e) \qquad \dots (10.3)$$

जहाँ

i_t अल्पावधि हेतु लक्षित ब्याज दर (निर्धारित की गई दर) पर काम कर रहा है;

i' विद्यमान ब्याज दर (मानक ब्याज दर) है;

$(\pi - \pi^T)$ मुद्रास्फीति और लक्षित मुद्रास्फीति के बीच का अंतराल है;

$(y - y_e)$ उत्पादन अंतराल है; तथा

γ_1 और γ_2 बेरोजगारी और मुद्रास्फीति को निर्दिष्ट महत्व निरूपित करते मॉडल के प्राचल हैं।

समीकरण (10.3) के अनुसार, यदि अर्थव्यवस्था में कोई धनात्मक उत्पादन अंतराल हो (अर्थात् वास्तविक उत्पादन पूर्ण–क्षमता उत्पादन से अधिक हो) तो केंद्रीय बैंक को ब्याज दर बढ़ा देनी चाहिए। दूसरी ओर, यदि उत्पादन अंतराल ऋणात्मक हो (अर्थात् वास्तविक उत्पादन पूर्ण–क्षमता उत्पादन से कम हो) तो अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त क्षमता होती है, और इस कारण ब्याज दर घटा दी जानी चाहिए। साथ ही, यदि वास्तविक मुद्रास्फीति दर (π) लक्षित मुद्रास्फीति दर (π^T) से अधिक हो तो केंद्रीय बैंक को ब्याज दर बढ़ा देनी चाहिए। दूसरी ओर, यदि वास्तविक मुद्रास्फीति दर लक्षित मुद्रास्फीति दर से कम हो तो केंद्रीय बैंक को ब्याज दर घटा देनी चाहिए।

मान लीजिए कि किसी अर्थव्यवस्था के संदर्भ में निम्नलिखित जानकारी दी गई है –

$\gamma_1 = 0.5$, $\gamma_2 = 0.5$, $\pi^T = 0.04$, और $i' = 0.02$

यहाँ टेलर का नियम निम्नवत् नजर आएगा –

$$r = 0.02 + 0.5(\pi - 0.04) + 0.5(y - y_e) \qquad \dots (10.4)$$

समीकरण (10.4) को अपनाकर केंद्रीय बैंक ब्याज दर निर्धारित कर सकता है।

10.5 मात्रात्मक सुकरण

जब ब्याज दरें शून्य के बहुत निकट होती हैं तो अर्थव्यवस्था 'लिक्विडिटी ट्रैप' क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है, जहाँ मौद्रिक नीति पूरी तरह निष्प्रभावी होती है। लोग स्वयं को आपूर्तित धन की अधिकाधिक मात्रा को अपने पास ही रहने देना चाहते हैं। ऐसे परिदृश्य में आर्थिक क्रियाकलाप को प्रोत्साहित करने के लिए केंद्रीय बैंक एक भिन्न रणनीति अपनाता है। इसके अंतर्गत 'क्वान्टिटेटिव ईजिंग' अर्थात् मात्रात्मक सुकरण नामक एक प्रक्रिया के माध्यम से वित्त व्यवस्था में मुद्रा सीधे प्रवाहित कर दिया जाता है। इसे *परिसंपत्ति क्रय योजना* भी कहा जाता है क्योंकि इसके अनुसार केंद्रीय बैंक परिसंपत्ति–पोषित प्रतिभूतियाँ खरीदना शुरू कर देता है।

मात्रात्मक सुकरण को मुद्रा मुद्रण समझना गलत होगा क्योंकि इसके अनुसार कोई नकदी नहीं छापी जाती। नोट छापने की बजाय केंद्रीय बैंक इलेक्ट्रॉनिक अथवा डिजिटल मुद्रा का सृजन करता है, जिसे ऋणपत्र या बॉण्ड खरीदने के लिए प्रयोग किया जाता है। केंद्रीय बैंक ये ऋणपत्र खरीदने के लिए अपने आरक्षित निधिध्भंडारों को ऋण जारी करता है। परिणामतः वाणिज्यिक बैंकों को अपने आरक्षित भंडारों की अपेक्षा से कहीं अधिक मिल जाता है। अब ये बैंक अतिरिक्त आरक्षित निधि से ऋणदान कर लाभ कमाते हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

मात्रात्मक सुकरण से ऋणपत्रों की माँग अथवा सुरक्षित परिसंपत्तियों में बढ़ोतरी होती है। इन ऋणपत्रों का बाजार मूल्य बढ़ता है। अब बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के पास पहले से अधिक धन होता है, जिसे ऋणदान बढ़ता है, पहले से अधिक व्यापार निवेश होता है, और आर्थिक क्रियाकलाप को प्रोत्साहन मिलता है। जब अर्थव्यवस्था फिर से अच्छी हो जाती है तो केंद्रीय बैंक इन परिसंपत्तियों को बेच देता है और बिक्री से प्राप्त नकदी का निष्फलन कर देता है ताकि व्यवस्था में अतिरिक्त धन बचा न रहे।

इस प्रकार, मात्रात्मक सुकरण का उद्देश्य बैंकिंग प्रणाली में तरल पूँजी भर देना होता है ताकि बैंक आर्थिक क्रियाकलाप को प्रोत्साहित करने के लिए धन उधार दे सकें। अतः इसे केंद्रीय बैंक के तुलन–पत्र और अर्थव्यवस्था के मौद्रिक आधार का एक सुविचारित विस्तार कहा जा सकता है। तथापि, इस प्रक्रिया से मुद्रास्फीति बढ़ने का खतरा सदैव बना रहता है।

वर्ष 2007–08 का वैश्विक वित्त संकट आपको याद ही होगा। इस दौरान ब्याज दरों में कटौती अनेक केंद्रीय बैंकों द्वारा लागू की गई थी, जिनमें प्रमुख रहे – फेडरल रिजर्व, यूरोपियन सैंट्रल बैंक, बैंक ऑफ जापान तथा बैंक ऑफ इंग्लैण्ड। ऐसे उपाय गैर–परंपरागत मौद्रिक नीतियों से गहरे जुड़े थे, यथा ऋणपत्रों का क्रय।

वैश्विक वित्त संकट के उपरांत विश्व भर में केंद्रीय बैंकों की ओर से परिसंपत्तियों की खरीद बड़े पैमाने पर हुई।

10.6 मौद्रिक नीति की कमियाँ

ब्याज दरें निर्धारित करने संबंधी टेलर के नियम के अनुसार, यदि अर्थव्यवस्था मुद्रास्फीतिकारी रीति से काम कर रही हो अथवा यदि उत्पादन का स्तर संभावित उत्पादन स्तर से ऊपर जा रहा हो तो वर्तमान ब्याज दर मानक ब्याज दर से अधिक कर दी जानी चाहिए। परंतु जब मुद्रास्फीति का वर्तमान स्तर मुद्रास्फीति की लक्षित दर से नीचे हो, अथवा उत्पादन का स्तर संभावित उत्पादन स्तर से नीचे जा रहा हो तो केंद्रीय बैंक को वर्तमान ब्याज दर मानक ब्याज दर से कम कर देनी चाहिए। वैसे प्रायः ब्याज दर निर्धारण इतना आसान नहीं होता। ऐसा इसलिए है कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं में ब्याज दर विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में प्रचलित ब्याज दर से काफी कम होती है।

ब्याज दर निर्धारण संबंधी टेलर के नियम के अनुसार, यदि ब्याज दर शून्य के करीब अथवा ऋणात्मक पक्ष पर अवनत हो तो केंद्रीय बैंक शायद मानक दर को और घटाने की स्थिति में न हो। वर्ष 2016 से ही जापान में, उदाहरण के लिए, ब्याज दर ऋणात्मक पक्ष में ही विद्यमान है (जापान में ब्याज की वर्तमान दर, मई 2021 में अंकित, (–) 0.10 प्रतिशत प्रति वर्ष है)। वर्ष 2007–2009 के वैश्विक वित्त संकट के पश्चात अनेक देशों को शून्य ब्याज दर की ऐसी दशाओं से दो–चार होना पड़ा। इससे पता चलता है कि मौद्रिक नीति की कोई सीमा नहीं होगी, परंतु विस्तारकारी प्रोत्साहन (राजकोषीय व्यय और ऋणपत्रों के गैर–परंपरागत क्रय के जरिए), यथा मात्रात्मक सुकरण ऐसी दशाओं में मदद कर सकता है।

बोध प्रश्न 3

1) हानि फलन (loss function) की संकल्पना स्पष्ट करें।

....

....

....

....

2) किसी मुद्रास्फीति–प्रतिकूल अर्थव्यवस्था के लिए हानि फलन का सचित्र वर्णन करें।

....

....

....

....

3) किसी अर्थव्यवस्था में ब्याज दर निर्धारण हेतु टेलर का नियम समझाएँ।

....

....

....

....

10.7 सार संक्षेप

इस इकाई में होने मुद्रा के परिमाण सिद्धांत पर विस्तृत चर्चा की। इस संदर्भ में हमने अल्पावधि और दीर्घावधि में मुद्रा की तटस्थता संबंधी संकल्पना को समझा।

इकाई में टेलर के नियम पर संक्षिप्त चर्चा की गई, जो कि बतलाता है कि किस प्रकार केंद्रीय बैंक मुद्रास्फीति में प्रत्येक एक–प्रतिशत वृद्धि के लिए मात्रिक ब्याज दर को बढ़ा दिया करता है ताकि अर्थव्यवस्था स्थिर हो।

किसी लिक्विडिटी ट्रैप जैसी स्थिति में मौद्रिक नीति के साधन निष्प्रभावी साबित हो सकते हैं। केंद्रीय बैंक मात्रात्मक सुकरण भी अपना सकता है, जो कि बैंकों की ऋणदान दरों को घटाकर बैंकिंग प्रणाली में तरल पूँजी भर देता है।

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1. मुद्रा–परिमाण सिद्धांत के अनुसार, किसी भी अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा और कीमतों के स्तर में एक सीधा संबंध होता है। तदनुसार, मुद्रा को तटस्थ रहना चाहिए। बहरहाल, अल्पावधि में मुद्रा तटस्थ नहीं रहती। विस्तृत विवरण के लिए पाठांश 10.2 देखें।
2. मौद्रिक हस्तांतरण मौद्रिक नीति और कुल माँग के बीच एक कड़ी है। हस्तांतरण क्रियातंत्र के विभिन्न माध्यम हैं। विस्तृत विवरण के लिए पाठांश 10.2 देखें।

बोध प्रश्न 2

1. विस्तृत विवरण के लिए पाठांश 10.3 देखें।
2. देखें पाठांश 10.3.1 और उत्तर दें।

बोध प्रश्न 3

1. देखें समीकरण (10.1) और व्याख्या करें।
2. देखें चित्र 10.3 और व्याख्या करें।
3. देखें समीकरण (10.3) और व्याख्या करें।

इकाई 11 समष्टि–अर्थशास्त्रीय विचारों का उद्भव –I*

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 समष्टि–अर्थशास्त्रीय विवेचन के विभिन्न विचार सम्प्रदाय

11.2.1 आर्थिक सिद्धांत

11.2.2 महत्वपूर्ण समष्टि–अर्थशास्त्रीय विचार संप्रदाय

11.3 क्लासिकल सिद्धांत

11.3.1 उत्पादन और नियोजन

11.3.2 मुद्रा और मूल्य स्तर का मात्रात्मक सिद्धांत

11.3.3 'से' का नियम

11.3.4 नीति निर्देश

11.4 केन्जियन सिद्धांत

11.4.1 कुल माँग

11.4.2 IS-LM प्राधार

11.4.3 कुल आपूर्ति

11.4.4 फिलिप्स वक्र

11.4.5 नीति निर्देश

11.5 सार–संक्षेप

11.6 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि –

- समष्टि अर्थशास्त्र के विभिन्न विचार संप्रदायों की मुख्य विशेषताएँ स्पष्ट कर सकें;
- ऐसी अनेक अवधारणाओं का संदर्भ खोज सकें जिन्हें हमने समष्टि अर्थशास्त्र विषयक पिछली इकाइयों के माध्यम से जाना;
- क्लासिकल और केन्जियन सिद्धांतों को संक्षेप में दोहरा सकें; तथा
- समझ सकें कि किस प्रकार समष्टि–अर्थशास्त्रीय चर विषयक अनुभवजन्य साक्ष्य नये सिद्धांतों के विकास की ओर ले जाते हैं।

11.1 प्रस्तावना

अब तक आप यह समझ ही चुके होंगे कि समष्टि–अर्थशास्त्रीय सिद्धांत कालांतर में समष्टि–अर्थशास्त्रीय परिवेश में परिवर्तनों की वजह से ही विकसित हुए। आरंभ में, उन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं शती–पूर्वार्ध में, इस बात को लेकर अर्थशास्त्रियों के बीच सहमति थी कि कोई भी अर्थव्यवस्था आय, उत्पादन और रोजगार में अधिक घट–बढ़ के

* सुश्री अर्चना अग्रवाल, सहायक प्राध्यापक, हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

बिना भी निर्बाध आगे बढ़ सकती है। इससे मूल्य, वेतन और ब्याज दर जैसे आर्थिक चरों में न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप की माँग सामने आई।

उनकी ओर से यह सुझाव दिया गया था कि इन चरों के स्तर का निर्धारण बाजार शक्तियों (जैसे आपूर्ति और माँग) पर छोड़ दिया जाना चाहिए। ये चिरसम्मत विचार कीमतों और मजदूरी के लचीलेपन पर आधारित थे। जब 1930 के दशक में आय, उत्पादन, रोजगार और मूल्य स्तर में भारी गिरावट देखी गई, ग्रेट डिप्रेशन अर्थात् वर्ष 1929—1933 में महामंदी की घटना ने समकालीन घटनाओं की नई विवेचना खोजे जाने की ओर प्रवृत्त किया।

जॉन मेनार्ड कीन्स ने प्रचलित विचारों के विपरीत तर्क देते हुए कहा कि कीमतें और मजदूरी लचीली नहीं होतीं बल्कि वे चिपचिपी होती हैं। उन्होंने निर्धारित किया कि मंदी की स्थिति का मुकाबला करने के लिए सरकार को बाजार में सक्रिय रूप से हस्तक्षेप करना चाहिए। उनका यह नुस्खा पारंपरिक सोच के प्रति बहुत उग्र था, और इतना विश्वसनीय था कि इसे 'केन्जियन क्रांति' की संज्ञा दी गई।

बहरहाल, अर्थशास्त्रियों में इस बात पर कोई सहमति नहीं है कि किसी अर्थव्यवस्था में कीमतों, मजदूरी, उत्पादन आदि में समायोजन कैसे होता है। सन 1970 के दशक के दौरान दुनिया के प्रमुख देशों में बढ़ती कीमतें, घटता रोजगार, केन्जियन के निदान की निष्प्रभाविता आदि कुछ खास आर्थिक घटनाओं ने इस विषय पर नवीन विचार प्रस्तुत किए जाने की ओर प्रवृत्त किया कि कोई अर्थव्यवस्था कैसे काम करती है।

रॉबर्ट ई. लुकास ने चिरसम्मत विचारों को पुनर्जीवित किया और कहा कि बाजार में सरकारी हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए क्योंकि यह निष्प्रभावी रहता है। यह तर्क इतना विश्वसनीय था कि कुछ लोगों ने इसे 'केन्जियन विचारों की प्रति—क्रांति' करार दिया।

आर्थिक उतार—चढ़ाव (व्यापार चक्र) के स्रोत विषयक विचारों में भी भिन्नता देखी जाती है। मूल रूप से दो विचार संप्रदाय बताए जाते हैं — क्लासिकल और केन्जियन ।

इनमें से 'क्लासिकल' शब्द जॉन मेनार्ड केन्स द्वारा गढ़ा गया, जो कि अर्थशास्त्रियों द्वारा उनके सामने आने से पूर्व प्रस्तुत किए गए विचारों को प्रतिबिंबित करता था। इन क्लासिकल अर्थशास्त्रियों में प्रमुख हैं — एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो, थॉमस माल्थस और जॉन स्टुअर्ट मिल।

अनेक विषयों पर क्लासिकल और केन्जियन अर्थशास्त्री भिन्न—भिन्न मत रखते हैं, यथा —

1. उत्पादन, रोजगार और कीमतों के निर्धारण में आपूर्ति और माँग द्वारा निभाई गई सापेक्ष भूमिकाएँ;
2. अर्थव्यवस्था में कीमतों और मजदूरी दर का लचीलापन; और
3. वास्तविक क्षेत्र और मौद्रिक क्षेत्र के बीच विरोधाभास।

क्लासिकल अर्थशास्त्र का मुख्य आधार यह मूल अवधारणा रही है कि 'आपूर्ति अपनी माँग स्वयं पैदा करती है।' इसे प्रायः 'से के नियम' के रूप में जाना जाता है, जो कि इस सिद्धांत के प्रतिपादक जे. बी. से के नाम पर है। बहरहाल, केन्जियन अर्थशास्त्री इस तरह की संभावना से इनकार करते रहे हैं, खासकर जब व्यापार मंदी का दौर चल रहा हो।

11.2 समष्टि–अर्थशास्त्रीय विवेचन के विभिन्न विचार सम्प्रदाय

समष्टि अर्थशास्त्र के विभिन्न विचार सम्प्रदाय विश्व के आर्थिक इतिहास के साथ निकटता से जुड़े हुए हैं। जैसा कि पिछले पाठांश में बताया गया है, केन्जियन सिद्धांत ग्रेट डिप्रेशन की प्रतिक्रिया स्वरूप अस्तित्व में आया। विश्व अर्थव्यवस्था में आगे के घटनाक्रम ने नए–नए विचारों और नए–नए विचार संप्रदायों का सूत्रपात किया। वास्तव में, अर्थशास्त्र की विशेष शाखा के रूप में समष्टि अर्थशास्त्र केन्जियन अर्थशास्त्र से पहले अस्तित्व में ही नहीं था। अतः क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने विश्लेषण के व्यष्टि–अर्थशास्त्रीय उपकरणों के माध्यम से ही समष्टि–अर्थशास्त्रीय दृश्यघटनाओं की व्याख्या की।

जैसा कि हम आगे पढ़ेंगे, न्यू–क्लासिकल अर्थशास्त्र के रूप में क्लासिकल अर्थशास्त्र के पुनरुद्धार ने अर्थशास्त्र के व्यष्टिक आधार पर जोर दिया। मगर जैसा कि आप जानते हैं, केन्जियन अर्थशास्त्र ने 'समष्टि अर्थशास्त्र के व्यष्टिक आधार' की उपेक्षा ही की।

11.2.1 आर्थिक सिद्धांत

चलिए, आगे की चर्चा 'सिद्धांत' की अवधारणा से शुरू करते हैं। ये सिद्धांत किसी

'दृश्यघटना' को समझने, समझाने और पूर्वानुमान करने के लिए विकसित किए जाते हैं। जैसा कि आप जानते हैं, दृश्यघटना का अर्थ होता है – कोई अवलोकनीय घटना।

व्यष्टि अर्थशास्त्र में आपके पास दो सिद्धांत होते हैं – फर्म का सिद्धांत और उपभोक्ता व्यवहार सिद्धांत।

फर्म का सिद्धांत आपको यह समझने में मदद करता है कि प्रदा मूल्य, वेतन दर अथवा बाजार संरचना आदि आर्थिक चरों में बदलाव होने पर फर्म कैसे व्यवहार करेगी। इसी प्रकार, उपभोक्ता व्यवहार सिद्धांत आपको कौन–सी जिंस खरीदनी है, कितनी मात्रा में खरीदनी है, कैसे उसकी उपयोगिता को अधिकतम करना है, आदि घरेलू निर्णय अर्थात् परिवारों का व्यवहार समझने में मदद करता है। यह हमें इस बात का पहले से ही पता लगा लेने में मदद करता है कि प्रदा मूल्य और पारिवारिक आय के स्तर में परिवर्तन होने पर किसी परिवार में होने वाले बदलावों की प्रकृति कैसी होगी।

समष्टि अर्थशास्त्र में हम वृहत् अर्थशास्त्रीय दृश्यघटना को समझने, समझाने और पूर्वानुमान करने के लिए सिद्धांत विकसित करते हैं। चलिए, एक यथार्थपूर्ण उदाहरण लेते हैं।

मान लीजिए कि सर्वत्र तेल संकट छाया है अर्थात् कच्चे तेल की कीमतों में अचानक और अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। विश्व अर्थव्यवस्था कुछ विशिष्ट तरीकों से इस पर प्रतिक्रिया करेगी। एक ओर तेल निर्यातक देश अपनी आय की आमद बढ़ा चुके होंगे तो दूसरी ओर पेट्रोलियम का आयात करने वाले देश अपनी उत्पादन लागत में वृद्धि का अनुभव करेंगे। समष्टि–अर्थशास्त्रीय सिद्धांत हमें स्थिति की व्याख्या करने और सरकारों द्वारा किए जाने वाले नीतिगत उपायों का सुझाव देने में सक्षम होना चाहिए।

इस प्रकार, आर्थिक सिद्धांत आर्थिक घटनाओं की ऐसी व्याख्याओं का संग्रह है जिन्होंने मुद्दों और विचार प्रक्रिया संबंधी हमारी सोच को बदल दिया है। यदि हम आर्थिक चिंतन के इतिहास को देखें तो पाएँगे कि आर्थिक सिद्धांत सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक घटनाक्रम का प्रतिबिंब रहे हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

नए विचारों का विकास और पुराने विचारों का परित्याग अक्सर प्रमुख आर्थिक दृश्यघटनाओं के प्रतिक्रियास्वरूप हुआ है। प्रायः हमारे समक्ष एक और अवधारणा आती है – परिकल्पना। तर्क और तर्कसंगतता पर आधारित किसी भी 'परिकल्पना' को एक अस्थायी कथन कहा जा सकता है।

जब किसी परिकल्पना को बार–बार दोहराया जाता है और उसकी पुष्टि हो जाती है तो यह एक सिद्धांत बन जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी सिद्धांत को गलत साबित नहीं किया जा सकता। आर्थिक इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब किसी नए सिद्धांत ने किसी मौजूदा सिद्धांत को पलट दिया। जैसा कि हम इस इकाई में देखेंगे, कीन्स की अवधारणाओं ने सन 1930 के दशक में क्लासिकल सिद्धांत के पतन की ओर प्रवृत्त किया। तदंतर, सन 1970 के दशक में विश्व आर्थिक घटनाचक्र ने क्लासिकल सिद्धांत को 'न्यू–क्लासिकल सिद्धांत' के रूप में पुनर्जीवित किए जाने की ओर अग्रसर किया।

फिर सन 1980 के दशक में केन्जियन अर्थशास्त्रियों ने केन्जियन सिद्धांत की कुछ कमियों की भरपाई की, जैसा कि न्यू–क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने बताया है। परिणामतः एक नए विचार संप्रदाय 'न्यू–केन्जियन अर्थशास्त्र' का उदय हुआ।

11.2.2 महत्वपूर्ण समष्टि–अर्थशास्त्रीय विचार संप्रदाय

समष्टि अर्थशास्त्र में सबसे शुरुआती अवधारणाओं में से कुछ, जिन्हें आज क्लासिकल सिद्धांत या शास्त्रीय सिद्धांत के रूप में जाना जाता है, 18वीं और 19वीं शताब्दी में पूँजीवाद नामक एक नई आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के प्रभुत्व के साथ उभरीं। क्लासिकल सिद्धांतकारों ने उस समय देखे गए समाजों की धन–सम्पत्ति में भारी वृद्धि को समझने और समझाने का प्रयास किया। सन 1930 के दशक की महामंदी तक इन अर्थशास्त्रियों के विचारों का बोलबाला रहा। इन अर्थशास्त्रियों ने तर्क दिया कि लचीली कीमतों की वजह से ही अर्थव्यवस्थाओं में प्रबल आत्म–शोधन के गुण आते हैं। ये गुण ही सुनिश्चित करते हैं कि कुल माँग में कोई कमी न हो और अर्थव्यवस्था अपने पूर्ण रोजगार स्तर पर उत्पादन करती रहे।

कालांतर में पुराने क्लासिकल अर्थशास्त्र के कुछ विचारों को परिष्कृत कर आधुनिक बना दिया गया, जिससे 'वैज्ञानिक' **नियोक्लासिकल सिद्धांत** या नवशास्त्रीय सिद्धांत उपयोगिता सिद्धांत में अपनी नींव के साथ सीमांतवाद पर जोर देते हुए विकसित हुआ। अब गणितीय कठोरता अभिव्यक्ति का स्वाभाविक रूप बन गई। उपभोक्ता सिद्धांत के सममित फर्म का सिद्धांत अल्फ्रेड मार्शल के साथ विकसित हुआ। नियोक्लासिकल सिद्धांत समकालीन व्यष्टि–अर्थशास्त्रीय सिद्धांत का आधार अवश्य है लेकिन लचीली कीमतों के आधार पर बाजार की स्वचालित, स्व–समंजक प्रकृति ने इस निष्कर्ष को दोहराया कि अर्थव्यवस्था रोजगार और उत्पादन के पूर्ण नियोजन स्तर पर उत्पादन करेगी।

बाजार की स्वचालित, स्व–समंजक प्रकृति में विश्वास का निहितार्थ यह भी था कि बाजार में सरकार का हस्तक्षेप न्यूनतम हो और आर्थिक अभिकर्ताओं के बीच अनुबंध लागू करने तक ही सीमित हो। सन 1930 के दशक की महामंदी ने बाजारों के स्वयं समंजन में उसकी आस्था को झूठला दिया। एक विश्वव्यापी घटना के रूप में ग्रेट डिप्रेशन ने सभी प्रमुख पूँजीवादी देशों को प्रभावित किया। एक–चौथाई से भी अधिक श्रम बल बेरोजगार हो गया। किसी शास्त्रीय अथवा नव–शास्त्रीय सिद्धांत द्वारा व्यापार मंदी की व्याख्या नहीं की जा सकती।

बस इसी संदर्भ में जॉन मेनार्ड कीन्स अपना सिद्धांत लेकर आगे आए, जो कि आज **केन्जियन सिद्धांत** के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार, बेरोजगारी कुल माँग में कमी का परिणाम थी जो कि स्वयं अपर्याप्त निवेश का परिणाम थी। केन्जियन सिद्धांत ने माँग को प्रोत्साहित करने और इस तरह रोजगार बढ़ाने के लिए सरकारी नीति की वकालत की। इसके बाद दो विचारधाराओं को एक में ही समेट देने का प्रयास किया गया, जिसे 'नियोक्लासिकल संश्लेषण' की संज्ञा दी गई। तदंतर, विशेष रूप से सन 1970 के दशक के बाद, **मोनेटरिज्म** अर्थात् अर्थवाद, **न्यू क्लासिकल** अर्थात् नवशास्त्रीय और **न्यू केन्जियन** अर्थात् नव–केन्जियन मॉडल सामने आए। बहरहाल, कुछ और समकालीन आर्थिक सिद्धांतों के साथ इन पर चर्चा हम अगली इकाई में ही करेंगे।

समकालिकतः ऊपर उल्लिखित मुख्यधारा के आर्थिक सिद्धांतों के विकास के साथ, एक ओर संस्थागत अर्थशास्त्र का उद्‌भव भी देखा गया तो दूसरी ओर **मार्क्सवादी अर्थशास्त्र** का उदय भी। इन परंपराओं ने मुख्यधारा के सिद्धांत को लगभग पूरी तरह से खारिज कर दिया। ये विचार नवशास्त्रीय या / और केन्जियन अर्थशास्त्र से स्वतंत्र रहकर द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की अवधि में विकसित हुए।

सन 1950 के दशक में हैरोड, डोमर, कलडोर आदि कुछ अर्थशास्त्रियों ने केन्जियन अर्थशास्त्र को अल्पावधि से दीर्घावधि तक बढ़ा दिया क्योंकि बड़े पैमाने पर निवेश की वजह से उत्पादन क्षमता में वृद्धि देखी जाती है।

यह आर्थिक विकास की ओर ले जाता है। इन अर्थशास्त्रियों को पोस्ट–केन्जियन अर्थात् कीन्स–उपरांत अर्थशास्त्रियों के रूप में जाना जाता है और उनका मुख्य सरोकार आर्थिक संवृद्धि से ही होता है।

अब इन शब्दों के साथ हम इस पाठांश को समाप्त करते हैं कि सोलो का नियोक्लासिकल विकास मॉडल पोस्ट–केन्जियन अर्थशास्त्र के जवाब में ही था।

11.3 क्लासिकल सिद्धांत

अर्थशास्त्र के चिरसम्मत सिद्धांत को **क्लासिकल सिद्धांत** नाम देने का श्रेय जॉन मेनार्ड कीन्स को दिया जाता है। उन्होंने इस पदबंध का प्रयोग उन सभी अर्थशास्त्रियों का संदर्भ देने के लिए किया था जिन्होंने सन 1930 के दशक से पहले लिखा था। वैसे एक और वर्गीकरण भी दो अवधियों के बीच अंतर करता है, यथा –

1. **क्लासिकल** या शास्त्रीय काल जो एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो, जॉन स्टुअर्ट मिल, जेबी सईद व अन्य (18वीं और 19वीं शताब्दी) के काम का संदर्भ देता है, और
2. अल्फ्रेड मार्शल, ए.सी. पिगु व अन्य (20वीं शताब्दी) के प्रभुत्व वाला **नियोक्लासिकल** या नवशास्त्रीय काल।

दरअसल, क्लासिकल अर्थशास्त्र 'वाणिज्यवाद' संबंधी अवधारणाओं की आलोचना स्वरूप उभरा। वाणिज्यवादियों का मानना था कि किसी भी राष्ट्र की धन–संपत्ति उसके पास बुलियन अर्थात् सोने और चांदी की मात्रा पर निर्भर करता है। अतः उन्होंने प्रशुल्क और परिदान के जरिए निर्यात बढ़ाकर अधिकतम करने और आयात घटाकर न्यूनतम कम करने संबंधी नीतियों को अपनाया। इससे दुनिया में साम्राज्यवाद को बढ़ावा मिला। दूसरी ओर, क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने इस बात पर जोर दिया कि किसी भी 'राष्ट्र की धन–संपत्ति' उसके वास्तविक उपादानों पर निर्भर होती है और धन को केवल विनिमय के माध्यम के

रूप में लिया जाना चाहिए। यहाँ आपका ध्यान निश्चय ही इस बात पर जाएगा कि एडम स्मिथ की पुस्तक का नाम *वेल्थ ऑफ नेशंस* (1776) ही है।

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने माना कि मजदूरी और कीमतें पूरी तरह से लचीली होती हैं, जिसकी वजह से उत्पादन अपने पूर्ण नियोजन स्तर पर देखा जाता है। साथ ही, कुल उत्पादन यथेष्ट मात्रा में माँग उत्पन्न करता है और इस प्रकार से का नियम सिद्ध होता है। जे.बी. से के अनुसार, 'आपूर्ति अपनी माँग स्वयं पैदा करती है।' इस सिद्धांत में कुल उत्पादन स्तर पूर्ण रोजगार स्तर पर अचर होता है – मुद्रा आपूर्ति केवल मूल्य स्तर निर्धारित करती है। साथ ही, क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने अर्थव्यवस्था की स्व–समंजनकारी प्रवृत्तियों पर जोर दिया। चूँकि अर्थव्यवस्था अपने उत्पादन के पूर्ण नियोजन स्तर पर स्वतः लौटती है, क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक नीतियों में सरकार के हस्तक्षेप को सख्त नापसंद किया। क्लासिकल सिद्धांत के मूल सिद्धांतों को उत्पादन फलन, श्रम बाजार और पूँजी बाजार की मदद से समझा जा सकता है। 'मुद्रा का मात्रात्मक सिद्धांत' मूल्य स्तर के निर्धारण की व्याख्या करता है।

11.3.1 उत्पादन और नियोजन

प्रारंभिक समष्टि अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रम BECC 103 की इकाई 9 में हमने क्लासिकल सिद्धांत पर विस्तृत चर्चा की है – यहाँ हम उसमें से कुछ बातें संक्षेप में दोहराते हैं।

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का मानना था कि फर्म और श्रमिक तीन गुण सदैव दर्शाते हैं, यथा –

दोनों आशावादी होते हैं,

1. दोनों को पूर्ण ज्ञान होता है, और
2. दोनों पूरी तरह से प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियों में काम करते हैं।

दूसरे, मजदूरी और कीमतें पूरी तरह से लचीली होती हैं। अपना लाभ अधिकतम करने वाली फर्मों के लिए श्रम की माँग उत्पादन मूल्य को मजदूरी और श्रम के सीमांत उत्पाद के अनुपात के समतुल्य कर दर्शाई जाती है।

तीसरे, मूल्य या कीमत (P) उत्पादन की एक इकाई बेचकर प्राप्त सीमांत आय (MR) के बराबर होती है और W/MPN उत्पादन की कोई अतिरिक्त इकाई प्रस्तुत करने की सीमांत लागत होती है। वास्तविक वेतन या मजदूरी के लिहाज से श्रम माँग वक्र (W/P) कुछ और नहीं बल्कि श्रम का सीमांत उत्पाद (MPN) ही होता है। इससे हमें श्रम के लिए एक नकारात्मक रूप से प्रवण माँग वक्र प्राप्त होता है। संकेतात्मक रूप से,

$$N_d = f(W/P) \qquad \ldots (11.1)$$

श्रम की आपूर्ति उपयोगिता अधिकतम करने वाले वैयक्तिक श्रमिक संबंधी अवधारणा पर आधारित होती है और सकारात्मक रूप से वास्तविक वेतन (W/P) पर निर्भर करती है, यथा –

$$N_s = g(W/P) \qquad \ldots (11.2)$$

मजदूरी और कीमतों के पूर्ण लचीलेपन की अवधारणा को ध्यान में रखते हुए, श्रम के पूर्ण नियोजन के साथ श्रम बाजार संतुलन में है। श्रम बाजार हमेशा इस बात की अनुमति देता है कि श्रम की आपूर्ति श्रम की माँग के बराबर हो और कोई 'अनैच्छिक बेरोजगारी' न हो (देखें चित्र 11.1)।

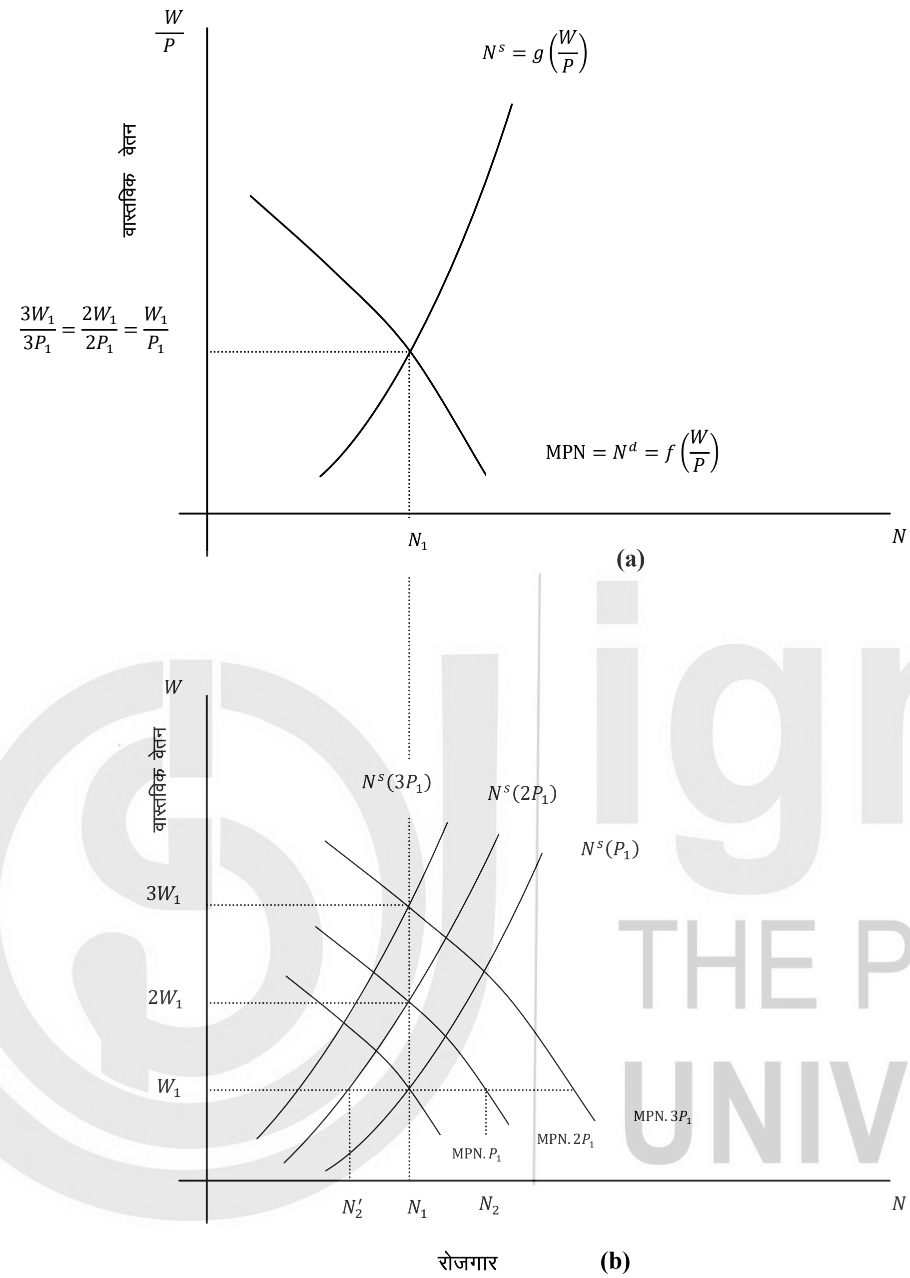

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

चित्र 11.1: श्रम आपूर्ति और माँग फलन

चित्र 11.1 के ऊपरी खंड में हम वास्तविक वेतन के फलन स्वरूप श्रम आपूर्ति और श्रम माँग $\left(\frac{W}{P}\right)$ प्रस्तुत करते हैं, जबकि इसी चित्र के निचले खंड में हम श्रम आपूर्ति और श्रम माँग को मौद्रिक वेतन के फलन के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

जब मूल्य स्तर P_1 से बढ़कर P_2 पर आ जाता है और फिर P_3 की ओर बढ़ जाता है तो वास्तविक वेतन को उसी स्तर पर बनाए रखा जा सकता है, बशर्ते मात्रिक वेतन बढ़कर क्रमशः 2W और 3W पर पहुँचे। यदि उत्पादन मूल्यों में तो वृद्धि होती है पर वेतन दर में कोई वृद्धि नहीं होती तो श्रम आपूर्ति घट जाएगी। समीकरण $Y = (\overline{K}, N)$ की भाँति कोई उत्पादन फलन ज्ञात होने पर श्रम का पूर्ण नियोजन उत्पादन के पूर्ण नियोजन स्तर में परिवर्तित हो जाता है। इससे हमें उत्पादन के पूर्ण नियोजन स्तर पर एक पूर्णतः लोचहीन कुल आपूर्ति (AS) वक्र प्राप्त होता है।

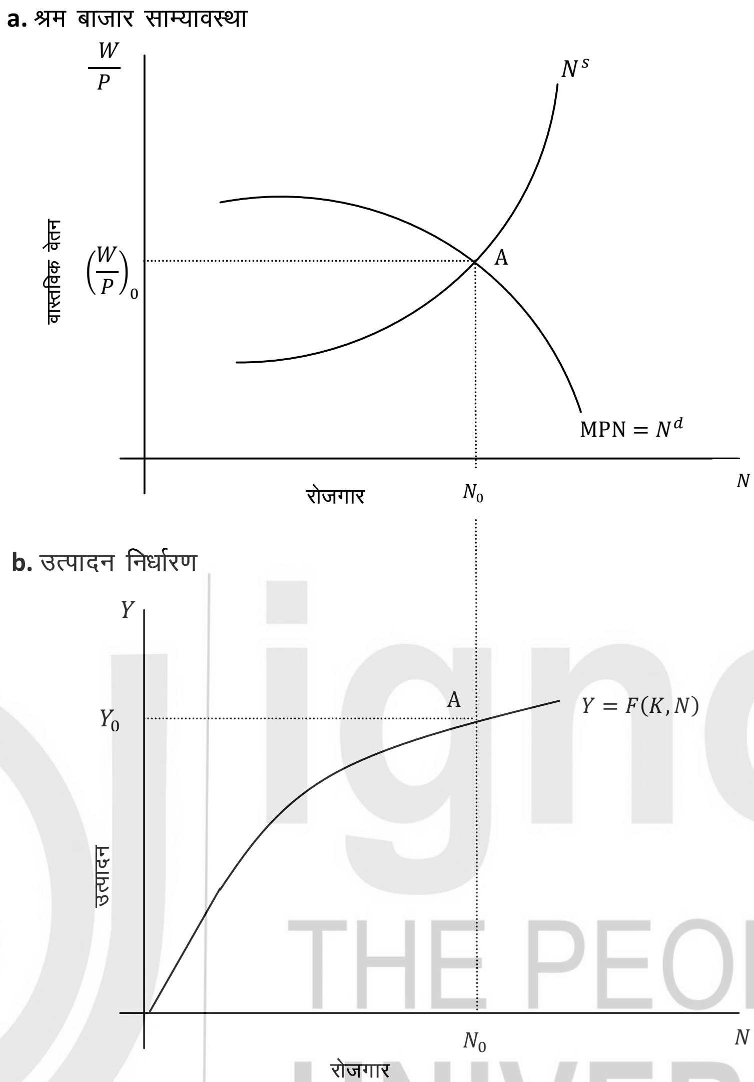

चित्र 11.2: साम्य उत्पादन और रोजगार

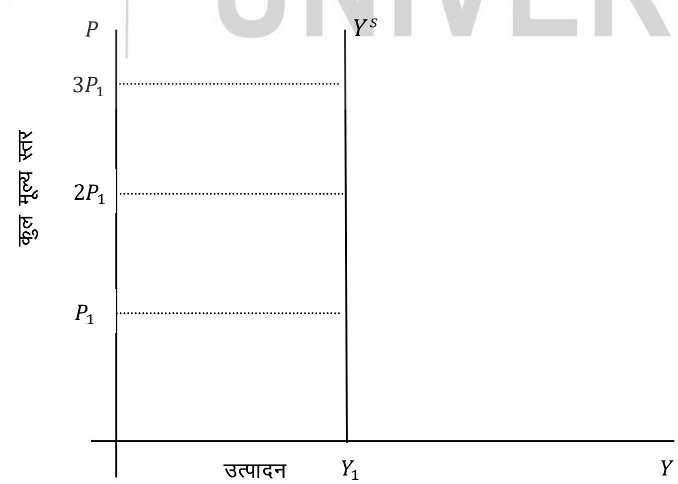

चित्र 11.3: क्लासिकल कुल आपूर्ति वक्र

11.3.2 मुद्रा और मूल्य स्तर का मात्रात्मक सिद्धांत

क्लासिकल सिद्धांतकारों का मानना था कि मुद्रा की माँग इसलिए की जाती है ताकि वह विनिमय के एक माध्यम के रूप में अपना कार्य कर सके। तदनुसार, अर्थव्यवस्था में मुद्रा का कुल भंडार (मुद्रा आपूर्ति गुणा प्रसार का वेग) लेन–देन के मात्रिक मान अथवा अर्थव्यवस्था में आय या उत्पादन के मात्रिक मान के बराबर होता है।

संकेतात्मक रूप से –

$$MV \equiv PY \qquad \ldots (11.3)$$

समीकरण (11.3) से ज्ञात होता है कि यदि प्रसार का वेग पूर्व–निर्धारित ($V = \bar{V}$) हो और उत्पादन स्तर उत्पादन के पूर्ण नियोजन स्तर ($Y = \bar{Y}$) पर हो तो मूल्य स्तर (P) बहिर्जात रूप से की गई मुद्रा आपूर्ति के समानुपाती होता है, यथा –

$$P = (\bar{V}/\bar{Y}) \times M \qquad \ldots (11.4)$$

इस प्रकार, श्रम बाजार और उत्पादन फलन उत्पादन स्तर को निर्धारित करते हैं जबकि मुद्रा की आपूर्ति चीजों की क्लासिकल योजना में मूल्य स्तर निर्धारित करती है। मुद्रा समीकरण का मात्रात्मक सिद्धांत कुल माँग वक्र भी दर्शाता है (देखें चित्र 11.4)।

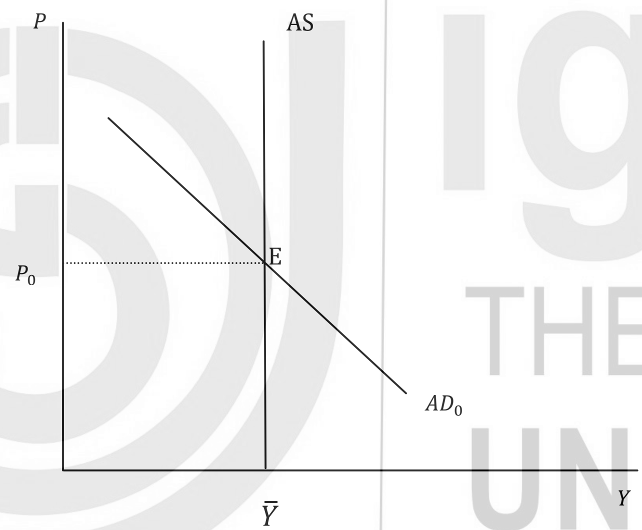

चित्र 11.4: साम्य उत्पादन और कीमतें

11.3.3 'से' का नियम

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का मानना था कि बचत (अर्थात् ऋण योग्य धन की आपूर्ति) सकारात्मक रूप से ब्याज की दर पर निर्भर करती है। दूसरी ओर, निवेश (अर्थात् ऋण योग्य धन की माँग) विलोमतः ब्याज की दर पर निर्भर करता है। ब्याज की दर के पूर्ण लचीलेपन से यह सुनिश्चित होता है कि ऋण देने योग्य मुद्रा का बाजार अर्थात् पूँजी बाजार हमेशा इस बात की अनुमति देता है कि बचत निवेश के बराबर हो अथवा निवेश और राजकोषीय घाटा मिलकर बचत के बराबर हो जाए (देखें चित्र 11.5)।

इस प्रकार, ब्याज की दर में परिवर्तन यह सुनिश्चित करते हैं कि कुल माँग की संरचना में परिवर्तन सकल माँग को प्रभावित नहीं करता है। सकल माँग हमेशा उत्पादन और उत्पादन के कुल स्तर के बराबर होगी।

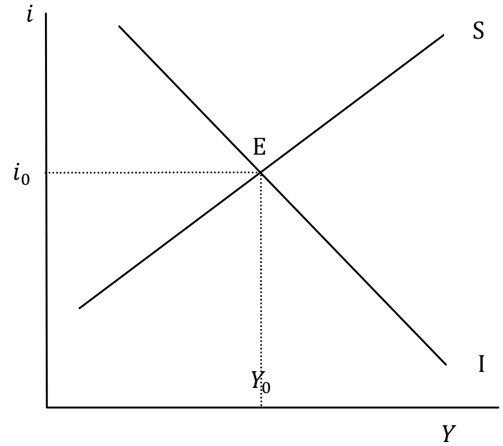

चित्र 11.5: पूँजी बाजार में साम्यावस्था

11.3.4 नीति निर्देश

कीमतों के लचीलेपन के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में बाजारों का स्व–समंजन होता है। मौद्रिक वेतन का लचीलापन और ब्याज दरों का लचीलापन यह सुनिश्चित करते हैं कि कुल माँग में बदलाव का असर उत्पादन पर न पड़े। आपूर्ति पक्ष, यथा – जनसंख्या, प्रौद्योगिकी और पूँजी निर्माण – ही वास्तविक उत्पादन और नियोजन निर्धारित करता है। मुद्रा आपूर्ति तो केवल कीमत जैसे मात्रिक चर ही निर्धारित करती है।

इसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के वास्तविक और मात्रिक संभागों के बीच विरोधाभास नजर आने लगता है, जिसे **क्लासिकल डाइकॉटमी** अर्थात् चिरसम्मत द्विधाकरण कहा जाता है। इससे 'मुद्रा की तटस्थता' भी जन्म लेती है, जिसके कारण पैसा किसी वास्तविक चर पर असर नहीं डाल पाता है। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार, सरकार को अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए क्योंकि इसमें पूर्ण नियोजन उत्पादन स्तर पर काम करने की प्रवृत्ति होती है।

बोध प्रश्न 1

1. क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने माँग की कमी की संभावना से इनकार क्यों किया? स्पष्ट करें।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. क्लासिकल सिद्धांत में मुद्रा की माँग में कमी से उत्पादन और कीमतों का स्तर कैसे प्रभावित होता है? स्पष्ट करें।

   ....

   ....

   ....

   ....

3. क्लासिकल मॉडल में विस्तारकारी राजकोषीय नीति के प्रभाव की व्याख्या करें (अपना उत्तर देने के लिए उपयुक्त आरेख का उपयोग करें)।

....

....

....

....

11.4 केन्जिय सिद्धांत

स्व–समंजनकारी बाजारों में अपने विश्वास के साथ क्लासिकल सिद्धांत उस ग्रेट डिप्रेशन की व्याख्या नहीं कर सका जिसने सन 1930 के दशक में अधिकांश विकसित अर्थव्यवस्थाओं को ध्वस्त कर दिया था। वास्तव में, पूँजीवादी देशों ने 19वीं शताब्दी में भी अनेक संकटों को झेला था, परंतु 20वीं शताब्दी में स्थिति और भी बदतर हो गई थी – सन 1930 के दशक की यह महामंदी उसी की पराकाष्ठा थी। इस संकट के चलते शेयर बाजार औंधे मुँह गिर पड़े, हजारों बैंक विफल हो गए, व्यापारियों ने निवेश और उत्पादन में कटौती की और लाखों श्रमिक बेरोजगार हो गए – अब तक की सबसे भीषण आर्थिक आपदाओं में से एक सुरसा की भाँति मुँह फैलाए खड़ी थी।

इसी संदर्भ में जॉन मेनार्ड कीन्स ने अपनी पुस्तक *द जनरल थ्योरी ऑफ एम्प्लॉयमेंट, इंटरेस्ट एंड मनी* की रचना की, जो कि आगे चलकर केन्जियन अर्थशास्त्र का आधार बन गई। कीन्स के अनुसार, उच्च बेरोजगारी **निम्न कुल माँग** का परिणाम थी जो कि स्वयं निम्न निवेश का परिणाम थी। इसके अलावा, कीन्स का मानना था कि नाममात्र की मजदूरी पूरी तरह से लचीली नहीं होगी बल्कि लोचहीन या कठोर होगी, जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार सुनिश्चित नहीं हो पाएगा। इसका तात्पर्य यह है कि **कुल आपूर्ति** सदैव पूर्ण नियोजन स्तर पर नहीं देखी जाएगी। जब हम कुल आपूर्ति (AS) और कुल माँग (AD) को एक साथ रखते हैं तो हमें उत्पादन और कीमतों का संतुलन स्तर को प्राप्त होता है।

11.4.1 कुल माँग

केन्जियन सिद्धांत में माल और मुद्रा बाजार एक दूसरे से जुड़े हुए माने जाते हैं। माल बाजार में खपत (और बचत) मुख्य रूप से वर्तमान सुलभ आय से निर्धारित होती है। यहाँ उस क्लासिकल सिद्धांत से पहला प्रमुख विचलन नजर आता है जहाँ बचत (और इसके कारण खपत) ब्याज दर का ही फलन होती थी।

केन्जियन उपभोग फलन को समीकरण (4.5) के रूप में दर्शाया जा सकता है, जहाँ चर c उपभोगार्थ सीमांत प्रवृत्ति (MPC) दर्शाता है और Y_d वर्तमान सुलभ आय इंगित करता है, यथा –

$$C = \overline{C} + cY_d \qquad \ldots (11.5)$$

जहाँ $c \leq 1$ माना जाता है।

निवेश ब्याज दर का एक ऋणात्मक फलन होता है, लेकिन निवेश फलन स्वयं निवेश की लाभप्रदता या फिर कीन्स के शब्दों में 'मन की लहर' पर निर्भर करता है। कीन्स का मानना था कि निवेश कुल माँग का एक अत्यधिक परिवर्तनशील घटक होता है, जिसे निम्नवत् दर्शाया जा सकता है –

$$I = \overline{I} - bi \qquad \ldots (11.6)$$

सरकारी व्यय (G) को बहिर्जात रूप से प्रदत्त और निवल निर्यात को NX द्वारा निरूपित मानते हुए **माल बाजार** में संतुलन निम्नलिखित समीकरणों से दर्शाया जा सकता है –

$$Y = C + I + G$$

और $$Y = C + I + G + NX \qquad \ldots (11.7)$$

जो कि क्रमशः बंद और खुली अर्थव्यवस्थाओं के लिए हैं।

क्लासिकल सिद्धांत से एक और प्रमुख विचलन ब्याज दर के निर्धारण में नजर आता है। कीन्स के अनुसार, मुद्रा की माँग और मुद्रा की आपूर्ति द्वारा ब्याज की दर **मुद्रा बाजार** में निर्धारित की जाती है। मुद्रा की आपूर्ति मौद्रिक अधिकारियों द्वारा स्पष्ट की जाती है और इसे बहिर्जात रूप से प्रदत्त माना जा सकता है।

मुद्रा की माँग तीन उद्देश्यों से नियंत्रित होती है –

1. लेन–देन के लिए,
2. पूर्वोपाय स्वरूप, और
3. सट्टा अभिप्राय अर्थात् बहुत लाभ की आशा से किए गए व्यापार हेतु।

मुद्रा की माँग संबंधी पूर्व सिद्धांतों की ही भाँति लेन–देन के लिए मुद्रा की माँग और पूर्वोपाय स्वरूप मुद्रा की माँग सकारात्मक रूप से लेन–देन की वास्तविक मात्रा अथवा वास्तविक आय के स्तर पर निर्भर करती है। कीन्स का योगदान धन संग्रह करने के लिए सट्टा अभिप्राय विषयक सैद्धांतीकरण में निहित था, जो कि मुद्रा की माँग को भावी ब्याज दर विषयक अपेक्षाओं पर निर्भर मानता है।

ब्याज की बहुत ऊँची दर (सामान्य से कहीं ऊँची) सट्टा लगाने के उद्देश्य से धन संग्रह करने वाले मुट्ठी भर लोगों के रूप में ही परिणाम देती है। ब्याज की निम्न दर (सामान्य से काफी कम), बहरहाल, ऐसी उम्मीदों की ओर ले जाती है कि ब्याज दर बढ़ जाएगी। इस प्रकार, यह मुद्रा की माँग में वृद्धि की ओर अग्रसर करता है। इससे हमें एक मुद्रा माँग फलन प्राप्त होता है, जो कि ब्याज दर से विलोमतः संबद्ध होता है। कीन्स ने ब्याज की बेहद नीची दरों पर *चलनिधि जाल* के संभावित अस्तित्व के विषय में भी लिखा है।

मुद्रा की माँग को $L = kY - hi$ के रूप में व्यक्त किया जा सकता है और मुद्रा बाजार में संतुलन ब्याज की उस दर पर होगा जहाँ मुद्रा की माँग (वास्तविक पदों में) वास्तविक मुद्रा आपूर्ति के बराबर होगी। संकेतात्मक रूप से,

$$\overline{M} / P = kY - hi \qquad \ldots (11.8)$$

इस प्रकार, केन्जियन वस्तु आयोजन–पद्धति में ब्याज दर और आय के साम्यावस्था मूल्यों को एक साथ निर्धारित किया जाना होता है क्योंकि माल और मुद्रा बाजार आपस में जुड़े हुए हैं।

11.4.2 IS-LM प्राधार

हिक्स और हैनसेन द्वारा प्रस्तुत IS-LM मॉडल एक सामान्य समष्टि–अर्थशास्त्रीय उपकरण है, जिसका इस्तेमाल अक्सर माल और मुद्रा बाजारों में एक साथ साम्यावस्था दर्शाते के लिए किया जाता है। यह मॉडल केन्जियन माँग वक्र की व्युत्पत्ति में हमारी मदद करता है।

नीचे दिया गया चित्र 11.6 देखें। यहाँ IS वक्र ब्याज दर (i) और आय (Y) का वह संयोजन दर्शाता है जहाँ माल बाजार साम्य अवस्था में है।

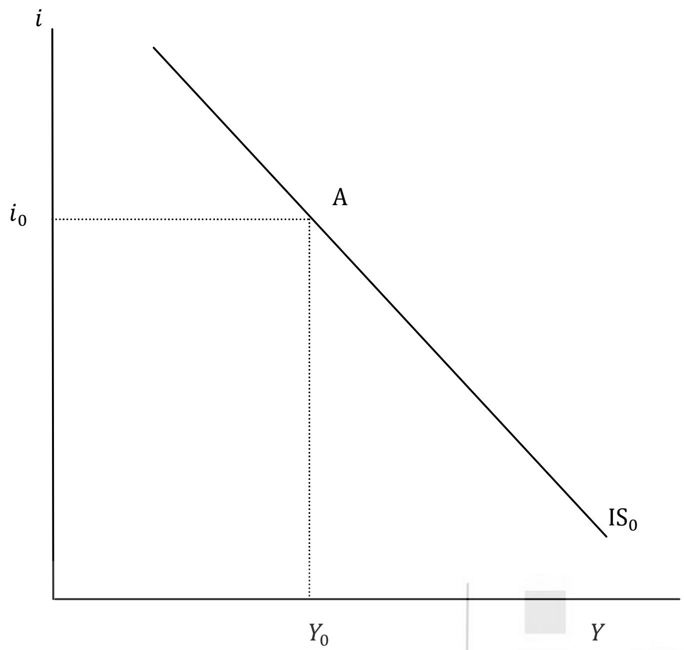

चित्र 11.6: **IS** वक्र

अब उसके नीचे दिया गया चित्र 11.7 देखें। यहाँ LM वक्र *i* और Y का वह संयोजन दर्शाता है जहाँ मुद्रा बाजार साम्य अवस्था में है। इन दोनों वक्रों का प्रतिच्छेदन अर्थव्यवस्था में *i* और Y के संतुलन स्तर दर्शाता है।

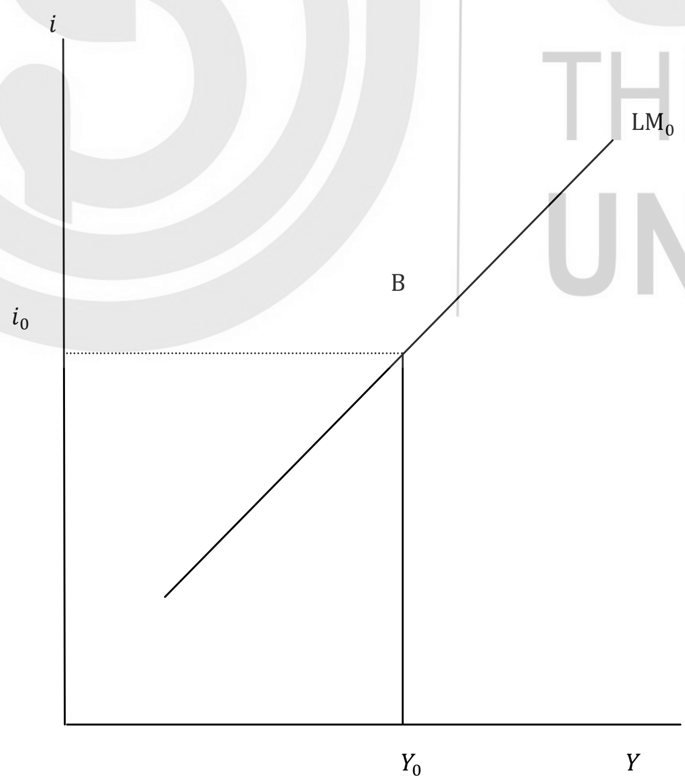

चित्र 11.7: **LM** वक्र

उक्त IS वक्र के लिए समीकरण निम्नवत् लिखा जाएगा –

$$Y = \alpha A - \alpha bi \qquad \ldots (11.9)$$

जहाँ, $\alpha = \frac{1}{1-c}$ (जिसे स्वतः व्ययशील गुणक भी कहा जाता है); $A = \overline{C} + \overline{I}$ (बंद अर्थव्यवस्था और शून्य सरकार वाले किसी मॉडल में स्वतः व्यय); चर b ब्याज दर पर निवेश व्यय की प्रभाव्यता है और चर i ब्याज की दर है।

ऊपर प्राप्त हुआ समीकरण (11.8) ही LM वक्र का समीकरण है, यथा –

$$\overline{M} / P = kY - hi$$

उपर्युक्त समीकरण में वास्तविक मुद्रा आपूर्ति बाईं ओर और मुद्रा की माँग (वास्तविक पदों में) दाईं ओर दर्शाई गई है। आय के प्रति मुद्रा माँग की अनुक्रियाशीलता प्राचल k से दर्शाई गई है और ब्याज दर के प्रति मुद्रा माँग की अनुक्रियाशीलता प्राचल h से दर्शाई गई है। चलनिधि जाल की कोई भी स्थिति ब्याज दर के प्रति मुद्रा माँग को असीम रूप से लोचदार बना देती है। ऐसी ब्याज दर पर संवादी LM वक्र समतल हो जाता है (देखें चित्र 11.8)।

चित्र 11.8: चलनिधि जाल में फँसा LM वक्र

आपको याद ही होगा कि क्लासिकल मॉडल में अर्थव्यवस्था में साम्य उत्पादन सदैव पूर्ण नियोजन स्तर पर होता है। यदि इस साम्य अवस्था से कोई विचलन होता है तो लचीली कीमतों और वेतन दर के माध्यम से तात्कालिक समायोजन हो जाता है। किंतु केन्जियन मॉडल में अर्थव्यवस्था में साम्यावस्था किसी भी स्तर पर देखी जा सकती है। अतः बड़े पैमाने पर बेरोजगारी व्याप्त होने पर भी अर्थव्यवस्था में संतुलन हो सकता है। तदनुसार, ब्याज की संतुलन दर ऐसी हो सकती है कि तदनुरूप उत्पादन स्तर पूर्ण नियोजन स्तर पर न रहे। इस प्रकार केन्जियन सिद्धांत के अंतर्गत पूर्ण रोजगार की गारंटी नहीं है।

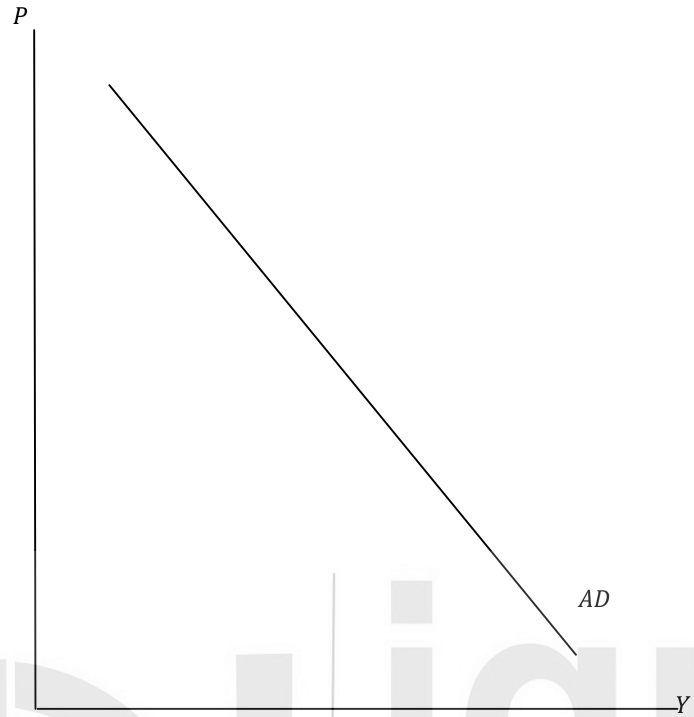

चित्र 11.9: केन्जियन मॉडल में कुल माँग वक्र

ऊपर दिए गए चित्र 11.9 में कुल माँग (AD) वक्र माल और मुद्रा दोनों बाजारों की युगपत साम्यावस्था द्वारा दर्शाया गया है। यह AD वक्र BECC 106 की इकाई 2 में उल्लिखित IS-LM मॉडल से लिया गया है।

11.4.3 कुल आपूर्ति

क्लासिकल सिद्धांत से भिन्न, कीन्स ने श्रम बाजार को संविदात्मक दृष्टिकोण से देखा। वेतन या मजदूरी को आमतौर पर नियोक्ताओं (फर्मों) और कर्मचारियों (श्रमिक वर्ग) के बीच किसी संविदा द्वारा अर्थात् समझौते के तौर पर निर्धारित किया जाता है। महामंदी अवधि संबंधी अपने अवलोकन के आधार पर कीन्स का मानना था कि वेतन दरें श्रम बाजार को अनुमति देने के लिए जल्दी से समायोजित नहीं होतीं।

जबकि क्लासिकल अर्थशास्त्री मौद्रिक वेतन के पूर्ण लचीलेपन में विश्वास करते थे, केन्जियन सिद्धांत वेतन में अनम्यता के लिए अनेक स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता है। वास्तव में, वेतन में अनम्यता अर्थात् लचीलेपन का अभाव वर्तमान परिदृश्य में अर्थशास्त्रियों के बीच अंतर का एक महत्वपूर्ण बिंदु बन गया है। क्लासिकल सिद्धांत के प्रति निष्ठा रखने के कारण ही ये अर्थशास्त्री अर्थात् न्यू–क्लासिकल अर्थशास्त्री बाजार में पूर्ण प्रतिस्पर्धा और कीमतों एवं वेतन दर में लचीलापन मानकर चलते हैं। दूसरी ओर, न्यू–केन्जियन अर्थशास्त्री बाजार में अपूर्ण प्रतिस्पर्धा और कीमतों एवं वेतन दर में लोचहीनता मानकर चलते हैं।

मजदूरी की अनम्यता वेतन दर को बेरोजगारी के साथ विलोमतः प्रभावित करती है और इस कारण सीधे रोजगार और आय के साथ भी बदलती है। कुल आपूर्ति (AS) वक्र उन कीमतों को दर्शाता है जिन पर उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर आपूर्ति की जाती है। फर्मों द्वारा वसूली जाने वाली कीमत उत्पादन की लागत पर निर्भर करती है। तात्पर्य यह है कि उत्पादन स्तर बढ़ने (बेरोजगारी घटने) के साथ वेतन दर या मजदूरी बढ़ती है। फलतः कीमतें उत्पादन स्तर में वृद्धि के साथ बढ़ती हैं।

तदनुसार, केन्जियन कुल आपूर्ति (AS) वक्र कीमतों और उत्पादन के बीच एक सकारात्मक संबंध दिखाता है, जो कि वेतन के पूर्ण लचीलेपन पर आधारित क्लासिकल सिद्धांत के ऊर्ध्वाधर AS वक्र से भिन्नता दर्शाता है।

यदि हम मजदूरी को पूरी तरह से कठोर मानकर चलें तो हमें पूरी तरह से समतल AS वक्र प्राप्त होता है। कीन्स ने दरअसल अल्पावधि पर ही चर्चा की है। व्यापार चक्र के मंदी दौर में अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी का उच्च स्तर देखा गया, जिसके कारण अल्पावधि में कुल माँग बढ़ने की वजह से वेतन दर में कोई वृद्धि नहीं हुई। इस प्रकार, हमें एक समतल (पूरी तरह से लोचदार) AS वक्र प्राप्त होता है, जिसका प्रायः केन्जियन AS वक्र के रूप में संदर्भ दिया जाता है। आर्थिक विवेचन में बाद के घटनाक्रम में इन आपूर्ति वक्रों का संदर्भ अल्पावधि AS वक्र (SRAS) के रूप में दिया जाने लगा। मध्यावधि में, बहरहाल, AS वक्र ऊर्ध्वमुखी प्रवण होता है (देखें BECC 106 की इकाई 2)।

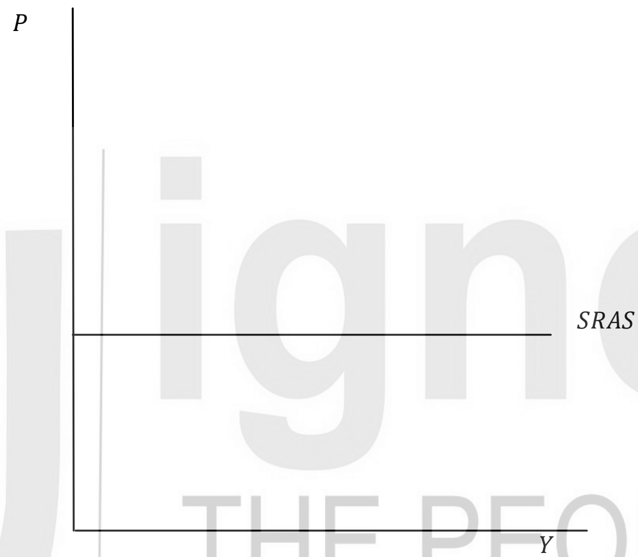

चित्र 11.10: केन्जियन AS वक्र

11.4.4 फिलिप्स वक्र

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का मानना था कि मुद्रा इस अर्थ में तटस्थ होती है कि उसकी आपूर्ति में होने वाले परिवर्तन उत्पादन और रोजगार जैसे वास्तविक चरों को प्रभावित नहीं करते (क्लासिकल डाइकॉटमी, जिस पर हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं)। उनके अनुसार, मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि से केवल कीमतों में वृद्धि होती है। कीन्स का मानना था कि मौद्रिक चर वास्तविक निहितार्थ रखते हैं। मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि से ब्याज दर में कमी आती है, जिससे निवेश के स्तर में वृद्धि होती है। निवेश के स्तर में वृद्धि से निवेश गुणक के माध्यम से उत्पादन में कई गुना वृद्धि होती है।

कीन्स, बहरहाल, किसी अर्थव्यवस्था में मौद्रिक और वास्तविक चरों के बीच कोई सैद्धांतिक संबंध नहीं दर्शा सके। उनकी पुस्तक *जनरल थ्योरी* के प्रकाशन के बहुत बाद में मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच एक विपरीत संबंध दर्शाया गया। इसे फिलिप्स वक्र (देखें BECC 106 की इकाई 6) के रूप में जाना जाता है क्योंकि इनके बीच अनुभवजन्य संबंध पहली बार ए.डब्ल्यू. फिलिप्स द्वारा वर्ष 1958 में दर्शाया गया था। समष्टि–अर्थशास्त्रीय सिद्धांत में आगे के घटनाक्रम में अल्पावधि फिलिप्स वक्र (SRPC) और दीर्घावधि फिलिप्स वक्र (LRPC) के बीच अंतर स्पष्ट किया गया। इस पर आगे और चर्चा इकाई 12 में की जाएगी।

फिलहाल यह कहना ही पर्याप्त होगा कि मौद्रिक वेतन की पूर्ण लोचता से कम ही SRAS और SRPC दोनों वक्रों के पीछे होती है। दूसरा वक्र अर्थात् SRPC ही मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच नीतिगत समझौताकारी समन्वयन का आधार होता है। केन्जियन अर्थशास्त्रियों का तर्क था कि कुछ मुद्रास्फीति की कीमत पर भी बेरोजगारी को कम करना बहुत महत्वपूर्ण होता है।

11.4.5 नीति निर्देश

साम्य उत्पादन और मूल्य स्तर AD और AS वक्रों के प्रतिच्छेदन से निर्धारित किए जाते हैं। जैसा कि पहले कहा गया, उत्पादन के पूर्ण नियोजन स्तर पर होने की कोई वजह नहीं होती है। कीन्स के अनुसार, पूर्ण नियोजन स्तर पर आने के उद्देश्य से यदि निजी व्यय पर्याप्त माँग पैदा करने के लिए यथेष्ट न हो तो सरकार को हस्तक्षेप करने और उच्चतर राजकीय व्यय के माध्यम से माँग पैदा करने की आवश्यकता होती है।

ब्याज दर कम करने और निवेश व्यय प्रोत्साहित करने के लिए विस्तारकारी मौद्रिक नीति का उपयोग करके भी माँग को बढ़ाया जा सकता है। बहरहाल, जब तरल पूँजी के लिए वरीयता बहुत अधिक हो तो मौद्रिक नीति ब्याज दर को पर्याप्त रूप से कम करने में सक्षम नहीं हो सकती है (चलनिधि जाल में फँसे होने पर मौद्रिक नीति निष्प्रभावी होती है)। कीन्स ने बेरोजगारी दूर करने और उत्पादन बढ़ाने के लिए राजकोषीय नीति अपनाए जाने पर विशेष जोर दिया।

केन्जियन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, राजकीय व्यय प्रति–चक्रीय होना चाहिए। जब अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति का दबाव हो तो सरकार को सार्वजनिक व्यय में कटौती कर देनी चाहिए और उसे अधिशेष बजट के लिए प्रयास करना चाहिए। दूसरी ओर, जब मंदी छाई हो तो सरकार को सार्वजनिक व्यय बढ़ाना चाहिए।

इस प्रकार, केन्जियन अर्थशास्त्र सरकार के लिए एक सक्रिय भूमिका विहित करता है। इसे नीति–निर्माताओं के बीच व्यापक स्वीकृति मिली। इसकी लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि सन 1950 और 1960 के दशकों में अधिकतर अर्थशास्त्री केन्जियन ही थे।

बोध प्रश्न 2

1. मान लीजिए कि एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जहाँ मुद्रा आपूर्ति ब्याज की दर के प्रति असीम रूप से उत्तरदायी है। यह भी मान लें कि अर्थव्यवस्था उत्पादन के पूर्ण नियोजन स्तर से नीचे है। ऐसी स्थिति में राजकोषीय नीति और मौद्रिक नीति के प्रभाव को दर्शाने के लिए IS-LM प्राधार का उपयोग करें।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. मान लीजिए कि एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जहाँ निवेश ब्याज दर के प्रति बिल्कुल भी उत्तरदायी नहीं है। एक संवादी IS वक्र और AD वक्र खींचें। कोई ऐसी नीति सुझाइए जिसे उत्पादन का साम्य स्तर बढ़ाने के लिए अपनाया जा सके।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

3. केन्जियन सिद्धांत में वास्तविक मुद्रा माँग में गिरावट के प्रभाव पर सोदाहरण चर्चा करें।

....

....

....

....

11.5 सार–संक्षेप

इस इकाई में हमने देखा कि क्लासिकल और केन्जियन सिद्धांत किस तरह की अपनी–अपनी अवधारणाओं के आधार पर विभिन्न निष्कर्षों तक पहुँचते हैं। मजदूरी और कीमतों के पूर्ण लचीलेपन को मानते हुए, क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का निष्कर्ष है कि अर्थव्यवस्था हमेशा उत्पादन के पूर्ण नियोजन स्तर पर संतुलन में रहती है। पूँजी बाजार (या, ऋण–योग्य धन के लिए बाजार) यह सुनिश्चित करता है कि माँग में कोई कमी न हो। पारंपरिक परिमाण सिद्धांत कीमतों का स्तर देता है। क्लासिकल सिद्धांत के अनुसार, अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप उत्पादन स्तर को प्रभावित नहीं कर सकता है। इस प्रकार, क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने अर्थव्यवस्था में न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप का सुझाव दिया। बहरहाल, कीन्स ने एक विपरीत सिद्धांत दिया।

केन्जियन सिद्धांत के अनुसार, संतुलन आय आमदनी का वह स्तर है जो कुल माँग के बराबर होता है। यह आय के पूर्ण नियोजन स्तर से कम हो सकता है। कुल माँग माल और मुद्रा बाजार के एक साथ संतुलन पर आधारित होती है।

इसके अलावा, क्लासिकल सिद्धांत से भिन्न, केन्जियन सिद्धांत यह मानता है कि मजदूरी कठोर होगी है। यह फिलिप्स वक्र के संदर्भ में महँगाई और बेरोजगारी के बीच ऊपर की ओर अग्रसर आपूर्ति वक्र या समझौताकारी तालमेल दर्शाता है। केन्जियन सिद्धांत अर्थव्यवस्था में रोजगार और उत्पादन बढ़ाने के लिए विस्तारकारी राजकोषीय नीति अपनाने पर जोर देता है

11.6 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1. पाठांश 11.2.3 देखें। ऋण–योग्य निधि बाजार में ब्याज दर का पूर्ण लचीलापन सुनिश्चित करता है कि बचत निवेश के बराबर है, और प्रस्तुत उत्पादन की माँग हमेशा बनी रहती है।
2. मुद्रा की माँग में गिरावट से मूल्य स्तर में वृद्धि होती है। मुद्रा की माँग में गिरावट से धन की अतिरिक्त आपूर्ति ($MV=PY$) होती है, जो कि दिए गए उत्पादन स्तरों पर मूल्य स्तर में वृद्धि की ओर ले जाता है।
3. विस्तारकारी राजकोषीय नीति ऋण–योग्य निधि वक्र की माँग को दाईं ओर स्थानांतरित कर देती है (उधार द्वारा वित्तपोषित G में वृद्धि के साथ मूल वक्र के समानांतर)। यह ब्याज की दर को बढ़ाता है और निजी निवेश को गिच–पिच से दूर करता है। अंत में साम्य उत्पादन वही रहता है, लेकिन उत्पादन की संरचना

ऐसे बदल जाती है कि G चर I का स्थान ले लेता है। आगे के विवरण के लिए चित्र 11.5 का अध्ययन करें।

बोध प्रश्न 2

1. चलनिधि जाल की स्थिति। मौद्रिक नीति पूरी तरह से अप्रभावी है क्योंकि मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि ब्याज को कम नहीं कर सकती है और इस प्रकार निवेश बढ़ा सकती है। विस्तारकारी राजकोषीय नीति IS वक्र को दाईं ओर खिसकाएगी और सरकारी खर्च में कई गुना वृद्धि करके आय बढ़ाएगी।
2. यहाँ IS वक्र लंबवत् होगा और ऐसा ही AD वक्र होगा। कोई निवेश सब्सिडी या सरकारी व्यय में वृद्धि से उत्पादन में वृद्धि हो सकती है।
3. वास्तविक मुद्रा माँग में गिरावट से अतिरिक्त धन की आपूर्ति होती है। यह ब्याज की दर को कम करता है, निवेश बढ़ाता है और इस प्रकार उत्पादन बढ़ाता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 12 समष्टि–अर्थशास्त्रीय विचारों का उद्‌भव – II*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 नियोक्लासिकल संश्लेषण

12.3 अर्थवाद

12.4 न्यू क्लासिकल अर्थशास्त्र

12.4.1 न्यू क्लासिकल सिद्धांत की मुख्य विशेषताएँ

12.4.2 नीति विषयक प्रमुख निष्कर्ष

12.4.3 कुछ नए क्लासिकल मॉडल

12.4.4 यथार्थ व्यापार चक्र मॉडल

12.5 न्यू केन्जियन अर्थशास्त्र

12.6 गतिक प्रसंभाव्य सामान्य साम्यावस्था (DSGE) मॉडल

12.7 सार–संक्षेप

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

12.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि –

- समष्टि–अर्थशास्त्रीय विवेचन के विभिन्न विचार संप्रदायों पर प्रकाश डाल सकें;
- न्यू क्लासिकल और न्यू केन्जियन अवधारणाओं के बीच अंतर स्पष्ट कर सकें;
- व्याख्या कर सकें कि किस प्रकार न्यू क्लासिकल अवधारणाओं की जड़ें क्लासिकल अवधारणाओं से ही फूटी हैं;
- बता सकें कि केन्जियन विचारों को किस प्रकार न्यू केन्जियनवादियों द्वारा प्रबलित किया जाता है; तथा
- समष्टि अर्थशास्त्र में समकालीन अनुसंधान क्षेत्रों पर प्रकाश डाल सकें।

12.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम की इकाई 11 में हमने क्लासिकल और केन्जियन सिद्धांतों पर कुछ विस्तार से चर्चा की थी। जबकि क्लासिकल आर्थिक सिद्धांत ने अर्थव्यवस्था में न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप का सुझाव दिया, केन्जियन सिद्धांत ने सरकार के हस्तक्षेप को विहित किया। केन्जियन आर्थिक सिद्धांत ने आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राजकोषीय नीति के उपयोग पर जोर दिया। वर्ष 1955 में पॉल ए. सैम्युल्सन ने 'नियोक्लासिकल संश्लेषण' प्रस्तुत किया, जो कि केन्जियन अर्थशास्त्र का क्लासिकल अथवा नियोक्लासिकल अर्थशास्त्र के साथ एकीकरण दर्शाता था। उन्होंने बाजार और सरकार दोनों के साथ मिश्रित अर्थव्यवस्था की बात की।

केन्जियन विचारधारा ने द्वितीय विश्व युद्ध के समय से लेकर सन 1960 के दशक तक सरकारी नीति को प्रभावित किया था। महामंदी के प्रभाव से जूझते हुए, सरकारों ने अर्थव्यवस्था में खर्च और कुल माँग को प्रोत्साहित करने के लिए इसका जिम्मा अपने ऊपर

*सुश्री अर्चना अग्रवाल, सहायक प्राध्यापक, हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

ले लिया। सन 1950 और 1960 के दशक में विकसित पूँजीवादी देशों में विकास की उच्च दर देखी गई। सन 1960 के दशकांत तक, बहरहाल, केन्जियन अर्थशास्त्र में गंभीर संकट के संकेत आने लगे। बेरोजगारी और मुद्रास्फीति का एक साथ घटना एक आम बात हो गई, जिसके परिणामस्वरूप सन 1970 के दशक भर मुद्रास्फीतिजनित मंदी छाई रही। केन्जियन अर्थशास्त्र द्वारा सुझाया गया समझौताकारी समन्वयन भी अब काम नहीं करता था।

कई देशों ने उच्च राजकीय व्यय के परिणामस्वरूप राजकोषीय संकट की कचोट को महसूस करना शुरू कर दिया था। वर्ष 1973 के पेट्रोलियम निर्यातक देशों के संगठन अर्थात् ओपेक ने तेल–व्यापार प्रतिरोध लगाकर स्थिति को बदतर बना दिया गया था, जिसे 'ऑइल शॉक' या 'तेल आघात' के रूप में जाना जाता है। केन्जियन नुस्खे अब कारगर सिद्ध नहीं होते लग रहे थे। केन्जियन अर्थशास्त्र या सैम्युल्सन के नियोक्लासिकल संश्लेषण द्वारा स्थिति को अब विश्वसनीय रूप से नहीं समझाया जा सकता था।

कुछ समय के पश्चात बाजार की स्वतंत्रता को फिर से स्थापित करने और कुल माँग को बढ़ाने के लिए राज्य के प्रोत्साहन को छोड़ने के लिए समाधान माँगा गया। साथ ही, मजदूरी को अधिक लचीला बनाकर मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने की माँग की गई ताकि श्रम की कम माँग के साथ, वेतन दर गिर जाए और परिणामस्वरूप उत्पादन की लागत के साथ–साथ कीमतों में भी गिरावट आए। इसने मिल्टन फ्रीडमैन के विचारों के प्रसार का द्वार खोल दिया, जिसे आमतौर पर अर्थवाद के रूप में जाना जाता है। कुछ मायनों में यह क्लासिकल विचारों का पुनरुत्थान था। इस समय तक समष्टि अर्थशास्त्र में प्रत्याशाओं (मूल्य अपेक्षाओं) की अवधारणा को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जा चुका था।

सन 1970 के दशक के बाद समष्टि अर्थशास्त्र की दुनिया दो प्रमुख विचारधाराओं के बीच विभाजित हो गई –

1) न्यू क्लासिकल, और
2) न्यू केन्जियन।

इन दोनों विचार संप्रदायों ने अपने सिद्धांतों को व्यष्टि–मूल एवं अभिज्ञ, उपयोगिता–अधिकतमकारी व्यक्तियों पर आधारित किया। न्यू क्लासिकल सिद्धांत (मूल क्लासिकल सिद्धांत की ही भाँति) का तर्क है कि उत्पादन के स्तर को बदलने में सरकारी हस्तक्षेप निष्प्रभावी रहता है। सन 1980 और 1990 के दशक में इस विचारधारा का और विकास देखा गया और व्यापार चक्रों को वास्तविक व्यापार चक्र मॉडल की भाँति प्रौद्योगिकीय आघात के प्रति लोगों की तर्कसंगत प्रतिक्रियाओं द्वारा समझाने का प्रयास किया गया।

जैसे–जैसे न्यू क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के विचार विकसित हो रहे थे, सैम्युल्सन की परंपरा का पालन करने वाले अर्थशास्त्रियों ने अर्थव्यवस्था में खामियों के महत्व को पहचानते जा रहे थे। न्यू केन्जियन के रूप में ज्ञात इन अर्थशास्त्रियों ने तर्क दिया कि भले ही समझदार लोग उपयोगिता अधिकतम कर लेते हैं, उप–इष्टतम परिणाम अर्थव्यवस्था में खामियों के कारण भी हो सकते हैं। अतः न्यू केन्जियन मॉडल (मूल केन्जियन सिद्धांत की ही भाँति) अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप के पक्ष में तर्क देते हैं। हाल ही में, *डायनेमिक स्टोकैस्टिक जनरल इक्विलिब्रियम* अर्थात् गतिक प्रसंभाव्य सामान्य साम्यावस्था (DSGE) मॉडल सामने आए हैं जो न्यू क्लासिकल सिद्धांत और न्यू केन्जियन सिद्धांत दोनों की विशेषताओं को मिलाकर प्रस्तुत करते हैं।

12.2 नियोक्लासिकल संश्लेषण

केन्जियन सिद्धांत सामने आने के समय ऐसा लग रहा था कि मानो क्लासिकल अथवा नियोक्लासिकल विचार और केन्जियन विचार परस्पर विरोधी हों। बहरहाल, वर्ष 1955 में पॉल ए. सैम्युल्सन ने 'नियोक्लासिकल संश्लेषण' के रूप में केन्जियन और क्लासिकल विचारों को एकीकृत किया। कालांतर में IS-LM और फिलिप्स वक्र जैसे उपकरणों का उपयोग यह दिखाने के लिए किया गया कि अर्थव्यवस्था अल्पावधि में केन्जियन विशेषताओं को प्रदर्शित करती है, लेकिन दीर्घ अवधि में क्लासिकल अथवा नियोक्लासिकल परिणाम ही प्राप्त हुए।

मिल्टन फ्रीडमैन और एडमंड फेल्प्स ने कीमतों के बारे में अनुकूली अपेक्षाओं का विचार प्रस्तुत किया। इस प्राधार में प्रत्याशाएँ अल्पावधि में नहीं बदलीं और इस प्रकार एक ऊर्ध्वमुखी कुल आपूर्ति (SRAS) वक्र का जन्म हुआ। श्रम की माँग को वास्तविक वेतन का एक ऋणात्मक फलन (W/P) माना जाता था और श्रम आपूर्ति अपेक्षित वास्तविक वेतन के एक धनात्मक फलन (W/P^e) के रूप में दर्शाई जाती थी।

किसी भी संविदात्मक श्रम बाजार में जब तक प्रत्याशित कीमतें अपरिवर्तित रहीं, श्रमिकों द्वारा माँग की गई मामूली मजदूरी (वास्तविक वेतन को स्थिर रखने के लिए) भी अपरिवर्तित रही। इसने मजदूरी के पूर्ण लचीलेपन से कम ही प्रस्तुत किया। बहरहाल, मध्यम अवधि या दीर्घ अवधि में (उपयोग अभिरुचि का मामला अधिक है), कीमतों (P^e) के बारे में प्रत्याशाएँ संशोधित हो जाती हैं, जिससे मौद्रिक वेतन में संशोधन होता है। यह SRAS वक्र में खिसकाव की ओर ले जाता है ताकि दीर्घ अवधि में एक कुल सकल आपूर्ति (LRAS) वक्र दर्शाया जा सके (देखें चित्र 12.1)। दीर्घ अवधि में प्रत्याशित मूल्य स्तर वास्तविक मूल्य स्तर के बराबर होता है।

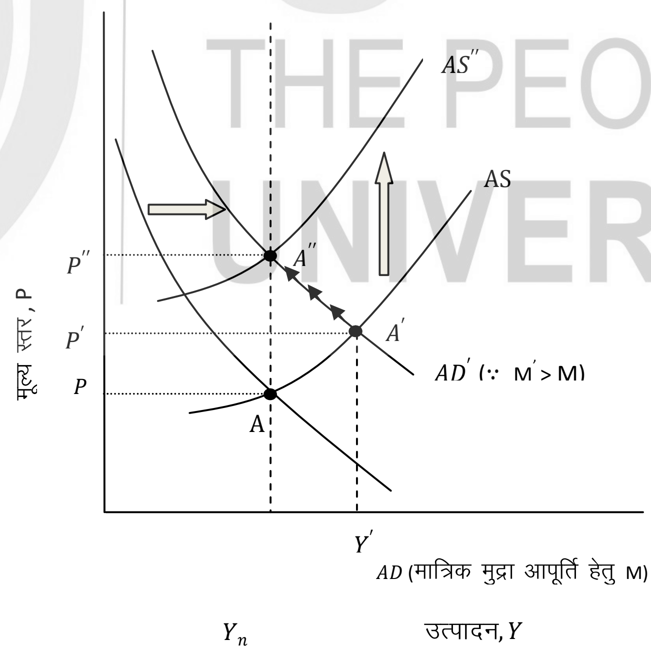

चित्र 12.1: दीर्घावधि कुल आपूर्ति वक्र

प्रत्याशा–संवर्धित फिलिप्स वक्र के संदर्भ में, अल्पावधि में श्रम अनुबंधों के कारण यह आगे मुद्रास्फीति का अनुमान लगाने में विफल रहता है, और इसीलिए वह वास्तविक वेतन को स्थिर रखने के लिए आवश्यक नाममात्र मजदूरी में वृद्धि को निर्दिष्ट करने में भी विफल रहता है।

यह एक SRPC की ओर ले जाता है, जो कि मुद्रास्फीति की दर और बेरोजगारी दर के बीच एक विपरीत संबंध दर्शाता है। दीर्घावधि में फिलिप्स वक्र (LRPC) 'बेरोजगारी की स्वाभाविक दर' पर लंबवत् होता है (देखें चित्र 12.2)। बेरोजगारी की स्वाभाविक दर संबंधी अवधारणा पहली बार सन 1960 के दशक में मिल्टन फ्रीडमैन और एडमंड फेल्प्स द्वारा प्रस्तुत की गई थी।

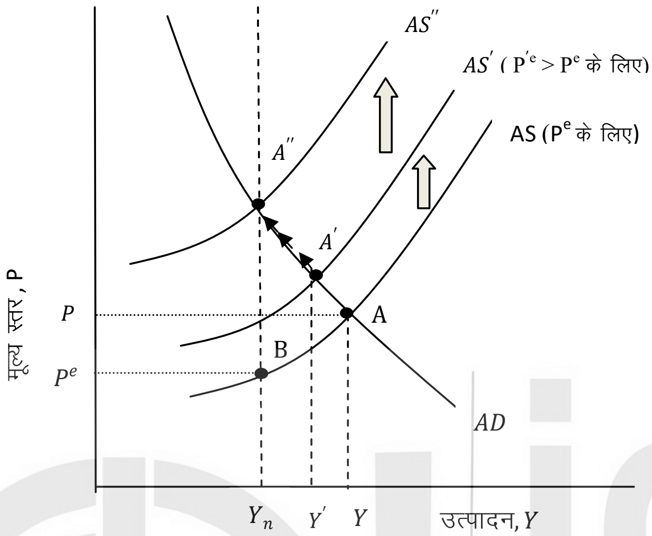

चित्र 12.2: दीर्घावधि फिलिप्स वक्र

इस प्रकार, किसी भी प्रकार के माँग आघात से अल्पावधि में (जब P^e स्थिर होता है) एक केन्जियन प्रकार का संतुलन होता है और दीर्घावधि में 'उत्पादन की स्वाभाविक दर' पर संतुलन होता है। क्लासिकल सिद्धांत के अनुसार, दीर्घावधि में उत्पादन केवल आपूर्ति पक्ष के कारकों (जो कि स्वयं उत्पादन की स्वाभाविक दर से बदलते हैं) की वजह से बदलता है। साथ ही, मुद्रास्फीति–बेरोजगारी समझौताकारी समन्वयन का प्रयोग केवल अल्पावधि में ही किया जा सकता है। अल्प और दीर्घ अवधि में कीमतों और उत्पादन का समायोजन चित्र 12.1 और चित्र 12.2 में देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न 1

1. मान लीजिए कि कोई अर्थव्यवस्था उत्पादन की स्वाभाविक दर पर दीर्घावधि से शुरुआत करती है। एक AS-AD प्राधार का प्रयोग कर अल्पावधि में और दीर्घावधि में उत्पादन और कीमतों पर किसी संकुचनकारी राजकोषीय नीति का प्रभाव दर्शाएँ।

....

....

....

....

....

....

2. मान लीजिए कि कोई अर्थव्यवस्था उत्पादन की स्वाभाविक दर पर काम कर रही है। एक AS-AD प्राधार का प्रयोग करते हुए अल्पावधि में और मध्यावधि में निवेश पर किसी संविदात्मक राजकोषीय नीति के प्रभाव की व्याख्या करें।

....

....

....

....

....

....

12.3 अर्थवाद

मिल्टन फ्रीडमैन और उनके अनुयायियों द्वारा किए गए कार्य के कारण केन्जियन सिद्धांत को सन 1950 के दशक–मध्य में पहली गंभीर चुनौती का सामना करना पड़ा। कीन्स की सिफारिशों के विपरीत, फ्रीडमैन ने राजकोषीय नीति के बजाय मौद्रिक नीति पर अधिक जोर दिया। आश्चर्य नहीं कि फ्रीडमैन को 'अर्थवाद' का जनक कहा जाता है। वर्ष 1956 में फ्रीडमैन ने मुद्रा–परिमाण सिद्धांत में सुधार किया और ऐसे परिणाम प्राप्त किए जो पारंपरिक मात्रात्मक सिद्धांत के परिणामों के करीब थे। उसने मुद्रा की माँग को स्थिर पाया और इस कारण मुद्रा आपूर्ति में परिवर्तन को उत्पादन में उतार–चढ़ाव के लिए जिम्मेदार माना।

मुद्रा अर्थवादियों का मानना है कि आय में परिवर्तन की व्याख्या मुख्य रूप से मौद्रिक नीति से की जाती है। उनके अनुसार, राजकोषीय नीति उपयोगी हो सकती है परंतु केवल अल्पावधि में, और वह भी मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के लिए। दरअसल, अर्थवादियों ने महामंदी की व्याख्या फेडरल रिजर्व बैंक की शिथिलता के संदर्भ में की। उन्होंने तर्क दिया कि अगर फेडरल रिजर्व बैंक ने खुले बाजार के संचालन में हस्तक्षेप (बॉण्ड और प्रतिभूतियाँ खरीदकर, ताकि मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि हो) किया होता तो महामंदी की गंभीरता बहुत कम होती।

अर्थवादी केन्जियन मुद्रास्फीति–बेरोजगारी समझौताकारी समन्वयन को भी चुनौती देते हैं। उनके अनुसार, फिलिप्स वक्र दीर्घावधि में (बेरोजगारी की स्वाभाविक दर पर) लंबवत् होता है और इस कारण बेरोजगारी को स्वाभाविक दर से नीचे बनाए रखने का प्रयास निष्फल रहता है। इसके बजाय, सरकार को मूल्य स्थिरता बनाए रखने के लिए मौद्रिक नीति पर ध्यान देना चाहिए। सन 1970 के दशक के दौरान अर्थवादियों द्वारा दिए गए नीतिगत सुझाव नयी रूढ़िवादिता का पर्याय बन गए क्योंकि पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं को मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के संयोजन का सामना करना पड़ा था, जिसे केन्जियन सिद्धांत द्वारा विश्वसनीय रूप से समझाया नहीं जा सका था।

सन 1980 के दशक के दौरान समष्टि–अर्थशास्त्रीय सिद्धांत दो प्रमुख विचार संप्रदायों में विभाजित हो गया, यथा – न्यू क्लासिकल अर्थशास्त्र और न्यू केन्जियन अर्थशास्त्र। यह विभाजन आज भी मान्य है। ये दोनों संप्रदाय समष्टि अर्थशास्त्र के लिए नियमनिष्ठतः व्यष्टि–मूल आधारित हैं। दूसरे शब्दों में, इन दोनों ही विचारधाराओं के लिए शुरुआती बिंदु किसी व्यष्टिक आर्थिक अभिकर्ता (जैसे परिवार और फर्म) का व्यवहार होता है।

यह समझना महत्वपूर्ण होगा कि ये दोनों ही विचारधाराएँ अंतर्निहित आर्थिक यथार्थ के लिए अलग–अलग स्पष्टीकरण प्रदान करने का प्रयास करती हैं। जबकि न्यू क्लासिकल

सिद्धांत अपूर्ण जानकारी के माध्यम से या वास्तविक आघातों (देखें पाठांश 12.4.4: वास्तविक व्यापार चक्र मॉडल) के माध्यम से व्यापार चक्र अथवा उत्पादन में उतार–चढ़ाव की व्याख्या करने का प्रयास करता है, न्यू केन्जियन सिद्धांत इन्ही दृश्यघटनाओं की व्याख्या मजदूरी और कीमतों की वास्तविक एवं मात्रिक लोचहीनता के माध्यम से करता है।

12.4 न्यू क्लासिकल अर्थशास्त्र

न्यू क्लासिकल अर्थात् नवशास्त्रीय सिद्धांत ने विश्लेषण के नए उपकरणों के माध्यम से चिरसम्मत विचारों को पुनर्जीवित किया।

12.4.1 न्यू क्लासिकल सिद्धांत की मुख्य विशेषताएँ

न्यू क्लासिकल अर्थशास्त्र की महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

1. **लुकास की मीमांसा** : जैसा कि पिछली इकाई में उल्लेख किया गया, सन 1950 और 1960 के दशक केन्जियन अर्थशास्त्र के सुनहरे दिन थे। नीति–निर्माताओं का मानना था कि उन्हें नीति–निर्माण की कला में महारत हासिल है और उनके पास नीतिगत विकल्पों की एक विस्तृत शृंखला है। बहरहाल, सन 1970 के दशक के दौरान मुद्रास्फीतिजनित मंदी ने इस प्रकार के आशावाद को ध्वस्त कर दिया। अमेरिकी अर्थशास्त्री रॉबर्ट लुकास ने केन्जियन मॉडलों की इस आधार पर आलोचना की कि इन मॉडलों में व्यष्टिक मूल का अभाव है। ये अत्यधिक समूहित मॉडल हैं। नीति में कोई भी बदलाव होने पर इन मॉडलों के मापदंड बदल जाते हैं। इस प्रकार, पिछले आँकड़ों पर आधारित पूर्वानुमान इन योगात्मक मॉडलों के लिए सही साबित नहीं होते।
2. **समष्टि अर्थशास्त्र के व्यष्टिक मूल** : लुकास ने सुझाव दिया कि सभी समष्टि–अर्थशास्त्रीय मॉडल व्यष्टिक मूल पर आधारित होने चाहिए। परिवारों के उपयोगिता कार्य और फर्मों के उत्पादन कार्य को समष्टि–अर्थशास्त्रीय मॉडल में समेकित किया जाना चाहिए। आइए, इस पर थोड़ा विस्तार से जानते हैं। परिवारों के सामने दो प्रकार के समझौता तालमेल होते हैं –

   (i) उपभोग और बचत के बीच समझौता – कम उपभोग का मतलब होगा – अधिक बचत। अधिक बचत का अर्थ होगा – भविष्य की अधिक आय। तदनुसार, आज उपभोग और बचत के बीच विकल्प का चुनाव वही होगा जो किसी सामयिक प्राधार में वर्तमान उपभोग और भावी उपभोग के बीच विकल्प का चुनाव होगा। भविष्य में प्रत्याशित आय और वास्तविक ब्याज दर के स्तर को देखते हुए परिवार कालांतर में अपने उपभोग और बचत को इष्टतम (यानी उसका अंतर–कालिक अनुकूलन) करते हैं।

   (ii) काम और आराम के बीच समझौता – चूँकि किसी भी दिन में समय सीमित होता है, काम के अधिक घंटे का अर्थ होगा – आमोद–प्रमोद के लिए कम समय। यदि काम के प्रति अधिक समय समर्पित होगा तो आय का प्रवाह भी अधिक होगा। इसी प्रकार, फर्में उत्पादन फलन के आधार पर ही कालांतर में अपने उत्पादन निर्णयों का अनुकूलन करती हैं। वे अपने उत्पादन निर्णय में मुद्रास्फीति की प्रत्याशित दर और उत्पादन अंतरालों को भी ध्यान में रखती हैं।
3. **सतत बाजार समाशोधन** : न्यू क्लासिकल अर्थशास्त्री मानते हैं कि मजदूरी और कीमतें लचीली होती हैं। तदनुसार, आपूर्ति और माँग के बीच समानता होती है और बाजार

हमेशा हिसाब चुकता करता है। न्यू क्लासिकल अर्थशास्त्र बाजार में खामियों की संभावना को खारिज करता है।

4. **युक्तियुक्त प्रत्याशाएँ** : न्यू क्लासिकल सिद्धांत तर्कसंगत प्रत्याशाओं को आर्थिक अभिकर्ताओं की ओर से मानता है। ये आर्थिक अभिकर्ता कीमतों, मुद्रास्फीति और मजदूरी जैसे आर्थिक चरों के बारे में प्रत्याशाओं को जन्म देते समय सभी उपलब्ध सूचनाओं को ध्यान में रखते हैं। नतीजतन, पूर्वानुमान में कोई सुनियोजित त्रुटि नहीं होती है और दीर्घावधि में किसी भी चर का वास्तविक मूल्य उस चर के प्रत्याशित मूल्य के बराबर होता है।

12.4.2 नीति विषयक प्रमुख निष्कर्ष

1. **मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच समझौता नहीं** : न्यू क्लासिकल सिद्धांत अल्पावधि में भी मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच समझौता समन्वयन की संभावना को खारिज करता है। आर्थिक अभिकर्ता आर्थिक चरों पर अपनी प्रत्याशाओं को अद्यतन करते हैं, और किसी चर के वास्तविक मूल्य व उसके प्रत्याशित मूल्य के बीच कोई सुनियोजित विसंगति नहीं होती। उदाहरण के लिए, श्रमिक मुद्रास्फीति दर की सही अपेक्षा करते हैं और वे नियोक्ताओं के साथ अनुबंध में प्रवेश करते समय ऐसी मुद्रास्फीति दर को ध्यान में रखते हैं। इस प्रकार, मूल्य वृद्धि और वेतन वृद्धि के बीच कोई अंतराल नहीं होता। परिणामतः, LRPC लंबवत् होता है।

2. **नीति अप्रभावीता प्रस्थापना** : युक्तियुक्त प्रत्याशाओं की अवधारणा के आधार पर न्यू क्लासिकल सिद्धांत पूर्वानुमान करता है कि सरकारी नीतिगत उपाय निष्प्रभावी साबित होंगे। आर्थिक अभिकर्ता सरकारी उपायों के प्रभाव का अनुमान लगाते हैं, और उनका निर्णयन् ऐसी प्रत्याशाओं से प्रभावित होता है। न्यू क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार, कोई आर्थिक नीति तभी प्रभावी होती है जब वह अप्रत्याशित हो।

3. **कुल आपूर्ति परिकल्पना** : न्यू क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार AS वक्र ऊर्ध्वाधर होता है, जैसा कि क्लासिकल सिद्धांत के मामले में होता था। बहरहाल, अल्पावधि AS वक्र ऊपर की ओर झुका होता है। श्रमिक अपना समय काम और अवकाश के बीच आवंटित करते हैं। यदि वर्तमान वास्तविक मजदूरी दर सामान्य मजदूरी दर से अधिक होती है तो वे अवकाश में कटौती कर काम के प्रति अधिक समय समर्पित करते हैं। दूसरी ओर, जब वास्तविक मजदूरी दर सामान्य मजदूरी दर से कम होती है तो काम के लिए हतोत्साहन देखा जाता है। अब वे इस आशा के साथ आमोद–प्रमोद में अधिक समय बिताते हैं कि वे भविष्य में और अधिक काम करेंगे। इससे उत्पादन में गिरावट आती है। इस प्रकार, उत्पादन मजदूरी दर के प्रत्यक्षतः समानुपातिक होता है। चूँकि कीमतें मजदूरी दर के सीधे समानुपातिक होती हैं, SRAS वक्र ऊपर की ओर झुका होता है, जबकि LRAS वक्र लंबवत् होता है।

12.4.3 कुछ न्यू क्लासिकल मॉडल

आइए, अब कुछ ऐसे न्यू क्लासिकल मॉडलों की चर्चा करें जो गलत सूचनाओं के आधार पर व्यापार चक्रों की व्याख्या करते हैं। यद्यपि श्रमिक और फर्म वांछनीय रूप से कार्यरत हैं, वे गलत सूचना के आधार पर ऐसा कर रहे हैं। फ्राइडमैन, फेल्प्स और लुकास द्वारा प्रस्तुत किए गए 'फूलिंग मॉडल' अर्थात् विवेक शून्य प्रतिमान इसी श्रेणी में आते हैं। न्यू

क्लासिकल मॉडलों की एक और शृंखला, जिसे 'वास्तविक व्यापार चक्र मॉडल' कहा जाता है, उपयोगिता को अधिकतम करने वाले व्यक्तियों को एक ऐसे प्रसंग में ले जाता है जहाँ माँग संबंधी समस्याएँ अपना अस्तित्व खो चुकी होती हैं। इन व्यापार चक्रों को प्रौद्योगिकीय आघात व अन्य आपूर्ति आघातों के प्रति लोगों की तर्कसंगत प्रतिक्रियाओं द्वारा समझाया जाता है।

1. फ्रीडमैन और फेल्प्स मॉडल

यद्यपि फर्मों एवं श्रमिकों के कार्य स्वैच्छिक होते हैं और बाजार निरंतर समाशोधन अर्थात् पल्ला–झाड़ बिक्री करते रहते हैं, व्यापार चक्र तब सामने आते हैं जब आर्थिक अभिकर्ता मूल्य स्तर ($P \neq P^e$) को 'गलत ढंग से' समझते हैं। सन 1960 के दशक के दौरान फ्रीडमैन और फेल्प्स (दोनों ही नोबेल पुरस्कार विजेता हैं) ने प्रत्याशाओं के 'अनुकूली' होने की बात की। इसका तात्पर्य यह है कि अल्पावधि में प्रत्याशित त्रुटियाँ हो सकती हैं, परंतु देर–सबेर उन्हें ठीक कर लिया जाएगा और अर्थव्यवस्था उत्पादन की स्वाभाविक दर तक पहुँच जाएगी। इसका अर्थ यह है कि जैसे ही प्रत्याशाएँ संशोधित होती हैं और $P = P^e$ तो अर्थव्यवस्था बेरोजगारी की स्वाभाविक दर पर पहुँच जाती है। फ्रीडमैन के मॉडल को कभी–कभी 'स्वाभाविक दर' मॉडल कहा जाता है। उत्पादन या बेरोजगारी की स्वाभाविक दर पर एक लंबवत् AS वक्र और एक लंबवत् ही फिलिप्स वक्र प्राप्त होता है।

फ्रीडमैन और फेल्प्स दोनों ने अपने मॉडल को अनुकूली प्रत्याशाओं पर आधारित किया, परंतु दोनों के बीच एक सूक्ष्म अंतर है। फ्रीडमैन का मॉडल असममित है, जिसमें फर्मों को वास्तविक मूल्य स्तर पता होता है किंतु श्रमिकों को 'बुद्धू' बनाया जाता है। दूसरी ओर, फेल्प्स के मॉडल में श्रमिक और फर्म दोनों को समान रूप से 'बुद्धू' बनाया जाता है – दोनों ही पक्ष अपने उद्योग के लिए आपेक्षिक कीमतों में वृद्धि के रूप में कुल मूल्य स्तर में वृद्धि की कल्पना करते हैं और इस कारण अधिक आपूर्ति करने का विकल्प चुनते हैं। फेल्प्स के मॉडल के ऐसे अनेक संस्करण हैं जहाँ फर्मों को बुद्धू बनाया जाता है मगर श्रमिकों को नहीं या फिर जहाँ श्रमिकों को अर्थव्यवस्था–व्यापी जानकारी से अलग रखा जाता है।

इन मॉडलों की अपनी कुछ सीमाएँ हैं, यथा –

प्रथम, यह मानने का कोई कारण नहीं है कि अभिकर्ताओं का कोई एक ही समूह 'मूर्ख' है जबकि दूसरा नहीं है।

दूसरे, आधुनिक संसार में व्यक्ति मजदूरी और कीमतों के बारे में काफी अच्छी तरह से जानता है।

तीसरे, व्यापार चक्र की पूरी व्याख्या सूचना अंतरालों, अज्ञानता और विवेक शून्यता पर आधारित होती है।

2. लुकास मॉडल

एक अन्य नोबेल पुरस्कार विजेता रॉबर्ट ई. लुकास ने समष्टि अर्थशास्त्र में युक्तियुक्त प्रत्याशाओं से परिचय करवाया। इसका अर्थ था कि आर्थिक अभिकर्ता उपयोगिता को अधिकतम करने के साथ–साथ सदा लगातार गलतियाँ करने से

भी बचते रहते हैं। इस प्रकार, इन व्यक्तियों को एक बार तो 'बुद्धू' बनाया जा सकता है मगर दुबारा नहीं। साथ ही, उपयोगिता को अधिकतम करने वाले निर्णय भविष्य से भी संबंधित होते हैं। अतः लोग उपलब्ध जानकारी के साथ अपनी ओर से सर्वोत्तम पूर्वानुमान लगाते हैं।

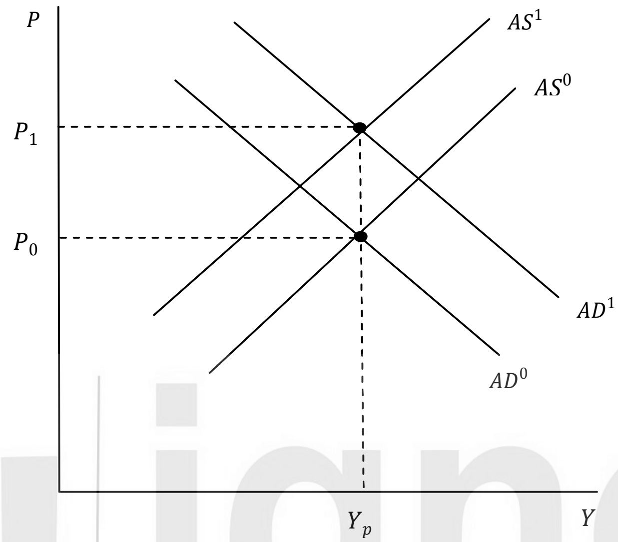

चित्र 12.3: मुद्रा आपूर्ति में प्रत्याशित वृद्धि का प्रभाव

युक्तियुक्त प्रत्याशाओं का एक निहितार्थ यह भी होता है कि सरकार द्वारा कोई भी नीतिगत उपाय, चाहे वह राजकोषीय हो या फिर मौद्रिक, आपूर्ति के बारे में निर्णय लेने से पूर्व विवेकशील व्यक्तियों के सहयोग से ही किया जाएगा। उदाहरण के लिए, अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करने के लिए किया गया कोई भी मौद्रिक विस्तार कीमतों के बारे में प्रत्याशाओं को तुरंत बढ़ाता है क्योंकि विवेकशील व्यक्ति मजदूरी और कीमतों पर नीति के प्रभाव का अनुमान लगा लेते हैं।इस प्रकार, रोजगार और वास्तविक उत्पादन पर विस्तारकारी मौद्रिक नीति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसे *नीति अप्रभावीता प्रस्थापना* के रूप में भी जाना जाता है, जैसा कि ऊपर (पाठांश 12.4.2 में) उल्लेख किया गया। प्रत्याशित नीति उत्पादन की तुलना में निष्प्रभावी रहती है। आप देखेंगे कि AD वक्र में AD^0 से AD^1 तक खिसकाव है, जिससे AS वक्र में (AS^0 से AS^1 तक) एक तत्काल खिसकाव आता है। इसके फलस्वरूप नए वक्र उत्पादन की स्वाभाविक दर पर अथवा संभावित उत्पादन (Y_p) पर प्रतिच्छेद करते हैं (देखें चित्र 12.3)।

आपको *रिकार्डियन तुल्यता* की वह स्थिति याद होगी जहाँ सरकार अपने घाटे के बजट का वित्तपोषण करने के लिए उधार लेती है। इस तरह की नीति से उच्च उत्पादन नहीं हो सकता है क्योंकि विवेकशील आर्थिक अभिकर्ता सरकारी नीति के निहितार्थों का अनुमान लगा लेते हैं। उन्हें आशा होती है कि सरकार कर्ज चुकाने और उनकी बचत बढ़ाने के लिए भविष्य में करवृद्धि करेगी। परिणामतः कुल माँग में कोई वृद्धि नहीं होती और इसलिए उत्पादन भी जस का तस रहता है। लुकास के अनुसार, केवल अप्रत्याशित नीति या 'प्राइस सर्प्राइज' अर्थात् **मूल्य विस्मय** के फलस्वरूप ही उत्पादन संबंधी परिवर्तन हो सकते हैं।

अन्य विवेक शून्य मॉडलों की भाँति लुकास मॉडल भी सूचना अंतराल के कारण देखे गए उत्पादन में उतार–चढ़ाव की व्याख्या करता है। यहाँ व्यापार चक्रों की व्याख्या 'संकेत

निष्कर्षण समस्या' नामक एक शृंखला के माध्यम से की गई है, जहाँ आर्थिक अभिकर्ता प्रायः गलत तरीके से मूल्य परिवर्तन के संकेत को समझ लेते हैं जिससे उनके द्वारा आपूर्ति किए गए उत्पादन का स्तर बदल सकता है।

उपर्युक्त मॉडल को निम्नलिखित लुकास आपूर्ति वक्र का प्रयोग करके प्रस्तुत किया जा सकता है –

$$Y_t = Y_p + \beta(P_t - P_t^e) \quad \ldots (12.1)$$

यहाँ, अवधि t में उत्पादन (Y_t) संभावित उत्पादन (Y_p) से तभी भिन्न होता है जब प्रत्याशित मूल्य (P^e) वास्तविक मूल्यों (P) से भिन्न हों।

लुकास मॉडल के साथ समस्या अन्य विवेकशून्य मॉडलों की भाँति ही मॉडल के समान है अर्थात् व्यापार चक्रों की कोई विश्वसनीय व्याख्या प्रदान करने के लिए सूचना अंतराल बहुत कम हैं।

12.4.4 वास्तविक व्यापार चक्र मॉडल

वास्तविक व्यापार चक्र (RBC) मॉडलों से जुड़े प्रमुख अर्थशास्त्री नोबेल पुरस्कार विजेता फिन ई. किडलैंड और एडवर्ड सी. प्रेस्कॉट हैं, जिन्होंने सन 1980 और 1990 के दशकों के दौरान इन मॉडलों को सामने रखा। ये मॉडल अर्थव्यवस्था को वास्तविक आघात के लिहाज से उत्पादन में उतार–चढ़ाव की व्याख्या करते हैं। आर्थिक अभिकर्ता मौद्रिक (माँग) आघात के बजाय वास्तविक (आपूर्ति) आघात का जवाब देते हैं। इन (RBC) मॉडलों के अनुसार उत्पादन में उतार–चढ़ाव स्वयं उत्पादन की स्वाभाविक दर में ही उतार–चढ़ाव होता है। यहाँ कीमतें और मजदूरी पूरी तरह से लचीली मानी जाती हैं (जैसा कि क्लासिकल सिद्धांत में होता है) और AS वक्र में खिसकाव के साथ ही उत्पादन की स्वाभाविक दर (यानी संभावित उत्पादन) में बदलाव होता है।

आपूर्ति के आघात विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं, यथा –

(i) प्रौद्योगिकी में परिवर्तन,

(ii) मौसम में परिवर्तन,

(iii) कच्चे माल के नए स्रोत, और

(iv) कच्चे माल की कीमतों में परिवर्तन।

आपूर्ति के आघात अत्यधिक स्थायी माने जाते हैं, जो कि इस प्रकार व्यापार चक्र की दीर्घता की व्याख्या करते हैं।

यहाँ दिए गए चित्र 12.4 के ऊपरी खंड में हम उस उत्पादन फलन F_0 को दर्शाते हैं जो सामान्य समय के लिए होता है। जब प्रतिकूल आपूर्ति आघात (जैसे, अनावृष्टि) होता है तो उत्पादन फलन F_1 में नीचे की ओर बदलाव होता है। इसी चित्र के निचले खंड में हम श्रम बाजार में संतुलन को दर्शाते हैं। श्रम आपूर्ति वक्र N_0^s है और सामान्य समय के दौरान श्रम माँग वक्र N_0^d होता है। यहाँ रोजगार स्तर N_0 के साथ संतुलन बिंदु B पर है, जबकि साम्य उत्पादन का संवादी स्तर $Y_0$0 पर है (देखें चित्र का ऊपरी खंड)।

अब मान लेते हैं कि आपूर्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। श्रम आपूर्ति वक्र में कोई परिवर्तन नहीं होता है, परंतु श्रम माँग वक्र में N_0^d से N_1^d तक नीचे की ओर खिसकाव देखा जाता है। प्रतिकूल आघात के कारण साम्यावस्था बिंदु V पर है, जबकि साम्य रोजगार स्तर N_1 पर है। उत्पादन का संवादी स्तर Y_1 पर होगा। इस प्रकार, प्रतिकूल आपूर्ति आघात के कारण अर्थव्यवस्था में मंदी छाई हुई है।

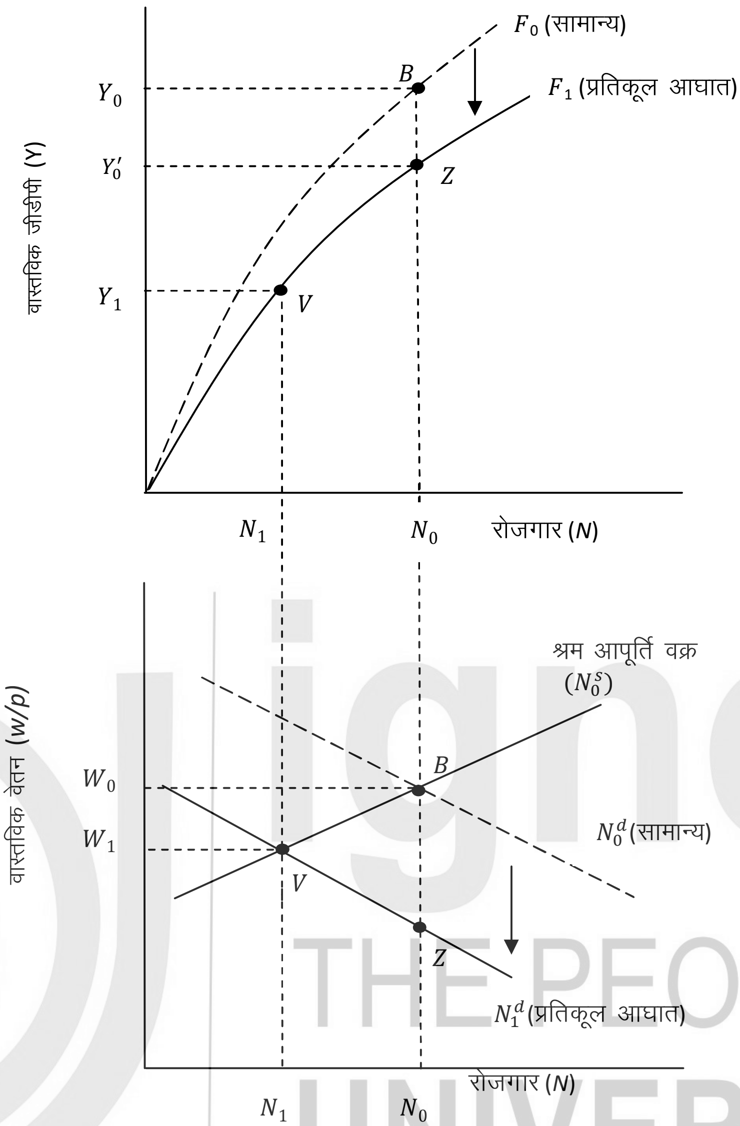

चित्र 12.4: प्रतिकूल आपूर्ति आघात का प्रभाव

यहाँ दिए गए चित्र 12.4 में हमने ऊर्ध्वमुखी प्रवण श्रम आपूर्ति वक्र लिया है। चलिए, मान लेते हैं कि श्रम आपूर्ति वक्र N_0 पर लंबवत् है। प्रतिकूल आघात के कारण संतुलन बिंदु Z पर है। रोजगार में कोई गिरावट नहीं देखी जा रही है (यह N_0 पर ही बनी हुई है), जबकि समायोजन वास्तविक मजदूरी में गिरावट के माध्यम से ही होगा। ऐसी स्थिति में साम्यावस्था बाहर Y_0' पर होगी।

उक्त (RBC) मॉडलों की विभिन्न मामलों में आलोचना की गई है। जहाँ तक कि प्रौद्योगिकी टेक्नोलॉजी का प्रश्न है, समय के साथ प्रौद्योगिकी में हमेशा उन्नति होती है, उसमें गिरावट नहीं देखी जाती। ये मॉडल की तेल की कीमतों में वृद्धि को छोड़कर बाकी नकारात्मक आघातों के विश्वसनीय उदाहरण देने में विफल रहे हैं। इसके अलावा, ये मॉडल यह नहीं दर्शा सकते हैं कि उत्पादन पर आघात का प्रभाव कैसे बढ़ाया जाता है (जैसा कि केन्जियन गुणक में होता है)।

अंत में, यदि व्यापार चक्र कुल आपूर्ति में बदलाव के कारण बनता है तो उत्पादन में गिरावट कीमतों में वृद्धि के साथ ही आएगी। बहरहाल, व्यापार मंदी और मूल्यावसाद के दौरान हमेशा ऐसा नहीं होता है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

बोध प्रश्न 2

1. मान लीजिए कि किसी अर्थव्यवस्था में उछाल आता है, जिसमें उत्पादन (Y) उत्पादन की स्वाभाविक दर (Y_p) से ऊपर चली जाती है। लुकास के मॉडल के अनुसार, क्या इसके लिए मूल्य विस्मय की आवश्यकता है? स्पष्ट करें।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. वास्तविक व्यापार चक्र मॉडल के मुख्य विचारों पर प्रकाश डालें।

   ....

   ....

   ....

   ....

12.5 न्यू केन्जियन अर्थशास्त्र

उन्हीं दिनों जब न्यू क्लासिकल अवधारणाएँ प्रसिद्धि पाती जा रही थीं, सैम्युल्सन की परंपरा के कुछ अनुयायियों ने परंपरागत IS-LM प्राधार को त्याग दिया और 'न्यू केन्जियन' मॉडल विकसित करने लगे। न्यू केन्जियन मॉडल भी न्यू क्लासिकल मॉडल की तरह विवेकशील, उपयोगिता–अधिकतम करने वाले व्यक्तियों पर आधारित हैं। तदनुसार, न्यू केन्जियन अर्थशास्त्री व्यष्टि–मूल और युक्तियुक्त प्रत्याशाओं जैसे विश्लेषण के कुछ न्यू क्लासिकल उपकरणों का उपयोग करके केन्जियन अवधारणाओं को ही प्रस्तुत करते हैं। बहरहाल, न्यू क्लासिकल सिद्धांत और न्यू केन्जियन सिद्धांत के बीच एक आधारभूत अंतर देखा जाता है।

न्यू क्लासिकल अर्थशास्त्री मानते हैं कि अर्थव्यवस्था में पूर्ण प्रतिस्पर्धा होती है जिसके कारण कीमतें और मजदूरी पूरी तरह से लचीली होती हैं। दूसरी ओर, न्यू केन्जियन अर्थशास्त्रियों का मानना है कि अर्थव्यवस्था में अपूर्णता और असममित जानकारी होती है जिसके कारण कीमतों और मजदूरी में लोचहीनता होती है (इसका अर्थ है कि ये चर वांछित स्तरों पर तत्काल समायोजित नहीं होते हैं)।

बाजार की खामियों संबंधी व्यष्टि अर्थशास्त्र पर जोर देने वाले नए केन्जियन मॉडल पारंपरिक केन्जियन परिणामों तक पहुँचने में सक्षम हैं। यहाँ तक कि जब विवेकशील व्यक्ति इन परिस्थितियों में अपनी उपयोगिता को अधिकतम कर रहे होते हैं, तब भी व्यापक आर्थिक परिणाम उप–इष्टतम हो सकते हैं।

बाजार में पल्ला–झाड़ बिक्री करने के लिए कीमतें तेजी से समायोजित नहीं होती हैं (वैयक्तिक आर्थिक अभिकर्ताओं के युक्तियुक्त व्यवहार के कारण) और इसीलिए इन मॉडलों (मूल केन्जियन मॉडल के साथ) को *गैर–बाजार समाशोधन* मॉडल कहा जाता है।

अर्थव्यवस्था में अपूर्ण स्थितियाँ कई कारकों के कारण हो सकती हैं, यथा –

(i) फर्मों की बाजार शक्ति,

(ii) मजदूरी और कीमतों की नाममात्र या वास्तविक लोचहीनता, और

(iii) असममित जानकारी।

ऐसे सैद्धांतिक प्राधार में कुल माँग में उतार–चढ़ाव उत्पादन और रोजगार में उतार–चढ़ाव पैदा करता है। यहाँ AD और SRAS के संदर्भ में, कोई भी माँग आघात AD वक्र को खिसका देती है, परंतु SRAS वक्र विवेकशील व्यक्तियों के अधिकतमकारी व्यवहार के कारण खिसकने में असमर्थ रहता है। इससे उत्पादन और व्यापार चक्रों में परिवर्तन आता है।

कीमत या वेतन लोचहीनता का स्रोत (जिसके कारण SRAS जल्दी या पर्याप्त रूप से नहीं खिसक सकता है) नीचे वर्णित अनेक कारकों से पता लगाया जा सकता है –

(i) मेन्यू लागत : मूल्य लोचहीनता का एक कारण यह है कि कीमतों को बदलना महँगा पड़ता है। आपने देखा होगा कि सब्जियों की कीमतें आए दिन बदलती हैं, लेकिन किसी भी रेस्तरां में खाने की कीमत इतनी बार नहीं बदलती। मेन्यू कार्ड वही रहता है – क्योंकि सीमांत लागत में वृद्धि के कारण होने वाले नुकसान को सहन करने की तुलना में मेन्यू कार्ड को फिर से छपवाने में लागत कहीं अधिक आती है।

न्यू केन्जियन अर्थशास्त्री उपर्युक्त विचार को किसी भी अर्थव्यवस्था में सभी फर्मों के लिए व्यापक बना देते हैं। न्यू केन्जियन अनुयायियों के अनुसार, किसी फर्म के लिए मेन्यू लागत छोटी हो सकती है, परंतु समग्र रूप से अर्थव्यवस्था के लिए मेन्यू लागत का बड़ा प्रभाव हो सकता है। मेन्यू लागत के मामले में, यदि मूल्य कटौती से होने वाला लाभ मूल्य कटौती की मेन्यू लागत से कम हो तो किसी एकाधिकारवादी फर्म द्वारा माँग में गिरावट के जवाब में फर्म कीमत में कटौती नहीं करने का विकल्प चुन सकती है।

(ii) चिपचिपी सीमांत लागत : जब मेन्यू लागत अभिभावी नहीं होती है तब भी ि चपचिपी सीमांत लागत के परिणामस्वरूप कीमतों में कोई बदलाव नहीं हो सकता है, मगर उत्पादन में बदलाव हो सकता है। अब उत्पादन में उतार–चढ़ाव को चिपचिपा या लोचहीन सीमांत लागत के माध्यम से समझाया जाता है। किसी एकाधिकारी फर्म द्वारा सामना की जाने वाली माँग में गिरावट के जवाब में फर्म को अपनी सीमांत राजस्व में कमी का अनुभव होता है। बहरहाल, उसकी सीमांत लागत फर्म के लिए उत्पादन के समान स्तर को बनाए रखने के लिए पर्याप्त रूप से कम नहीं हो सकती है, जैसा कि माँग में गिरावट से पहले था। ऐसे में उत्पादन में गिरावट ही आएगी।

न्यू केन्जियन अर्थशास्त्रियों ने चिपचिपी सीमांत लागत के लिए अथवा इस बात के लिए कि क्यों कंपनियाँ तर्कसंगत रूप से सीमांत लागत के सीमांत राजस्व से भिन्न रूप से बढ़ने की उम्मीद कर सकती हैं, अनेक कारण प्रस्तुत किए। श्रम अनुबंधों को लंबे समय तक तय किया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप अनुबंध की अवधि के लिए ही मात्रिक वेतन लोचहीनता और चिपचिपी सीमांत लागत का सामना होता है।

ऐसे मामलों में, नाममात्र की मजदूरी अग्रिम रूप से तय कर दी जाती है और अनुबंध के दौरान इसे बदला नहीं जा सकता है। दूसरे, सीमांत लागत कच्चे माल की कीमतों पर निर्भर करती है और एकाधिक खरीदार–आपूर्तिकर्ता संबंधों के मामले में, कोई भी विवेकशील फर्म कीमतों को कम नहीं करना तब तक पसंद कर सकती है जब तक कि आगत आपूर्तिकर्ताओं की शृंखला अपनी कीमतें कम नहीं कर देती। यह भी संभव है कि

माँग में (और इसलिए सीमांत राजस्व में) परिवर्तन स्थानीय कारकों के कारण हों, लेकिन लागत कई अन्य कारकों पर निर्भर करती है।

इस स्थिति में भी कोई फर्म युक्तियुक्त रूप से सीमांत राजस्व के सीमांत लागत से भिन्न तरीके से बढ़ने की उम्मीद कर सकती है। बहरहाल, ऐसी सभी स्थितियों में विवेकशील श्रमिक और व्यापार प्रतिष्ठान ऐसे निर्णय लेते हैं जो उनके लिए निजी तौर पर लाभकारी हों, मगर फिर भी उत्पादन और रोजगार की हानि ही होती है।

(iii) सांतरित कीमतें : फर्में अपनी कीमतें एक ही समय पर निर्धारित नहीं करती हैं बल्कि ये किसी समयावधि विशेष में विखरित अर्थात् चौंका देने वाली होती हैं। जब मुद्रा आपूर्ति और कुल माँग में कोई परिवर्तन होता है तो कुछ फर्में अपनी कीमतें तुरंत बदल सकती हैं, जबकि अन्य कुछ समय के लिए प्रतीक्षा करती हैं। इसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में मूल्य स्तर में परिवर्तन की गति धीमी हो जाती है।

(iv) समन्वय विफलता : व्यापार मंदी के दौर में बहुत से लोग काम करने के इच्छुक होते हैं, परंतु उन्हें रोजगार मिलता ही नहीं है। माँग में कमी के कारण फर्मों की माल–सूचियाँ बढ़ती ही रहती है। विपुल खाद्य भंडार होने पर भी लोग भूखे रह जाते हैं। अतः कुछ न्यू केन्जियन अर्थशास्त्रियों का विचार है कि यहाँ व्यापार चक्र अर्थात् उतार–चढ़ाव समन्वय विफलता के कारण हो सकता है। ऐसा हमने पहले भी उल्लेख किया है कि कीमतें और मजदूरी तत्काल अपने संतुलन स्तर पर नहीं मिलती हैं। न्यू केन्जियन अनुयायियों के अनुसार, निर्णय लेने में फर्मों के बीच बेहतर समन्वय व्यापार में उतार–चढ़ाव को कम कर सकता है। कुछ न्यू केन्जियन मॉडल कहते हैं कि किसी भी अर्थव्यवस्था में अनेक साम्यावस्थाएँ होती हैं। यदि फर्में समन्वय करने में विफल रहती हैं तो अर्थव्यवस्था अंततः कम कुशल (निम्न स्तर) साम्यावस्था पर पहुँच सकती है।

न्यू केन्जियन मॉडलों के साथ एक बड़ी समस्या यह है कि वे मजदूरी और कीमतों में चिपचिपाहट अथवा कठोरता के कई कारण बताते हैं। उन उद्योगों में भी व्यापार चक्र देखे जाते हैं जिनमें श्रमिक संघ और नियत मजदूरी अनुबंध नहीं होते हैं।

12.6 गतिशील प्रसंभाव्य सामान्य साम्यावस्था मॉडल

हाल के वर्षों में, न्यू क्लासिकल और न्यू केन्जियन परस्पर नजदीक आए हैं, जिससे कुछ साझा मॉडल विकसित हुए हैं। न्यू क्लासिकल अर्थशास्त्री आज भी लोचदार मजदूरी और कीमतों के साथ पूर्ण प्रतिस्पर्धा की कल्पना करते हैं। दूसरी ओर, न्यू केन्जियन अर्थशास्त्री बाजार शक्ति और ऐसी अन्य खामियों को शामिल मानकर चलते हैं जिनके परिणामस्वरूप 'चिपचिपी' मजदूरी और कीमतें सामने आती हैं।

हाल के ही वर्षों में मॉडलों का एक नयी शृंखला सामने आई है। इसे डायनेमिक स्टोकैस्टिक जनरल इक्विलिब्रियम (DSGE) अर्थात् 'गतिशील प्रसंभाव्य सामान्य साम्यावस्था' मॉडल नाम दिया गया है। अपने नाम के अनुसार, ये 'सामान्य साम्यावस्था मॉडल' इस अर्थ में हैं कि इनका सरोकार समग्र अर्थव्यवस्था से होता है। यहाँ शब्द 'गतिशील' अर्थात् परिवर्तनशील इस विचार को दर्शाता है कि ये सभी अंतर–कालिक मॉडल हैं और आर्थिक अभिकर्ता कालांतर में अपने निर्णय–चर को इष्टतम कर लेते हैं। तदनुसार, इनमें गतिशील इष्टतमीकरण का मुद्दा शामिल होता है।

जैसा कि आप जानते हैं, अर्थव्यवस्था को विभिन्न प्रकार के आघात झेलने होते हैं, यथा – माँग आघात, आपूर्ति आघात और नीतिगत आघात, जो कि बहिर्जात होते हैं। इन आघातों

को स्वभावतः यादृच्छिक माना जाता है। तदनुसार, ये मॉडल अनेक संभावनाओं में से चुने गए होते हैं।

इन मॉडलों (DSGE) के सरल रूपों में तीन अंतर्संबद्ध ब्लॉक अर्थात् समीकरणों के समुच्चय देखे जाते हैं, यथा –

(i) कोई माँग ब्लॉक,
(ii) कोई आपूर्ति ब्लॉक, और
(iii) कोई मौद्रिक नीति समीकरण (इकाई 10 में उल्लिखित नीति नियमों का स्मरण करें)।

इन ब्लॉकों में सम्मिलित समीकरण व्यष्टिक मूल से प्राप्त होते हैं।

इन मॉडलों (DSGE) में, समय बीतने को स्पष्ट रूप से माना जाता है (गतिशील),

यादृच्छिक चर शामिल होते हैं (स्टोकैस्टिक), और वे समग्र अर्थव्यवस्था के लिए स्पष्टीकरण देते हैं, न कि केवल अर्थव्यवस्था के किसी हिस्से मात्र के लिए (सामान्य साम्यावस्था)। इन मॉडलों के सरल संस्करण समीकरणों पर आधारित होते हैं, जो कि निम्नलिखित तथ्य निरूपित करते हैं –

i) उपभोग के युक्तियुक्त प्रत्याशा सिद्धांत (DSGE मॉडल का IS वक्र),
ii) फिलिप्स वक्र का एक ऐसा संस्करण जिसमें मुद्रास्फीति विषयक प्रत्याशाएँ तर्कसंगत रूप से व्यक्त की जाती हैं, परंतु वास्तविक मुद्रास्फीति प्रत्याशित भावी मुद्रास्फीति और उत्पादन अंतराल पर निर्भर करती है (स्थिरीकरण नीति (SP) वक्र), और
iii) टेलर नियम का एक ऐसा संस्करण जो मौद्रिक नीति को इंगित करता है।

व्यापार चक्र उत्पन्न करने के लिए माँग आघात और आपूर्ति आघात दोनों की अनुमति होती है।

उक्त मॉडल नीति विश्लेषण में काफी उपयोगी साबित हुए हैं। इन मॉडलों के माध्यम से कई मुद्दों का विश्लेषण किया जा सकता है। समष्टि–अर्थशास्त्रीय नीतियों के अनेक निहितार्थ होते हैं, जैसा कि आप कल्पना कर सकते हैं। कोई विशिष्ट नीतिगत उपाय कुछ पहलुओं से लाभकारी हो सकता है, जबकि कुछ अन्य दिशाओं में प्रतिकूल सिद्ध हो सकता है। चलिए, यहाँ कुछ उदाहरण लेते हैं, जबकि कई अन्य आप स्वयं सोच सकते हैं।

सर्वप्रथम, अर्थव्यवस्था में मुद्रा अवमूल्यन का प्रभाव : जब मुद्रा का मूल्यह्रास होता है तो निर्यात सस्ता हो जाता है, जिससे घरेलू माल की माँग बढ़ जाती है। यदि बाहरी ऋण अधिक है तो देश को कहीं अधिक राशि का भुगतान कर ऋण चुकाना होगा। इसके अलावा, यदि आयात लोचहीन है (उदाहरण के लिए, भारत द्वारा कच्चे तेल का आयात) तो अवमूल्यन भुगतान शेष की समस्या का कारण बन सकता है।

दूसरा, मुद्रास्फीति पर मात्रिक ब्याज दर में वृद्धि का प्रभाव : उच्च ब्याज दर का अर्थ होता है – मौद्रिक नीति का कड़ा होना, जिससे कुल माँग, उत्पादन और मुद्रास्फीति में कमी आती है। बहरहाल, उच्च ब्याज दर का अर्थ ऋणादान की उच्च लागत, उत्पादन की उच्च लागत और ऊँची कीमतें भी होगा।

इनमें से कौन–सा तथ्य अधिक प्रबल होगा? होगा? उक्त मॉडल निवल प्रभाव निर्धारित करने में हमारी मदद कर सकते हैं।

बोध प्रश्न 3

1. न्यू केन्जियन अर्थशास्त्र के अनुसार व्यापार चक्रों के स्रोतों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

2. गतिशील प्रसंभाव्य सामान्य साम्यावस्था (DSGE) मॉडलों की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

   ....

   ....

   ....

   ....

12.7 सार–संक्षेप

इस इकाई में हमने केन्जियन सिद्धांत के बाद समष्टि–अर्थशास्त्रीय चिंतन के विकास पर चर्चा की है। नियोक्लासिकल संश्लेषण ने IS-LM समीकरणों के प्राधार में क्लासिकल और केन्जियन विचारों को संयोजित करने का प्रयास किया। अर्थवाद ने केन्जियन सिद्धांत को पहली गंभीर चुनौती पेश की। सन 1970 के दशक के दौरान कई देशों के सामने आए आर्थिक संकट की व्याख्या केन्जियन सिद्धांत द्वारा नहीं की जा सकी। इसने अर्थशास्त्रियों को नए व्यापक आर्थिक मॉडल तलाशने के लिए प्रेरित किया।

प्रत्याशाओं की भूमिका आरंभ होने से समष्टि अर्थशास्त्र की विषय वस्तु पूरी तरह से ही बदल गई। न्यू क्लासिकल सिद्धांत ने चिरसम्मत विचारों को पुनर्जीवित किया और केन्जियन सिद्धांत के बिल्कुल विपरीत नीतिगत नुस्खे पेश किए। सन 1980 के दशक के दौरान न्यू केन्जियन सिद्धांत नामक एक नई विचारधारा ने केन्जियन अवधारणाओं को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया।

न्यू क्लासिकल मॉडल और न्यू केन्जियन मॉडल दोनों ही एक अंतर–कालिक प्राधार में विवेकशील व्यक्तियों के अधिकतमकारी व्यष्टि–अर्थशास्त्रीय व्यवहार पर आधारित हैं। बहरहाल, बाजार की अपूर्णता के विषय में धारणाओं में अंतर हमें काफी विरोधाभासी परिणाम देता है। पूर्ण प्रतिस्पर्धा की कल्पना कर न्यू क्लासिकल अर्थशास्त्री मूल क्लासिकल सिद्धांत के करीब आ सकते हैं।

न्यू केन्जियन अर्थशास्त्री पूर्ण प्रतिस्पर्धा की धारणा को चुनौती देते हैं। बाजार की अपूर्णता को स्वीकार कर वे कुछ केन्जियन विचारों को पुनर्जीवित कर सकते थे। अंत में हमने समकालीन गतिशील प्रसंभाव्य सामान्य साम्यावस्था (DSGE) मॉडलों पर कुछ प्रारंभिक विचार प्रस्तुत किए।

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1. कोई भी संकुचनकारी राजकोषीय नीति AD वक्र को बाईं ओर खिसका देती है। यह अल्पावधि परिणाम (नए AD और SRAS के प्रतिच्छेदन द्वारा दर्शाया गया) होगा –

उत्पादन अपनी स्वाभाविक दर से कम होगा और कीमतें अपने प्रत्याशित मान ($Y \prec Y_n$ और $P \prec P^e$) से कम होंगी। दीर्घावधि में, अनुकूली प्रत्याशाओं के कारण, कीमतों के बारे में प्रत्याशाएँ संशोधित हो नीचे की ओर खिसक जाती हैं और SRAS भी नीचे ही नजर आता है। एक बार फिर, $Y \prec Y_n$ और $P \prec P^e$ (नए SRAS और नए ही AD द्वारा दर्शाई गई साम्यावस्था) परंतु Y और Y_n के बीच का अंतर कम हो गया है। प्रत्याशित कीमतों के निरंतर नीचे की ओर पुनः आ जाने के साथ ही SAS तब तक नीचे खिसकता रहता है जब तक कि SAS नए AD को Y_n पर नहीं काटता और चर P चर P^e के बराबर नहीं हो जाता। यही है दीर्घावधि साम्यावस्था।

2. संकुचनकारी राजकोषीय नीति का अभिप्राय सरकारी निवेश में कमी से होता है। अल्पावधि में यह Y और P में गिरावट की ओर ले जाता है। दीर्घावधि में चर Y बिंदु Y_n पर वापस आ जाता है, परंतु P गिर जाता है। बहरहाल, दीर्घावधि में उत्पादन की संरचना में परिवर्तन होता है और निवेश बढ़ता है क्योंकि सरकारी व्यय घटता है (चर P में कोई भी कमी वास्तविक मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि कर ब्याज दर कम कर देती है और इस प्रकार निवेश बढ़ा देती है)।

बोध प्रश्न 2

1. हाँ, इसके लिए मूल्य विस्मय की आवश्यकता है। पाठांश 12.4.2 में नीति अप्रभावीता प्रस्थापना देखें।
2. वास्तविक व्यापार चक्र मॉडलों के अनुसार, किसी भी अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्र आपूर्ति आघात के कारण जन्म लेते हैं। ये आघात उत्पादकता, मौसम, आदान कीमतों आदि अनेक कारकों में बदलाव के कारण पहुँच सकते हैं। वास्तविक व्यापार चक्र मॉडलों की जड़ें न्यू क्लासिकल सिद्धांत में पाई जाती हैं। बहरहाल, उन्हें प्रायः एक अलग श्रेणी में रखा जाता है क्योंकि वे वास्तविक कारकों पर जोर देते हैं। न्यू क्लासिकल मॉडल आम तौर पर अर्थव्यवस्था को पहुँचने वाले मौद्रिक आघात या माँग आघात पर जोर देते हैं।

बोध प्रश्न 3

1. न्यू केन्जियन सिद्धांत किसी अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्र बनने की घटना के विभिन्न कारण बताता है, जैसे – मेन्यू लागत, चिपचिपी सीमांत लागत, सांतरित मूल्य और समन्वय विफलता। विस्तृत विवरण के लिए पाठांश 12.5 देखें।
2. पाठांश 12.6 का अध्ययन करें और उत्तर दें।

शब्दावली

अचर अनुमापी प्रतिफल (constant returns to scale) : जब उत्पादन अपने सभी आदानों अथवा उपादानों में वृद्धि के अनुपात में यथा तथ्य रूप से बढ़ता है तो इसे अचर अनुमापी प्रतिफल कहा जाता है। कॉब–डुग्लस उत्पादन फलन में $Q = AL^{\alpha}K^{\beta}$, if α+β = 1 तो यहाँ अचर अनुमापी प्रतिफल दिखाई देगा।

अग्रणी संसूचक (leading indicator) : वे परिमेय आर्थिक चर जो किसी अर्थव्यवस्था द्वारा कोई प्रतिमान अथवा रुझान विशेष अपनाए जाने से पूर्व बदल जाते हैं। ये अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों का पूर्वानुमान करने के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

अंतर्कालिक विकल्प चयन : यह चयन की एक प्रक्रिया है जिसमें निर्णयकर्ता यह निर्णय लेता है कि विभिन्न समयावधियों में क्या करना है और कितना करना है। आज की पसंद का भविष्य के अवसर पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

आर्थिक अभिकर्ता : किसी भी अर्थव्यवस्था में तीन आर्थिक अभिकर्ता अथवा एजेंट होते हैं, यथा–परिवार, फर्म और सरकार।

आपूर्ति आघात (supply shock) : आपूर्ति आघात एक आर्श्चजनक घटना है जो कुल आपूर्ति वक्र को खिसका देती है। यह आघात नकारात्मक अथवा सकारात्मक हो सकता है। आपूर्ति आघात के उदाहरण हैं–मौसम में बदलाव, प्रौद्योगिकी, आगत मूल्य आदि।

असममित जानकारी (asymmetric information) : यह एक ऐसी अवधारणा के संदर्भ में होती है जहाँ किसी लेन–देन में एक पक्ष के पास दूसरे की तुलना में अधिक जानकारी होती है। उदाहरण के लिए, जब कोई पुरानी कार बेची जा रही हो तो कार के बारे में खरीदार की तुलना में विक्रेता के पास अधिक जानकारी होती है।

अनुकूली प्रत्याशाएँ (adaptive expectations) : अनुकूली प्रत्याशाएँ एक सैद्धांतिक अवधारणा है जो हाल के दिनों में अनुभवों और घटनाओं के आधार पर भविष्य के लिए प्रत्याशाओं के सृजन से संबंधित है। अनुकूली प्रत्याशाओं की परिकल्पना के अनुसार, निम्नलिखित समीकरण सत्य होगा –

$$Y_t^e - Y_{t-1}^e = \alpha(Y_{t-1} - Y_{t-1}^e)$$

जहाँ Y_t^e समयावधिtमें प्रत्याशित आय का मान है, Y_{t-1} समयावधि t-1 में वास्तविक आय है, तथा α एक गुणांक है और इसका मान धनात्मक परंतु एक से कम है।

इक्विटी : शेयर बाजार में निवेश के संदर्भ में, इक्विटी से तात्पर्य कंपनी के स्वामित्व वाले शेयरों से होता है। सरल शब्दों में, यदि किसी कंपनी के सभी ऋणों का भुगतान किया जा चुका हो और उसकी परिसंपत्तियाँ ऋण मुक्त हों तो उसकी इक्विटी वह कुल राशि होगी जो कोई भी शेयरधारक प्राप्त करने के लिए पात्र होगा। जब कोई व्यक्ति किसी कंपनी की इक्विटी में निवेश करता है तो वह उसका आंशिक मालिक बन जाता है।

उत्पादन–प्रौद्योगिकी अनुपात : $\bar{y} = \frac{y}{A} = \frac{Y}{AL}$ प्रौद्योगिकी के अनुसार उत्पादन प्रति श्रमिक अथवा उत्पादन–प्रौद्योगिकी अनुपात होता है।

उपभोग समकरण : व्यक्ति अपने जीवनकाल के दौरान अपने उपभोग स्तर में उतार–चढ़ाव से बचते हैं। इस प्रकार वे अपनी आय को उच्च आय की अवधि से कम आय की अवधि में स्थानांतरित करते हैं। दूसरे शब्दों में, वे समय के साथ अपने उपभोग को समकृत करते हैं।

ऋण वित्तपोषण : ऋण एक पूँजीगत चर होता है, जिसे एक विशिष्ट समय पर मापा जाता है और यही सभी पूर्व घाटों का संचय भी होता है। सरकारी बॉण्ड और ट्रेजरी बिल बेचकर सार्वजनिक ऋण का वित्तपोषण किया जाता है। बैंक, पेंशननिधि और व्यक्ति बॉण्डों पर ब्याजदर के बदले में उन स्वायत्त बॉण्डों को खरीदते हैं। कुछ परिस्थितियों में सार्वजनिक ऋण को केंद्रीय बैंक द्वारा उन बॉण्डों को खरीदने और सरकार को भुगतान करने के लिए अधिक मुद्रा छापकर वित्त पोषित किया जा सकता है।

ऋण संधारणीयता : इसका अर्थ है कि करों अथवा व्यय में परिवर्तन करना ताकि उसके बाद ऋण नियत अर्थात् स्थिर रहे।

ऋणपत्र : ऋणपत्र अर्थात् बॉण्ड एक नियत आय का साधन है। यह पारंपरिक रूप से ऋणधारकों को एक नियत ब्याज दर (कूपन) का भुगतान करता है। परिवर्तनीय अथवा अस्थायी ब्याजदरों वाले ऋणपत्र भी प्रचलन में हैं।

कुल उपादान उत्पादकता : कुल उपादान उत्पादकता (TFP) उत्पादकता का मानदंड है, जो कि समग्र अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन को श्रमएवं पूँजी जैसे आदानों के भारित औसत (weighted average) से विभाजित करके आकलित किया जाता है।

घाटे का मुद्रीकरण : यह एक दो चरणों वाली प्रक्रिया है जहाँ सरकार अपने खर्च की भरपाई के लिए सरकारी ऋणपत्र जारी करती है और केंद्रीय बैंक ये ऋणपत्र खरीदता है। केंद्रीय बैंक परिपक्व होने तक ये ऋणपत्र रखता है। यह प्रक्रिया अर्थव्यवस्था को मुद्रा की बढ़ी हुई आपूर्ति के साथ छोड़ देती है।

चक्रीय गति : यह चार असतत चरणों के विस्तारकारी, उत्कर्ष, अधोमुखी और गर्त के माध्यम से समष्टि आर्थिक चरों के आवधिक परिवर्तन को इंगित करता है।

टेलर का नियम (Taylor's rule) : यह नियम ही बताता है कि किस प्रकार केंद्रीय बैंक मुद्रास्फीति में प्रत्येक एक–प्रतिशत वृद्धि के लिए मात्रिक ब्याज दर को एक प्रतिशतता बिंदु से भी अधिक तक बढ़ा दिया करता है।

तरलता : तरलता से तात्पर्य उस सहजता से है जिसके सहारे किसी परिसंपत्ति अथवा धरोहर को उसके बाजार मूल्य को प्रभावित किए बिना तैयार नकदी में परिवर्तित किया जा सकता है। नकद परिसंपत्तियों का सबसे तरल रूप है।

त्वरक (accelerator)	:	अर्थशास्त्र में बाजार अर्थव्यवस्था के विकास (जीडीपी में परिवर्तन) के निजी नियत निवेश पर किसी भी सकारात्मक प्रभाव को त्वरक प्रभाव कहा जाता है।
दलाली	:	यह पद लेन–देन निष्पादित करने अथवा विशेषीकृत सेवाएँ प्रदान करने के लिए किसी दलाल द्वारा लगाए गए शुल्क को इंगित करता है।
निवेश सूची	:	यह पद शेयर, ऋणपत्र, जिंस, नकदी व नकद समवस्तु आदि निवेश वस्तुओं के संग्रह को इंगित करता है।
नकद आरक्षित निधि अनुपात (CRR)	:	यह कुल जमाधन का ही अंश होता है जोकि बैंकों से अपेक्षित होता है कि वे भारतीय रिजर्व बैंक के पास रखेंगे। यह रोकड़ बाकी के रूप में उनकी माँग एवं समय दायित्वों के कुछ निश्चित अंश स्वरूप तय किया जाता है।
प्राथमिक घाटा (primary deficit)	:	यह राजकोषीय घाटे से ब्याज भुगतान घटाकर प्राप्त किया जाता है, यथा –*प्राथमिक घाटा = राजकोषीय घाटा – ब्याज भुगतान*
पूर्ण नियोजन उत्पादन	:	यह उस क्षमता उत्पादन या संभावित उत्पादन को इंगित करता है जो कोई भी अर्थ व्यवस्था संसाधनों के पूर्ण नियोजन स्तर पर होने पर प्रस्तुत कर सकती है।
पूर्वावधानात्मक प्रयोजन	:	यह पद अप्रत्याशित घटनाओं से प्रभावी ढंग से निपटने में सक्षम होने के लिए किसी व्यक्ति की नकदी रखने की इच्छा को इंगित करता है, जिसके लिए नकद परिव्यय की आवश्यकता होती है।
पूँजीगत लाभ	:	पूँजीगत परिसंपत्तियों (शेयर, बॉण्ड, स्थावर संपदा, आदि) को उनके खरीद मूल्य से अधिक कीमत पर बेचकर प्राप्त किया गया लाभ।
प्रतिनिध्यात्मक बजट अध्ययन	:	जब किसी समय–बिंदु विशेष पर परिवारों के नमूने का चयन किया जाता है और उनकी आय, उपभोग व्यय, बचत आदि पर आँकड़ों का अध्ययन किया जाता है।
पश्चायित संसूचक	:	वे परिमेय आर्थिक चर जो किसी अर्थव्यवस्था द्वारा कोई प्रतिमान अथवा रुझान विशेष अपना लिए जाने के बाद ही बदलते हैं।
प्रतिसरण (recession)	:	किसी व्यापार चक्र का वह चरण जब आर्थिक वृद्धि दर गिरनी शुरू हो जाती है।
पूँजीवादी अर्थव्यवस्था	:	व्यक्तियों के स्वहित से प्रेरित एक स्वचालित आत्म–नियंत्रणकारी व्यवस्था।
पूँजी का स्वर्ण–सिद्धांत स्तर	:	चर k का वह स्थिरावस्था मान जो उपभोग अधिकतम कर देता है।

फिलिप्स वक्र	:	मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच संबंध को दर्शाता है। यह मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच संबंध का वर्णन करता है। अल्पावधि में यह नीचे की ओर झुका पाया जाता है, जबकि दीर्घावधि में यह ऊर्ध्वाधर होता है।
बैंक दर	:	वह दर जिस पर केंद्रीय बैंक वाणिज्यिक बैंकों को नकदी उधार देता है।
भुगतान शेष	:	यह एक विशेष अवधि में किसी देश और शेष विश्व के निवासयिों के बीच होने वाले सभी आर्थिक लेन देन का रिकार्ड है। ये लेन देन व्यक्तियों, फर्मों एंव सरकारी संस्थाओं द्वारा किये जाते हैं। इस प्रकार, भुगतान सन्तुलन में किसी देश के सभी बाहरी दृश्य एवं अदृश्य लेने देन शामिल होते है।
मुद्रा का वेग	:	यह निर्धारित समयावधि के भीतर वस्तुओं एवं सेवाओं को खरीदने के लिए मुद्रा की एक औसत इकाई का उपयोग करने की संख्या का एक उपाय है। इसे आमतौर पर सकल घरेलू उत्पाद और देश के सकल M1अथवा M2 धन अनुपात के रूप में मापा जाता है।
मुद्रा–परिमाण सिद्धांत	:	इस सिद्धांत के अनुसार, किसी भी अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा और विक्रीत माल एवं सेवाओं के मूल्य स्तर के बीच एक सीधा संबंध होता है।
मौद्रिक हस्तांतरण क्रियातंत्र	:	यह मौद्रिक नीति और कुल माँग के बीच एक कड़ी का काम करता है। यह प्रक्रिया ही बताती है कि मौद्रिक नीति किस प्रकार परिसंपत्ति की कीमतों और सामान्य आर्थिक दशाओं को प्रभावित करती है (जो कि कुल माँग, ब्याज दरों और मुद्रा की मात्रा, तथा ऋण पर असर डालता है) ताकि समग्र आर्थिक निष्पादन को किसी वांछित दिशा में ले जाया जा सके।
मुक्त बाजार संक्रियाएँ	:	केंद्रीय बैंक द्वारा जनसाधारण और बैंकों से राजकीय प्रतिभूतियों का विक्रय / क्रय।
मूल्य अनम्यता	:	कीन्स ने लचीली कीमतों की अवधारणा पर क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का प्रतिकार किया। केन्जियन अर्थशास्त्र के अनुसार, कीमतों में कठोरता के लिए कई कारक उत्तरदायी होते हैं। मेन्यू लागत एक ऐसा ही उदाहरण है।
माँग आघात	:	माँग आघात भी एक आश्चर्यजनक घटना है जो कुल माँग वक्र को खिसका देती है। एक नकारात्मक माँग आघात कोई वैश्विक महामारी हो सकता है। एक सकारात्मक माँग आघात सरकार द्वारा कोई प्रोत्साहन पैकेज अथवा मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि हो सकता है।
मूल्य लोचहीनता	:	यह केन्जियन विचारधारा के इस दृष्टिकोण को इंगित करती है कि कीमतें लचीली नहीं बल्कि चिपचिपी होती हैं। यह उस क्लासिकल दृष्टिकोण को चुनौती देता है जिसके अनुसार कीमतें साम्यावस्था स्तर पर तत्काल बदल जाती हैं।
मूल्यह्रास	:	यह अचल पूँजीगत परिसंपत्तियों की टूट–फूट के कारण मूल्य की हानि को इंगित करता है।

युक्तियुक्त प्रत्याशाएँ : युक्तियुक्त प्रत्याशाओं संबंधी परिकल्पना अनुकूली प्रत्याशाओं संबंधी परिकल्पना पर ही परिष्कृत रूप है। यह तर्क देता है कि लोग किसी भी चर के प्रत्याशित मान के निर्धारण से संबंधित सभी उपलब्ध सूचनाओं का उपयोग करते हैं। इसमें यह भी कहा गया है कि लोग किसी भी आर्थिक चर के भावी मान की भविष्यवाणी करने के लिए अपनी मानवीय तर्कसंगतता, उपलब्ध जानकारी और अपने अनुभव का उपयोग करते हैं।

राजकोषीय प्रोत्साहन उपाय : सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने अथवा रोजगार एवं व्यय को बढ़ाकर व्यापार मंदी से बचने और उसका प्रतिकार करने के लिए सरकार द्वारा किया गया एक नीतिगत उपाय। राजकोषीय प्रोत्साहन पैकेज में आमतौर पर कर कटौती या सरकारी खर्च में वृद्धि या फिर दोनों ही शामिल होते हैं। ये नीतियाँ सामान्यतया सार्वजनिक ऋण के बोझ को तब बढ़ाती हैं जब तक कि उन नीतिगत उपायों के कारण अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पाद में परिणामी वृद्धि पूरी तरह या आंशिक रूप से बोझ का प्रतिकार नहीं कर देती।

शेयर बाजार : इसे 'स्टॉक मार्केट' अथवा 'स्टॉक एक्सचेंज' भी कहा जाता है। यह शेयरों के ऐसे खरीदारों और विक्रेताओं के समूहन को इंगित करता है जो व्यवसायों पर स्वामित्व के दावों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

शेयर : कोई भी शेयर पूँजी की वह अविभाज्य इकाई होता है जो किसी कंपनी और उसके शेयर धारक के बीच स्वामित्व संबंध को व्यक्त करता है।

रेहन दर : रेहन दर अथवा 'मॉर्गेजरेट' होम लोन पर ली जाने वाली ब्याज दर को इंगित करती है।

रिकार्डियन तुल्यता : यह एक प्रस्थापना है जिसके अनुसार राजकीय व्यय वर्तमान करों द्वारा हो या भावी करों द्वारा, उसका प्रभाव समान ही पड़ेगा। इस प्रस्थापना के अनुसार ऋणादान के माध्यम से घाटे के वित्तपोषण से उत्पादन में वृद्धि नहीं हो सकती है क्योंकि लोग आशावादी और विवेकशील होते हैं।

रिकार्डियन तुल्यता प्रस्थापना : नियोक्लासिकल अर्थशास्त्री रिकार्डियन समतुल्यता के आधार पर केन्जियन राजकोषीय उपायों की प्रभावशीलता पर सवाल उठाते हैं। रिकार्डो ने तर्क दिया था कि यदि लोग दूरंदेशी हों तो करों द्वारा अथवा ऋणपत्र जारी करने से सरकारी व्यय के वित्तपोषण का कुल माँग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। बैरो के अनुसार, यदि प्रत्याशाओं का सृजन युक्तियुक्त प्रत्याशाओं के अनुसार होता है तो राजकोषीय नीति अप्रभावी रहेगी।

राजकोषीय घाटा : इसे कुल व्यय (राजस्व एवं पूँजी दोनों) और राजस्व प्राप्तियों के बीच के अंतर के रूप में परिभाषित किया जाता है, यथा –

राजकोषीय घाटा = राजस्व प्राप्तियाँ – कुल व्यय

राजकोषीय : यह किसी सरकार की इस क्षमता को इंगित करती है कि वह अपने वर्तमान व्यय, कर व अन्य नीतियों को दीर्घावधि में सरकारी करदानक्षमता

संधारणीयता		को खतरे में डाले बिना अथवा अपनी किन्हीं देनदारियों या वादा किए गए खर्चों पर चूक किए बिना स्वयं को कायम रखे।
लेन—देन का प्रयोजन	:	यह पद दैनिक आवश्यकताओं के वित्तीय दायित्व को पूरा करने के लिए किसी आर्थिक अभिकर्ता की हाथ में अथवा बैंक खाते (माँग जमा) में पर्याप्त नकदी रखने की इच्छा को इंगित करता है।
लाभांश	:	यह शेयरों या इक्विटीज पर लाभ को इंगित करता है। यह किसी पब्लिक लिमिटेड कंपनी द्वारा अपने शेयर धारकों को मुनाफे के रूप में दिया जाता है।
लाग्रंगियन फलन	:	फ्रांसीसी गणितज्ञ एवं खगोलशास्त्री लाग्रेंज के नाम पर प्रचलित लाग्रंगियन फलन निबाधों का वर्णन करने वाले फलनों के साथ इष्टतम किए जा रहे फलन को एक समीकरण में जोड़ता है। लाग्रंगियन फलन को हल करने से हम अपने द्वारा चुने गए चर को इष्टतम कर सकते हैं, जोकि उन निबाधों के अधीन होगा जिन्हें हम बदल नहीं सकते हैं।
वर्धमान अनुमापी प्रतिफल	:	सभी आदानों के समानुपाती रूप से बढ़ने पर जब उत्पादन समानुपात से भी अधिक तेजी से बढ़ता है तो इसे वर्धमान अनुमापी प्रतिफल कहा जाता है। कॉब—डुग्लस उत्पादन फलन में $Q = AL^{\alpha}K^{\beta}$, if $\alpha+\beta > 1$ तो यहाँ वर्धमान अनुमापी प्रतिफल देखा जाएगा।
व्यापार चक्र	:	कारोबार का वह चक्र जो बहुत—सी आर्थिक गतिविधियों में विस्तार एवं संकुचन के पुनरावर्तक एकान्तर सोपान दर्शाता है।
विस्तार सोपान	:	कारोबार का वह चक्र जो आर्थिक संसूचकों द्वारा अपने निम्नतम बिंदु को छू लिए जाने के बाद उनको फिर उठता देखकर चलता है।
व्यापार चक्र का चरमोत्कर्ष	:	किसी व्यापार चक्र का वह बिंदु जहाँ विस्तार समाप्त होता है और प्रतिसरण शुरू।
व्यापार चक्र का गर्त	:	किसी व्यापार चक्र का वह बिंदु जहाँ अर्थव्यवस्था संकुचन के अपने निम्नतम स्तर पर देखी जाती है।
व्यापार चक्र संसूचक	:	वे समस्त आर्थिक चर जो हमें व्यापार चक्रों के संक्रांति—बिंदुओं की पहचान करने में मदद करते हैं।
वितरणात्मक अंतराल मॉडल	:	किसी भी समाश्रयण मॉडल में हम व्याख्यात्मक या आश्रित चर के बीच भिन्नता को समझाने के लिए व्याख्यात्मक चर शामिल करते हैं। वितरणात्मक अंतराल मॉडल में हम व्याख्यात्मक चर के वर्तमान मूल्यों के अलावा व्याख्यात्मक चर के अंतराल मूल्यों को भी शामिल करते हैं।
वैधानिक तरल पूँजी अनुपात(SLR)	:	यह कुल जमाधन का वह अंश है जो बैंकों से अपेक्षित होता है कि वे अपने पास ही रखेंगे। यह राजकीय प्रतिभूतियों के रूप में

उनकी माँग एवं समय दायित्वों के कुछ निश्चित अंश स्वरूप तय किया जाता है।

वेतन और मूल्यों में लचीलापन : यह क्लासिकल अर्थशास्त्र की मूल मान्यताओं में से एक है। इस अवधारणा के अनुसार, अर्थव्यवस्था में आपूर्ति और माँग की स्थिति में परिवर्तन के परिणामस्वरूप वेतन दर और मूल्य स्तर में तात्कालिक परिवर्तन होते हैं।

वेतन अनम्यता : मूल्य कठोरता के अलावा, केन्जियन अर्थशास्त्रियों का यह भी मानना है कि किसी भी अर्थव्यवस्था में मजदूरी में कठोरता होती है। रोजगार के अनुबंध के कारण कई मामलों में नाममात्र मजदूरी में गिरावट संभव नहीं होती है। दक्षता वेतन सिद्धांत इसका एक अन्य कारण है।

वाणिज्यवाद : यह एक ऐसी विचारधारा है जो शुल्कदर और आर्थिक सहायता को इस प्रकार विहित करती है कि जिससे देश की आर्थिक शक्ति में सुधा रहो। इसी ने साम्राज्यवाद को जन्म दिया। यह 16वीं से 18वीं शताब्दी के दौरान अधिकांश यूरोप में प्रचलित रही।

वेतन लोचहीनता : यह वेतन दर में कठोरता या चिपचिपाहट को दर्शाती है। कीन्स के अनुसार रोजगार अनुबंध सहित कई अन्य कारणों से मजदूरीदर तत्काल संतुलन स्तर तकनहीं पहुँचती है।

श्रम–परिवर्धक प्रौद्योगिकीय प्रगति : ए वह प्रौद्योगिकीय प्रगति जो प्रभावी श्रम निवेश में वृद्धि करती है। यदि उत्पादन में श्रम, L, और पूँजी, K, का प्रयोग शामिल होता है तो उत्पादन फलन, $Y = F(E*L, K)$, में श्रम–परिवर्धक प्रौद्योगिकीय प्रगति E से उपगत की जाती है।

स्थिर अवस्था (steady state) : स्थिर अवस्था एक ऐसी स्थिति होती है जिसमें अर्थव्यवस्था का उत्पादन प्रति श्रमिक, y, उपभोग प्रति श्रमिक, c, और शेयर पूँजी प्रति श्रमिक, k, अचर रहते हैं।

स्थिर अवस्था : स्थिर अवस्था एक ऐसी स्थिति है जिसमें अर्थव्यवस्था का उत्पादन प्रति श्रमिक y, उपभोग प्रति श्रमिक c और शेयर पूँजी प्रति श्रमिक k नियत होते हैं।

संतुलित विकास पथ : ऐसी स्थिति जिसमें प्रतिमान का प्रत्येक चर – उत्पादन प्रति श्रमिक, पूँजी प्रति श्रमिक आदि सभी – प्रौद्योगिकीय प्रगति की दर से बढ़ता है।

समुत्थान सोपान : किसी व्यापार चक्र प्रक्रिया का वह उलटा दौर जब अर्थव्यवस्था अपने गर्त को छूने के बाद उत्थान के दौर में कदम रख रही होती है।

स्टोकैस्टिक चर (stochastic variable) : यह एक बेतरतीब ढंग से निर्धारित प्रक्रिया को इंगित करता है, यथा कोई यादृच्छिक संभाव्यता वितरण दर्शाते हुए। कोई भी स्टोकैस्टिक चर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के मान ग्रहण कर सकता है, परंतु इसका औसत मान शून्य ही होगा।

सट्टा	:	सट्टेबाजी में बड़े लाभ की आशा से किसी उच्च हानिभय वाले वित्तीय साधन का व्यापार करना शामिल होता है।
स्थायी आय	:	यह पद उस दीर्घावधिक औसत प्रत्याशित आय को इंगित करता है जो उपभोक्ता के जीवनभर स्थिर रहती है।
संकेत निष्कर्षण समस्या (signal extraction problem)	:	रॉबर्टलुकास का कहना है कि उत्पादकों को अपने निर्णयन में संकेत निष्कर्षण समस्या का सामना करना पड़ता है। वे अपने उत्पाद की कीमत में वृद्धि के जवाब में आपूर्ति में वृद्धि कर देते हैं। वे यह नहीं समझते हैं कि यह कीमतों में एक सामान्य वृद्धि होती है, न कि आपेक्षिक मूल्यों में कोई वृद्धि।
सार्वजनिक वस्तु	:	दो मानदंड सार्वजनिक वस्तुओं को निजी वस्तुओं से अलग करते हैं, यथा गैर–प्रतिस्पर्धात्मकता और गैर–अपवर्ज्यता। सार्वजनिक वस्तुओं का उपभोग (उदाहरण के लिए, वातावरण में ऑक्सीजन) गैर–प्रतिस्पर्धात्मकता है। सार्वजनिक वस्तु का आपके द्वारा उपभोग दूसरों के लिए उस वस्तु की उपलब्धता कम नहीं करता। इसके अलावा, किसी भी व्यक्ति को सार्वजनिक वस्तुओं के उपभोग से इनकार नहीं किया जा सकता है।
हानिरहित निवेश	:	निवेश की वह राशि जो पूँजी प्रति इकाई श्रमिक को उसके वर्तमान स्तर पर बनाए रखने के लिए लगाई ही जानी चाहिए।
हानिभय	:	हानि भय अर्थात् जोखिम को वित्तीय शब्दों में इस संभावना के रूप में परिभाषित किया जाता है कि किसी परिणाम अथवा निवेश का वास्तविक लाभ प्रत्याशित परिणाम अथवा लाम से भिन्न होगा।
ह्रासमान प्रभाव	:	कर में कटौती के कारण परिवारों की प्रयोज्य आय में वृद्धि होती है। उच्चतर प्रयोज्य आय के परिणामस्वरूप निजी बचत में वृद्धि होगी। तथापि, निजी बचत में इस प्रकार की वृद्धि सार्वजनिक बचत में कमी से कम होगी। अतएव, अर्थव्यवस्था की वांछित कुल बचत में कमी हो जाती है। चूँकि कुल बचत कुल निवेश से कम हो जाती है, वास्तविक ब्याज दर में वृद्धि होती है। यह उच्चतर ब्याज दर घरेलू निजी निवेश में ह्रासमान प्रभाव दर्शाएगी अर्थात् उसको भीड़–भाड़ से बाहर कर देगी।
IS-LM मॉडल	:	केन्जियन समष्टि–अर्थशास्त्रीय मॉडल में अर्थव्यवस्था में संतुलन उत्पादन स्तर और ब्याज दर पर हासिल किया जाता है, जहाँISऔर LMवक्र परस्पर प्रतिच्छेद करते हैं। यहाँ ISवक्र वास्तविक क्षेत्र में संतुलन को दर्शाता है, जबकि LMवक्र अर्थव्यवस्था के मौद्रिक क्षेत्र में संतुलन को दर्शाता है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

Abel Andrew B, Ben Bernanke, and Dean Croushore, 2017, *Ma* Ninth Edition, Pearson Education

Attfield C L F, D. Demery and N. Duck, 1991, *Rational E. Macroeconomics: An Introduction to Theory a* Second Edition, Wiley Blackwell

Blanchard Olivier, 2020, *Macroeconomics*, Seventh Edition, Pearso

Branson W. H., 2005, *Macroeconomics: Theory and Policy*, Thir West Press

Case Karl E., Ray C. Fair, and Sharon E. Oster, 2017, *Principles* Twelfth Edition, Pearson Education

Dornbusch Rudiger, Stanley Fisher, and Richard Startz, 2018, *Ma*

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY